* डिमडिम *

हमने यह ग्रन्थ पबलिक की भलाई के लिये सनातनधर्म के तत्वों को जानने के हेतु से निर्माण किया है, इसमें खण्डन किसी का भी नहीं है। जो लोग सनातनधर्म को निन्दनीय, वेद और युक्तिविरुद्ध, गपोड़ा बतलाया करते हैं तथा जिनकी समझ में सनातनधर्म हानिकारक है एवं जो अभिन्ननिमित्तोपादान कारण, अवतार, मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध समझते हैं उनसे हमारी नम्र प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ का विद्वत्तायुक्त खण्डन करें, विद्वत्तायुक्त खण्डन करने वाले सज्जन को हम एक सहस्र १०००) रुपया पारितोषिक भी देंगे। इस शुभ अवसर को हाथ से न जाने दें। इसमें तीन लाभ हैं-(१) सनातन धर्म वेदविरुद्ध सिद्ध होगा (२) खण्डनकरने वाले का धर्म वैदिक और पुष्ट बनेगा (३) एक सहस्र रुपया इनाम मिलेगा। संसार में एक भी ऐसा शक्तिशाली पुरुष न होगा जो इस लाभदायक खण्डन को हाथ से खो बैठे, किन्तु हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इस ग्रन्थ का खण्डन करने वाला भूतल ने उत्पन्न ही नहीं किया, यदि कोई हो तो इस ग्रन्थ का खण्डन अवश्य अवश्य अवश्य करे।

ग्रन्थकर्त्ता।

* विज्ञप्ति *

हमने 'हिन्दु' पत्र में सूचना निकाली थी कि हम 'हिन्दु' के ग्राहकों को 'व्याख्यान दिवाकर' १) रुपये में देंगे और यह भी लिखा था कि यदि कोई ग्राहक एक पुस्तक से अधिक पुस्तकें लेना चाहे तो वह लिख भेजे कि हम इतनी पुस्तकें लेंगे, हम उतनी ही दे देंगे। 'हिन्दु' के किसी किसी ग्राहक ने 'व्याख्यान दिवाकर' की एक या अनेक पुस्तकों का आर्डर भेजा और कोई कोई ग्राहक मौन ही रह गया। अब 'हिन्दु' के ग्राहकों का हमारे ऊपर कोई स्वत्व नहीं रह गया कि १) रुपये में 'व्याख्यान दिवाकर' मांगें। जैसे और ग्राहकों को 'व्याख्यान दिवाकर' का पूर्वार्द्ध २) रुपये में भेजा जावेगा इसी प्रकार 'हिन्दु' के ग्राहकों को भी उपलब्ध होगा किन्तु ग्रन्थ अच्छा बना है मेरी समझ में एक भी सनातनधर्मी ऐसा न होगा जो इस ग्रन्थ को सुन कर खरीदना न चाहे, इस विषय को ध्यान में रखते हुये हम एक अवसर 'हिन्दु' के ग्राहकों को और देते हैं वह यह है कि आज से ३१ मई तक जो 'हिन्दु' का ग्राहक 'व्याख्यान दिवाकर' लेना चाहे उसको हम १।) में रवाना करेंगे, जो ग्राहक 'व्याख्यान दिवाकर' ले चुके हैं उनको भी दे देंगे और जिन्होंने नहीं खरीदा उनको भी देंगे, जो एक पुस्तक मांगेगा उसको एक देंगे और जो २० मांगेगा उसको २० भी इसी हिसाब से दे देंगे, डाकव्यय अलग होगा।

मैनेजर, 'हिन्दु'।

* कथा *

हम धार्मिक सनातनधर्मियों से प्रार्थना करते हैं कि इस समय सनातनधर्म आपत्ति में पड़ गया है और आप लोग इस की रक्षा में कुछ भी उद्योग नहीं कर रहे हैं। यदि आपको सनातनधर्म बचाना है तथा सनातनधर्म के गूढ़ तत्वों का ज्ञान अंतःकरण में विठलाना है अथवा अपने सनातनधर्मी भाइयों को दूसरों के जाल से बचाना है, या दूसरे धर्मों की कमज़ोरियां बतला कर जनता को कट्टर धार्मिक बनाना है तो आज ही से प्रत्येक ग्राम, नगर, कस्बे एवं मोहल्लों में 'व्याख्यान दिवाकर' की कथा का आरम्भ कर दें। एक सज्जन जो संस्कृत या उत्तम हिन्दी जानता हो वह वक्ता बन जाय और शेष सज्जन श्रोता बन कर सुनें, कथा धीरे २ साधारण रीति से समस्त भाव खोलते हुये बांची जावे। सैकड़ों उत्सव और उनमें होने वाले व्याख्यान उतना प्रभाव न डाल सकेंगे कि जितना प्रभाव 'व्याख्यान दिवाकर' की पांच चार आवृत्तियों की कथा डाल देगी।

(२) यह 'व्याख्यान दिवाकर' का पूर्वार्द्ध है, उत्तरार्द्ध १ अप्रैल से छपना आरंभ हो जावेगा और 'हिन्दु' के नवीन वर्ष के प्रथमाङ्क अगस्त मास के साथ ग्राहकों के पास भेजा जावेगा, जिस सज्जन को 'व्याख्यान दिवाकर' का उत्तरार्द्ध १) रुपये में लेना हो वह सज्जन आज ही से 'हिन्दु' का ग्राहक हो जावे और 'व्याख्यान दिवाकर' के उत्तरार्द्ध का आर्डर भेज दे।

कालूराम शास्त्री।

❀ परीक्षा ❀

इस वर्ष हमारे यहां से सनातनधर्मोपदेशक-परीक्षा का आरंभ होगा। ये परीक्षाएं हमने तीन विभागों में विभाजित की हैं-सुवक्ता, महोपदेशक, व्याख्यान-वाचस्पति। एक परीक्षा, उत्तीर्ण होने के पश्चात् विद्यार्थी दूसरी परीक्षा में सम्मिलित हो सकेगा अतएव इस वर्ष 'सुवक्ता' परीक्षा २१ जौलाई से २४ जौलाई सन् २८ तक होगी। इस परीक्षा में संस्कृत के विद्वान् तो लिये ही जावेंगे किन्तु हिन्दी के मिडिल पास भी शामिल हो सकेंगे। 'सुवक्ता' परीक्षा में तीन ग्रन्थ हैं और उनके नाम ये हैं—व्याख्यान दिवाकर मू० २) विधवाविवाह निर्णय मू० ॥) वर्णव्यवस्था मू० ।=), ये पुस्तकें मैनेजर हिन्दु कार्यालय मु० पो० अमरौधा जि० कानपुर से मंगवा लें और परिश्रम करके परीक्षा में शामिल हो जावें। समय अनुकूल है, सनातनधर्म महासभा को एकसहस्र उपदेशकों की आवश्यकता है तथा माननीय मालवीयजी ने हम से एक सहस्र उपदेशक मांगे हैं, वेतन २५) रुपये से १००) रुपये तक होगा।

कालूराम शास्त्री।

* सहायता *

सनातनधर्म के गूढ़तत्वों को साधारण जनता उत्तमरीति से समझ जावे यह हमारा उद्योग है, इसी को लक्ष्य बना कर हमारी लेखनी का उत्थान हुआ है। हमारी लेखनी से निकले हुये कुछ ग्रन्थ प्रकाशित होगये और कुछ लिखे रक्खे हैं तथा कितने ही लिखे जावेंगे, किन्तु द्रव्याभाव से हम इन समस्त ग्रन्थों को न तो प्रकाशित कर सके हैं और न कर सकेंगे। सनातनधर्मी जनता प्रथम तो कुम्भकर्णी नींद में सो रही है और जो कुछ जागी है वह साल भर में तीन दिन उत्सव करके कृतार्थ हो जाती है, ग्रन्थों की तरफ किसी का ध्यान नहीं। हम धार्मिक धनियों से प्रार्थना करते हैं कि हमको यथेच्छ रुपये की सहायता दी जावे। बात कुछ नहीं, कोई ध्यान नहीं देता, यदि एक भी पुरुष ध्यान दे दे तो धार्मिक साहित्य ऊंचे से ऊंचे दर्जे पर पहुंच सकता है, किन्तु रुपये का देना बड़ा कठिन है इतना जान कर भी हम अपनी प्रार्थना को धार्मिक धनियों के आगे रखते हैं, जो धनी धर्म की दशा को देख कर दुःखित हैं और जो ऐसे काम में पैसा देना चाहते हैं वे कृपा कर हम[illegible] व्याख्यान में [illegible]समें हमसे पूछें कि तुमको कितना रुपया [illegible] उसी दृष्टा[illegible] [illegible]त्तर लिखेंगे।

[illegible]ंगा।

कालूराम शास्त्री।

* पुराणवर्म *

का

उत्तरार्द्ध ।

जिन लोगों ने 'पुराणवर्म' का पूर्वार्द्ध पढ़ा है वे लोग जानते हैं कि यह ग्रन्थ कैसा उत्तम तैयार हुआ है और कितने पण्डितों के मस्तिष्क इसमें लड़े हैं। ११ हजार रुपया लग कर 'पुराणवर्म' का 'पूर्वार्द्ध' तैयार हुआ है, तीन सहस्र पबलिक का है और आठ सहस्र हमारा है। अब हम 'पुराणवर्म' का 'उत्तरार्द्ध' लिखेंगे और आगामी जनवरी में अपने ग्राहकों के कर कमलो में समर्पित कर देंगे। किन्तु रुपये का यहां भी अभाव है। 'उत्तरार्द्ध' लिखने के लिये दो हजार रुपया चाहिये, अभी तक ७७५) रुपया आया है, इस रुपये के लिये धार्मिक लोगों को विचार कर उद्योग करना चाहिये। प्रत्येक सहायक से २००) रुपया लेंगे और 'पुराणवर्म' के 'उत्तरार्द्ध' में उसका फोटू देंगे। जिन्होंने 'पुराणवर्म' का 'पूर्वार्द्ध' नहीं देखा वे मैनेजर, हिन्दु कार्यालय अमरौधा जिला कानपुर से वी. पी. द्वारा मंगवा कर देख लें।

कालूराम शास्त्री।

का[illegible]स्त्री।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* व्याख्यान दिवाकर *

पूर्वार्द्ध का द्वितीयांश।

अवतारवाद
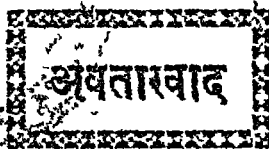
प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादी-
न्पुण्यानिमान्परमभागवतान्नमामि ॥ १

बहुत गई थोड़ी रही, नारायण अब चेत।
कालचिरैया चुग रही, निश दिन आयू खेत ॥ २
धन यौवन उड़ जायंगे, जैसे उड़त कपूर।
मन मूरख गोविन्द भज, क्यों चाटे जग धूर ॥ ३

प्रबल प्रताप सभापते! तथा पूज्य विद्वन्मण्डलि! एवं आदरणीय सद्गृहस्थवृन्द! मैं आज के व्याख्यान में प्रथम एक दृष्टान्त रक्खूंगा और उसी दृष्टान्त के ऊपर से अपना व्याख्यान आरंभ करूंगा। एक शहर में एक सेठजी रहते थे। दैव-योग से चालीस वर्ष की आयु में ही उनके वाम नेत्र में मोतिया-

विन्द उतर आया। दक्षिण नेत्र सर्वथा शुद्ध है इसमें यह शंका नहीं है कि कभी मोतियाविन्द उतरेगा, किन्तु वाम नेत्र बिल्कुल मोतियाविन्द से घिर गया और आंख में आकर वह मोतियाविन्द पक भी गया। ये सेठजी एक डाक्टर के पास गये। डाक्टर ने आंख को देखा, देख कर बतलाया कि मोतियाविन्द पक गया है हम इसको निकाल देंगे, तुम्हारी आंख ऐसी अच्छी बना देंगे जैसी बच्चों की आंख होती है किन्तु आंख की बनवाई पांच हजार रुपया लेंगे। सेठजी ने अनेक उज्र किये, डाक्टर को वार वार हिलाया झुलाया, किन्तु वह पांच हजार रुपये से कम न हुआ। सेठजी अपने घर चले आये। दो तीन दिन के बाद सेठजी अपने किसी मित्र से मिलने गये, और और वातों के बाद आंख का भी जिक्र आ गया। इनके मित्र ने कहा कि आप आंख बनवावें हम डाक्टर साहब से कह देंगे वे आप से दो ही हजार रुपये ले लेंगे। सेठजी ने स्वीकार कर लिया। इनके मित्र ने डाक्टर को मजबूर किया कि आप हैसियत देखते नहीं बिना विचारे जो जी में आता है मांग बैठते हैं, हम कल दो हजार रुपया आप के यहां भेज देंगे, आप सेठजी की आंख बनावें। डाक्टर ने स्वीकार कर लिया। इन्हों ने सेठजी के यहां कहला भेजा कि दो हजार रुपया डाक्टर के यहां भेज दो। सेठजी ने फौरन भेज दिया। रुपया पाने के बाद डाक्टर ने सेठजी को बुलाया और इनकी आंख में दवा लगाई, दवा लगा कर कहा कि प्रातःकाल सात बजे आप आ जावें, धूप होने से पहले पहले

आपकी आंख बना देंगे। सेठजी समय पर पहुंचे। डाक्टर ने इनको मेज पर लेटाया, आंख बनाना आरंभ किया, पलकें काट कर कमानी चढ़ा कर नस्तर देना शुरू किया। नस्तर आंख में पहुंचा ही था कि इतने में सेठजी को छींक आई। सेठजी ने छींक को दबाना चाहा किन्तु दबी नहीं, उधर नस्तर आंख में पहुंचा ही था कि सेठजी ने शिर उठा कर कहा 'आछी'। 'आछी' का कहना ही था कि वह नस्तर बाईं आंख से उचट कर दहिनी आंख में इतने जोर से बैठा कि वह भी आंख फूट गई, डाक्टर मजबूर हो गये। बाईं आंख का पर्दा फट गया वह अब बन नहीं सकती, दहिनी और जाती रही। सेठजी को घर उठा लाये। तीन महीने में आराम हुआ, किन्तु सफाया दोनों आंखों का हो गया। सभी लोग सेठजी से मिलने आते हैं, आंख की कथा पूछते हैं। सेठजी बार बार यही कहते हैं कि डाक्टर तो बहुत होशियार था, डाक्टर की निपुणता में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं, डाक्टर बेचारा क्या करे, हमारी ही तकदीर फूट गई, छींक आ गई। सेठजी डाक्टर को दो हजार रुपये भी दे आये और अच्छी भली दहिनी आंख भी डाक्टर की भेंट कर दी, इतने पर भी डाक्टर के गुण गाते हैं।

प्यारे मित्रो! जिस परमात्मा ने तुमको दो दिव्य आंखें दीं, सुनने के लिये कान दिये, बोलने के लिये जीभ दी, सूंघने के लिये नाक दिया, काम करने के लिये हाथ, चलने के लिये पैर और प्रकाश के लिये सूर्य चन्द्रमा दिये, तुम्हारे जीवन के लिये

माता के स्तनों में दूध दिया, बतलाओ तो सही तुमने उनके गुणों का गान कितना किया ? और उनका तुम्हारे ऊपर कुछ हक है या नहीं ? धिक्कार है उस मनुष्य को जो ऐसे दयालु जगदीश्वर को याद नहीं करता। सज्जनों ! यदि तुम्हारे ऊपर ईश्वर दया न करे, रुष्ट होकर दो तीन वर्ष ही पानी न बरसे, तो तुम नहरों के भरोसे संसार में कितने दिन जी सकोगे ? योग्य पुरुष का यदि कोई ज़रा सा उपकार कर दे तो वह उसके गुण गाया करता है, किन्तु सहस्रों उपकार करने वाले ईश्वर का तुम स्मरण तक नहीं करते फिर तुम सा नालायक संसार में दूसरा कौन होगा।

आजकल इतना ही नहीं है कि ईश्वर को याद ही नहीं करते, वरन् आजकल के मनुष्य तो ईश्वर के उड़ाने पर कमर बांध बैठे हैं।

अवतार।

जिन लोगों ने वेद शास्त्र का अनुशीलन नहीं किया, कुछ दिन से वे ही लोग कहने लगे हैं कि भगवदवतार नहीं होता। क्या सच ही भगवदवतार नहीं होता ? यदि संसार में भगवदवतार होता ही नहीं तो फिर 'अवतार' यह शब्द संसार में क्यों आया ? ऐसा कोई भी वाचक नहीं होता कि जिसका वाच्य न हो। यह वैसी बात है कि नाम तो हो किन्तु नाम वाला पदार्थ न हो। जितने भी नाम होते हैं उन नामों से प्राय

पदार्थ भी होते हैं। जब अवतार नाम है तो संसार में ऐसी भी कोई वस्तु होनी चाहिये जो अवतार शब्द से जानने के योग्य हो। जब अवतार शब्द है तो अवतार से जानने योग्य कोई न कोई वस्तु भी अवश्य होगी। यदि ईश्वर स्वरूप धारण नहीं करता तो वेद शास्त्र और संसार में प्रचलित अवतार शब्द से किसका ग्रहण होगा, यह निश्चय हो जाना चाहिये।

कई एक सज्जनों का कथन है कि 'अवतरतीति अवतारः' जो उतरे उसका नाम अवतार है। जीव अनेक स्वरूप धारण करके संसार में उतरते हैं इस कारण जीव के शरीर धारण करने को ही अवतार कहते हैं। ऐसा कहने वाले व्याकरण तथा न्याय दोनों से ही अनभिज्ञ हैं। अवतरतीति अवतारः, व्याकरण के सिद्धान्तानुसार बन ही नहीं सकता। अवतार शब्द की सिद्धि में घञ् प्रत्यय होता है वह घञ् प्रत्यय कर्ता में होता ही नहीं फिर 'अवतरतीति अवतारः' बनेगा कैसे। 'अवतरतीति अवतारः' कहने वालों की स्पष्टरूप से व्याकरण की अनभिज्ञता सिद्ध हो गई। यदि उतरने वाले को ही अवतार कहते हैं तब तो आकाश में उड़ते हुये कबूतर जब नीचे को उतरेंगे तब वे सब अवतार बन जावेंगे। केवल कबूतर ही अवतार नहीं बनेंगे किन्तु पर्वत से उतरती हुई भेड़, बकरी, छत से उतरता हुआ बन्दर, रेल से उतरते हुये गल्ले के बोरे, आदि असंख्य पदार्थ अवतार होकर अवतार शब्द के लक्षण में अतिव्याप्ति दोष कर देंगे। इस प्रकार के दूषित अर्थ को कोई भी विचारशील

मान नहीं सकता। वास्तव में 'अवतरन्ति जना येन स अवतारः' यह अवतार शब्द की व्युत्पत्ति है। जिसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि संसार पार हो जाते है मनुष्य जिसके अवलम्बन से उसको अवतार कहते हैं। भगवत् शरीर के अवलम्बन से सैकड़ों मनुष्यों का संसार पार होना इतिहास सिद्ध है अतएव अवतार शब्द ही ईश्वर के स्वरूप धारण करने को उत्तम रीति से सिद्ध कर देता है इसमें किसी प्रकार की ननु, नच, किरवा नहीं रहतो।

आप चाहे किसी धर्म से पूछिये समस्त धर्म ईश्वर को सर्वशक्तिमान् कहते हैं, अर्थात् ईश्वर में समस्त शक्तियां हैं। सर्वशक्तिमान् ईश्वर में अवतार धारण करने की शक्ति है या नहीं? यदि कहो नहीं, तो फिर तुम उसको सर्वशक्तिमान् नहीं कह सकोगे। यदि कोई पूंछे ईश्वर कैसा है तो तुमको कहना पड़ेगा कि एक शक्ति कम सर्वशक्तिमान्। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि में ईश्वर में अवतार धारण करने की शक्ति ही नहीं। बस अवतार और सर्वशक्तिमान् ये दोनों शब्द ईश्वर के शरीर धारण करने में कोई संदेह ही नहीं रहने देते।

निराकार।

कई एक सज्जनों का कथन है कि ईश्वर तो सर्वदा निराकार ही रहता है फिर यह साकार कैसे होगा। यदि ईश्वर सर्वथा निराकार रहता है तो फिर उससे हमारा अपवर्गादि सुख साध्य नहीं हो सकता। कोई भी निराकार पदार्थ कार्य की सिद्धि

नहीं कर सकता। आप अग्नि को ही देखिये, निराकार सर्व-व्यापक अग्नि सर्वव्यापक है किन्तु उससे कार्यसिद्धि कुछ भी नहीं होती। कोई भी मनुष्य निराकार अग्नि से दाल, भात, पूरी पका कर खा नहीं सकता। रसोई बनाने के लिये निराकार व्यापक अग्नि को दियासलाई आदि के जरिये से पहिले साकार बनाना होगा तब रसोई बनेगी। निराकार बिजली को साकार करने पर ही बिना तार का तार समाचार भेजता है। योग वाशिष्ठ में इसका विस्तृत वर्णन है। कथा इस प्रकार है कि एक मनुष्य की गौ बीमार थी, वह गौ को लेकर किसी वैद्य के पास गया, वैद्य ने गौ को देख कर बतलाया कि तोला भर काली मिर्चों को खूब बारीक पीसो और आध पाव मक्खन में मिला कर खिला दो, तीन दिन खिलाने से गौ अच्छी हो जावेगी। गौ वाले हज़रत बुद्धि के पहाड़ थे, इन्होंने अपने मन में विचार किया कि हमारी गौ अढ़ाई सेर दूध उस वक्त और अढ़ाई सेर दूध इस वक्त देती है इस पाँच सेर दूध से नित्य ही आधपाव मक्खन निकलता है आज गौ को तो दुहें नहीं घी तो भीतर का भीतर ही रहने दें, केवल मिर्चें पीस कर फंका दें, बस भीतर जाकर घी मिर्च दोनों मिल जावेंगे। तीन दिन तक ऐसा ही करता रहा, गौ और अधिक बीमार हो गई। फिर यह वैद्य के पास गया। वैद्य ने इसके कथन को सुन कर कहा कि हमको आश्चर्य है कि यह गौ अधिक क्यों बीमार हो गई, गाय को रोग खुश्की का था और हमने तर औषधि बतलाई

थी। तुम कहते हो कि हम आधपाव मक्खन में मिला कर तोला भर मिर्च देते रहे फिर हमको नहीं मालूम गौ अच्छी क्यों नहीं हुई। कहीं तुमने मक्खन के स्थान में घी तो नहीं दे दिया। यह सुन कर उस हजरत ने अपनी विचित्र बुद्धि की कल्पना कही कि हमने दूध तो निकाला ही नहीं, मक्खन भीतर ही रहा, मिर्चें फंका दीं। वैद्य जी हंस पड़े और हंस कर कहने लगे कि आप अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से काम न लें हमारी गंवार कहावत के अनुसार चलें। इसने आते ही गाय को दुहा और मक्खन में मिर्चें मिला कर तीन दिन तक चटवाईं, गाय अच्छी हो गई। इसी के ऊपर योग वाशिष्ठ कहता है कि—

> गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यंगपोषणम्।
> तदेव कर्मरचितं पुनस्तस्यैव भेषजम्॥
> एवं सर्वशरीरस्थः सर्पिवत्परमेश्वरः।
> विनाचोपासनामेव न करोति हितं नृणाम्॥

घृत गौओं के शरीर में व्याप्त है किन्तु वह व्याप्त निराकार घृत रोग का नाश नहीं कर सकता। जब उसको दही के जरिये से साकार बना लेते है वही निराकार घृत रोगनाशक बन जाता है। जैसे घृत गाय के शरीर में व्याप्त होने पर भी रोग को दूर नहीं कर सका इसी प्रकार उपासना के द्वारा यदि ईश्वर प्रकट न किया जावेगा तो मनुष्यों का भी अपवर्ग साधन न होगा।

रही बात यह कि निराकार पदार्थ साकार नहीं होता, ऐसा कहना बेसमझ लोगों की बात है।

जीवोनिराकारशरीरधारी
तथैव व्योमाग्निशरीरवन्तौ।
सर्वस्वरूपस्य कथं न विष्णो-
र्देहोहि भूयाच्छ्रुतिभिः प्रदिष्टः॥

जीव जो है वह निराकार है किन्तु निराकार जीव अनेक शरीर धारण करके साकार बन जाता है, इसी प्रकार निराकार आकाश और निराकार अग्नि ये दोनों शरीरी बन जाते हैं। इसको ऐसे समझिये कि अग्नि सब जगह व्यापक है। संसार में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है कि जिसमें अग्नि न हो, लोहे की कील लेकर पत्थर पर मार दें, लोहे और पत्थर में व्यापक निराकार अग्नि साकार होकर रुई में बैठ जाता है। यज्ञ में उत्तरारणि और अधरारणि दो लकड़ियों का मन्थन होता है। इन दो लकड़ियों में व्यापक निराकार अग्नि साकार बनता है उसी से यज्ञ होता है, दियासलाई की सींक में व्यापक निराकार अग्नि घिस देने से साकार बन जाता है। कौन कहता है कि निराकार पदार्थ साकार नहीं हो सकता ?

अजन्मा का जन्म।

किसी किसी मनुष्य का यह प्रश्न है कि ईश्वर तो अजन्मा है फिर वह अजन्मा ईश्वर जन्म कैसे ले लेगा। यदि जन्म लेता

है तब तो वह अजन्मा नहीं, यदि अजन्मा है तो फिर उसका जन्म नहीं हो सकेगा। आप यह अंधेर मचाते हैं कि ईश्वर को अजन्मा भी कहते हैं और फिर दशरथ तथा वसुदेव के घर में उसका जन्म भी मानते हैं।

इस शंका के ऊपर बहुत से मनुष्य उछल कूद मचाते हैं और अपने मन में यह समझ बैठते हैं कि इस शङ्का का तो उत्तर कोई दे ही नहीं सकता किन्तु धन्य है वेद भगवान् तुझको, तैंने इस शंका का उत्तर सृष्टि के आरम्भ में ही दे दिया। श्रोता ध्यान से सुनें, वेद भगवान् क्या कहते हैं—

प्रजापतिश्चरति गर्भे
अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

प्रजापति ईश्वर गर्भ के अन्दर आता है। है तो वह अजन्मा किन्तु अजन्मा होकर के भी अनेक प्रकार से जन्म धारण करता है उसके योनि स्वरूप को धीर भक्त देखते हैं वह कौन ईश्वर है जिसमें यह समस्त भुवन ठहरे हैं।

जब वेद भगवान् स्वतः ही अजन्मा ईश्वर का जन्म बतला रहे हैं तब उसके जन्म धारण करने में चीं चपट कैसी, तर्क हुज्जत का क्या काम ? कई एक मनुष्य कहते होंगे कि वेद अजन्मा ईश्वर का जन्म भले ही बतलावे किन्तु यह बात हमारे दिमाग में समा नहीं सकती। इसके उत्तर में हम यही

कहेंगे कि तुम कोशिश नहीं करते, नहीं तो पांच मिनट में समझ में आ सकता है। समझिये हम समझाते हैं। जिस प्रकार ईश्वर अजन्मा है उसी प्रकार वेद जीव को भी अजन्मा बतलाता है।

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह जीव न कभी पैदा होता है और न कभी मरता है, न कहीं से आता है और न कहीं जाता है, यह अज अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, प्राचीन है, शरीर के कटने से यह कटता नहीं।

इस श्रुति ने जीव को अजन्मा बतलाया है। यही अजन्मा जीव बद्दू धोबी के घर में पैदा होता है और १५ वर्ष का होकर चौधरी धमधूसरसिंह की लड़की के साथ विवाह करवा लेता है। तेईसवें वर्ष में ग्रेजुएट और इकत्तीसवीं वर्ष में जज बन जाता है। बारह तेरह बच्चे पैदा कर लेता है, और बुड्ढा होकर पेंशन पा जाता है। आप इस पर हुज्जत क्यों नहीं मचाते कि जीव तो अजन्मा है वह अजन्मा होकर बद्दू धोबी के घर में पैदा कैसे हुआ, उसका विवाह किस प्रकार सच्चा कहा जावेगा, अजन्मा के लड़के अजन्मा की पेंशन फिर अजन्मा मर गया। जो अजन्मा है वह मरेगा कैसे। अजन्मा जीव सब बातें कर

लेता है और तुम्हारी बुद्धि में समा जाता है किन्तु अजन्मा ईश्वर जब शरीर धारण करे तब तुम तवेले में दुलत्ती चलाते हो। समझो, सोचो, गौर करो, और इतना भी तो विचारो कि जब अजन्मा जीव के जन्म में कोई हुज्जत सामने नहीं आती तो फिर अजन्मा ईश्वर के जन्म में हुज्जत कैसे कूद पड़ेगी।

कर्मबन्धन !

कई एक सज्जन यह कहेंगे कि जीव तो कर्मबन्धन में फंस कर जन्म लेता है किन्तु ईश्वर को कर्मबन्धन है नहीं तो फिर वह जन्म कैसे लेगा ?

यह शङ्का देखने में बहुत बड़ी है किन्तु है सारशून्य। जेलखाने का एक दृष्टान्त इस शंका को नेस्तनाबूद कर देता है।

किसी शहर में गवर्नमेण्ट का जेलखाना है उसमें कौन जाते हैं जो सरकारी कानून को तोड़ते हैं, संसार को शान्ति भंग करना चाहते हैं, दूसरे की बहू बेटियों को बुरी निगाह से देखते हैं, दूसरों का माल चुराते हैं, दूसरों को कष्ट पहुंचाते या मार डालते हैं। इन बुरे कर्मों के फल से उनको जेलखाने में जाना पड़ता है किन्तु दैवयोग से कहीं इस शहर में शहंशाह आ जावें और वे रात को भारत गवर्नमेण्ट से कह देवें कि कल हम आठ बजे जेलखाना देखेंगे। अब क्या था भारत गवर्नमेण्ट ने सब प्रबन्ध कर दिया। सुबह के सात बजे हैं, जेलर साहब कहाँ हैं जेलखाने में, कमिश्नरी के कमिश्नर कहाँ हैं जेलखाने में, शहर के बड़े २ रईस कहाँ हैं जेलखाने में, प्रान्तीय गवर्नमेण्ट

कहां है जेलखाने में। अब ज्यों ही आठ बजे कि भारत गवर्नमेण्ट और शहंशाह जेलखाने में पहुंचे। शहंशाह ने कैदियों को देखा किसी कैदी को छोड़ दिया, किसी की सजा कम करदी, किसी को रोगी देख अस्पताल भिजवाया और दश बजे वहां से चल दिये। सोचिये, कैदी जेलखाने में क्यों गये ? कर्मबंधन में फंस कर, और शहंशाह क्यों गये ? कैदियों पर दया करने के लिये।

कारागृहे गच्छति भूमिपालो हेतुर्दया तत्र न कर्मबंधः।
एवं च सर्वेश्वरदेवदेवो दयावतारो न च कर्मतंत्रः॥

शहंशाह जो कारागृह में जाता है उसमें कर्मबन्धन हेतु नहीं है किन्तु दया हेतु है। इसी प्रकार जीव जो संसार रूपी जेलखाने में आता है वह कर्मबंधन में फंसकर आता है और ईश्वर जो इस संसार में आते हैं उनके आने में केवल दया ही हेतु है।

कर्मबंधन में फँसे हुए जीवों का उद्धार करने के लिये जगदीश्वर कभी कपिल बन कर आता है, कभी व्यास बन कर आता है, किन्तु जब उसको अपने पापी जीवों पर अपार दया करनी होती है तब वही निराकार चतुर्भुजी रूप धारण करके राम और कृष्ण बन कर खुद ही कूद पड़ा करता है। बस सिद्ध हो गया कि ईश्वर के शरीर धारण करने में दया ही हेतु है फिर यह क्यों कहा जाता है कि जब ईश्वर के कर्म नहीं तो वह संसार में कैसे आवेगा।

आवश्यकता ।

किसी २ महानुभाव का एक यह भी प्रश्न है कि ईश्वर को अवतार धारण करने की क्या जरूरत ।

ठीक है, जो जीव ईश्वर की अपार महिमा को नहीं जान सकता भला फिर वह ईश्वर के अवतार की जरूरत को क्या समझेगा। जरूरत पूछने वालों से हमारा प्रश्न है कि ईश्वर और जितने काम करता है उन सबकी जरूरत आप समझ गये? यदि सब की जरूरत समझ गये हो और केवल अवतार की बाकी रह गई हो तब फिर अवतार की हम बता देंगे। यदि तुम ईश्वर के किसी काम की भी जरूरत नहीं समझे, ईश्वर के सभी कामों में तुम्हारी बुद्धि चौपटानन्द है तो फिर तुम्हारा कौन हक है कि जिससे तुम अवतार लेने की जरूरत का प्रश्न करो। हम पूँछते हैं कि ईश्वर ने और काम किये सो किये किन्तु सांप को पैदा क्यों किया, जिसके फुंकरते ही आदमी टें हो जावे, सांप के पैदा करने की क्या जरूरत? हम मान लेंगे कि अभी आपने सांप की जरूरत का सबक नहीं पढ़ा। आप यही बतलाइये कि यह शेर क्यों बनाया गया जो संसार के प्राणियों को कच्चा ही चबा जाता है, इस शेर की क्या जरूरत? हम यह भी मान लेंगे कि इसका बताने वाला गुरु तुम्हें कोई नहीं मिला है। आप यही बतला दीजिये कि मनुष्य के मूंछ दाढ़ी क्यों लगा दी। एक लड़का पैदा हुआ, १८ वर्ष की उम्र तक

उसका मुख चिकना बना रहा इसके बाद मुख पर बाल उगने शुरू हुये, दो वर्ष में बालों ने मुख को घेर लिया, अब यदि आठवें दिन नाई को न बुलावें तो खरदूषण कैसी सूरत हो जावे और जिन हमारी मां बहिनों के मूंछ दाढ़ी नहीं उगी उनका क्या बाप मर गया, बतलाइये इस मूंछ दाढ़ी की क्या जरूरत ? हमने यह भी माना कि योरुप निवासी तुम्हारे गुरू इस फिलास्फी को अभी नहीं समझे। अच्छा आप एक काम और करिये—चार बड़े २ आलिम टर्की से बुलाइये और चार जर्मनी से, चार रूस से और चार ही जापान से, चार इङ्गलैण्ड से तथा चार महामहोपाध्याय भारतवर्ष से। इन चौबीस सज्जनों को बिठला कर यह प्रश्न करिये कि बंबूर (कीकर) में कांटे की क्या जरूरत ? बस सबके इल्म खतम। आलिम भी चुप, जर्मनी वाले भी चुप, अमेरिका तथा रूस वालों की जबान बन्द, जापान के लामा तथा भारतवर्ष के पंडित मिट्टी खोदने लगे। सब विद्याओं के विद्वान् हैं किन्तु इतना ज्ञान इनको भी नहीं कि बंबूर में कांटा क्यों लगाया। एक दिन एक सज्जन हमारे पास आये और बोले कि इसका उत्तर तो हम दे दें, हमने भी कहा दीजिये। उन्होंने कहा कि यदि बंबूर में कांटा न लगता तो इसको ऊंट खा जाता। हमने कहा कि वह तुम्हारा ताऊ ऊंट कांटे भी खा जाता है। उसने जवाब दिया कि तो अब हम नहीं जानते। देख लिया कि यह जीव संसार की समस्त विद्याओं को पढ़ गया, रेलें दौड़ा दीं, तार खड़खड़ा दिये, हवाई जहाज

उड़ा दिये, मशीनगनें फैला दीं, फ़ारसी पढ़ गया, मंतक कण्ठ करली, डाक्टर बन गया, किन्तु ईश्वर की सृष्टि में यह न जान सका कि बंबूर में कांटे की क्या जरूरत। जो तुच्छ जीव बंबूर में कांटे की जरूरत को ही नहीं जानता वह ईश्वर के अवतार को जरूरत को क्या समझेगा।

ईश्वर को अवतार धारण करने की क्या जरूरत है, यह प्रश्न नवीन नहीं, प्राचीन है। एक दिन अकबर ने बीरबल से कहा कि ईश्वर की आज्ञा में देवता, ऋषि, मुनि तथा पार्षद रहते हैं फिर इनमें से किसी को भी आज्ञा न देकर वह ईश्वर स्वतः क्यों अवतार धारण करता है। इस प्रश्न को सुन कर बीरबल ने कहा कि अच्छा इस प्रश्न का उत्तर हम कुछ दिन पश्चात् देंगे। बीरबल ने एक होशियार कारीगर को तलाश किया और उसको शाह अकबर के लड़के को दिखलाया जो उस समय चौदह पन्द्रह महीने का था और उस कारीगर से कहा कि तुम हूबहू एक ऐसा ही लड़का मोम का बनाओ। देखने में इसमें और उसमें कोई भेद न रहे। कारीगर ने लड़का बनाया जो सूरत शकल में सर्वथा इस राजकुमार के सदृश था। फिर बीरबल ने इस लड़के के लिये उसी प्रकार के वस्त्र बनवाये। जब यह सब मामला तैयार हो गया तब एक दिन बीरबल ने बादशाह से कहा कि हुजूर गर्मी बहुत पड़ती है हमारी इच्छा है कि आज सायंकाल नाव में सवार होकर यमुना की हवा खाई जावे। बादशाह ने स्वीकार कर लिया और सात बजे का

समय भी दे दिया। नियत समय से पहिले नाव सज गई थी, समय पर ही बादशाह नाव पर आ विराजे। बादशाह के साथ में शहर के रईस, अदालतों के हाकिम, अमीर और उमराव, फौज के बड़े २ आफीसर, बाडीगार्ड तथा बड़े २ तैराक मल्लाह नाव पर आ गये। सब आ गये, किन्तु बीरबल ने कुछ देर कर दी, १५ मिनट के बाद जब कि कुछ २ अँधेरा हो गया था बीरबल उस लड़के को लेकर आया। बादशाह ने पूछा कि इस लड़के को क्यों ले आये। बीरबल ने कहा कि इकले में यह लड़का रोता था इसको मैं ले आया हूं, इसके लाने के कारण मुझे देर भी लग गई। यमुनाजी की लहरों की ठण्डी हवा लगने से इस बच्चे को नींद आ गई। बादशाह ने कहा कि अच्छा बैठो। बीरबल नाव के एक-किनारे पर बैठ गया। मल्लाहों को नाव चलाने का हुक्म हुआ। नाव धीरे २ चलती हुई यमुना के बीच धार में पहुंची। बीरबल ने बड़ी युक्ति के साथ उस लड़के को यमुना में डाल दिया और एकदम चिल्ला उठा कि हाय २ लड़का गिर गया। इस घटना को देखते ही बादशाह फौरन यमुना में कूद पड़े और तैरते हुए लड़के को जाकर पकड़ा। पकड़ते ही मालूम हो गया कि लड़का नकली बना हुआ है, उसको छोड़ दिया। इतने में बीरबल ने नाव को बादशाह के पास पहुंचवा दिया। बादशाह ऊपर चढ़े, दम लेकर बीरबल से गुस्सा हुये कि इतनी गुस्ताखी। बीरबल ने कहा कि आप मुझे कहते हैं क्या आपको उचित था कि इतनी गुस्ताखी करें।

बादशाह ने कहा मैंने क्या गुस्ताखी की है। बीरबल बोला कि यदि मैंने इञ्च भर गुस्ताखी की है तो आपने गज भर गुस्ताखी की है, यदि मैंने पाव भर गुस्ताखी की तो आपने चार पसेरी गुस्ताखी की। इस नाव के ऊपर शहर के रईस, अदालतों के हुक्काम, फौज के आफीसर, अमीर और उमराव, बाडीगार्ड, बड़े बड़े तैराक मल्लाह, और खास में दीवान मौजूद, किसी को भी हुक्म न देकर आप यमुना में खुद कूद पड़े, यह गुस्ताखी नहीं तो क्या है। आपने यह बहुत ही अनुचित किया। बादशाह बोले कि ऐ बीरबल ! जिस समय हमको यह मालूम हुआ कि हमारा प्राणप्यारा पुत्र यमुना में डूबा जाता है, लड़के के प्रेम ने हमको खींच लिया, हम बातें करना, हुक्म देना, सब भूल गये और प्रेम में बँध कर एकदम कूद पड़े। बीरबल ने कहा कि बस हुजूर ! ईश्वर के अवतार का उत्तर हो गया। जिस समय ईश्वर के प्राण प्यारे भक्त के ऊपर कष्ट पड़ता है वह किसी को भी हुक्म न देकर खुद ही कूद पड़ा करता है। प्रभु कृष्णचन्द्र ने गीता में सामान्यता से अवतार धारण करने की तीन आवश्यकतायें बतलाई हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

सज्जनों की रक्षा करना, दुष्टों को दण्ड देना, धर्म की स्थापना करना ही अवतार धारण करने की आवश्यकतायें हैं।

इन तीन कारणों में से अवतार धारण करने का एक

कारण बीरबल ने अद्भुत घटना से दिखला दिया और दिखलाया भी इस प्रकार से कि अकबर को मानना ही पड़ा।

जो उत्तर बीरबल ने दिया है वह इतिहास में बावन तोले पाव रत्ती सच्चा उतरता है। करिये उस दिन को याद जिस दिन ग्राह ने गज का पैर पकड़ लिया और आपत्ति में पड़े हुये गज को छोड़ कर हथिनियां तथा बच्चों वाला झुण्ड चला गया, अब इसका कोई भी रक्षक नहीं रहा। पूर्वकाल की तपस्या के प्रभाव से हाथी को अपना रक्षक ईश्वर ही जान पड़ा। उस समय सब की आशा छोड़ कर दुःखित हुआ गज ईश्वर से पुकार करता है। इसको व्यासजी ने इस प्रकार लिखा है—

अन्तः सरस्युरुबलेन पदे गृहीतो,
ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः।
आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ,
तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय ॥ १
श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेय-
श्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः।
चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्मा-
द्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥ २

जल में जब हस्ती का पैर बलवान् ग्राह ने पकड़ लिया, जिस समय हस्ती को कोई भी रक्षक नही मिला, उस समय दुःखित आर्त हस्ती अपनी सूंड़ में एक कमल का फूल लेकर यह बोला कि हे आदिपुरुष, हे अखिल लोकनाथ, हे तीर्थश्रव,

हे श्रवणमंगलनामधेय ! इस समय संसार में यदि कोई मेरा रक्षक है तो आप हैं। पूर्वजन्म के भक्त दुःखित गज की इस आर्तवाणी को भगवान् हरि सुन कर गरुड़ पर सवार, हस्त में सुदर्शन चक्र को लेकर आ पहुंचे। सुदर्शन चक्र से ग्राह के शरीर के टुकड़े करके उसके मुख से पैर खींच कर आर्तगज को ग्राह से छुड़ा लिया।

इस इतिहास पर भारत के कवियों की बड़ी २ विलक्षण कवितायें हैं। एक मुसलमान कवि हस्ती की प्रशंसा करता है, वह कहता है कि—

लिखो पढ़ो ना जप कियो, तप ना कियो गजराज।
रहिमन फूल दिखाय कै, टेर लियो ब्रजराज॥

लिखने पढ़ने तथा तप करने का मुख्य अभिप्राय यही होता है कि ईश्वर में उत्कट भक्ति हो। इन गुणों के न रहते हुये भी हस्ती ने ईश्वर में वह प्रेम दिखलाया कि भगवान् को समस्त कार्य छोड़ कर हस्ती की रक्षार्थ आ जाना पड़ा। इसका नाम है अद्भुत प्रेम। बीरबल ने अपने कर्त्तव्य से जो प्रेम घटना दिखलाई थी वह प्रेम घटना हस्ती के इतिहास में ज्यों की त्यों स्पष्ट रूप से विद्यमान है। बस अब आप समझ गये होंगे कि दुःखरूपी समुद्र में डूबे हुये भक्त को सुखी कर देना यह भगवदवतार की प्रथमावश्यकता है।

आजकल संसार में हुज्जतबाजी की उन्नति हो गई है। प्रत्येक मनुष्य धर्म के ऊपर एक दो हुज्जत अवश्य हो

बैठता है। इस प्रकरण के ऊपर एक मनुष्य ने कहा कि यह जो कुछ भी अवतार की आवश्यकता में आपने कहा हम इसको नहीं मानते। हम तो केवल वेद को ही प्रमाण मानते हैं। वेद की आज्ञा ही हमारा कर्त्तव्य है। ठीक है, आज हिन्दू लोग उस इतिहास को असत्य कहते हैं कि जिसको एक दिन मुसलमान कवि रहिमन ने सत्य समझ कर ही उसके ऊपर पूर्वोक्त दोहा बनाया था। हमें शोक के साथ कहना पड़ता है कि जिस अवतार का मुसलमान मंडन कर जायं उसी वैदिक अवतार के खण्डन करने का हिन्दू लोग ठेका ले बैठे हैं। अच्छा जाने दीजिये हमारा इतिहास गलत। अब हम इतिहास को छोड़ कर अवतार धारण करने की आवश्यकता पर दो दो बातें वेद से ही करेंगे किन्तु पहिले यह टटोलना है कि जो लोग वेद की पुष्टि मांगते हैं क्या वे लोग अपना समस्त कर्त्तव्य वेदानुकूल ही करते हैं? इन वेद के ठेकेदारों से हमारा प्रश्न है कि तुम रेल में क्यों सवार होते हो, क्या रेल पर सवार होना किसी वेदमंत्र में लिखा है? काम पड़ने पर तुम तार क्यों देते हो, क्या तार का देना भी वैदिक है? तुम कोट, बूट, पतलून और टोपी क्यों लगाते हो, इनके लगाने में कोई तो वेदमंत्र दिखलाओ। तुम दिन में पांच चार बार जो लड्डू, पेड़ा, दाल, भात, रोटी, उड़ा जाते हो क्या वेद ने तुम्हें उसकी आज्ञा दे दी है? तुम जो लोटा उठा कर पाखाने की तरफ भागते हो, क्या इसके लिये तुमको कहीं पर वेद का प्रमाण

मिला है ? संसार में तुम सैकड़ों कार्य नित्य करते हो उनके लिये तो तुम वेद को ताक में रख देते हो और अवतार के लिये वेद खोजते फिरते हो, यह तुम्हारी कट्टर नास्तिकता का प्रमाण है। तुम यह कहोगे कि इन कार्यों के करने से हमको सुख मिलता है इस कारण करते हैं। हम भी यही कहेंगे कि अवतार की भक्ति द्वारा संसारबंधन टूट कर हमको परमसुख साधक मोक्ष मिलता है फिर वेद का अडंगा क्यों लगाया। चलिये हमने मान लिया कि हम झूठे, हमारी युक्तियां झूंठी, हमारा इतिहास झूठा, केवल वेद सच्चा है। हम अब ईश्वर के अवतार धारण करने की आवश्यकता को वेद से ही दिखलाते हैं किन्तु हमको यह विश्वास नहीं है कि हुज्जतवाज वेद के प्रमाण को मान लेंगे। इनके द्वारा वेद का प्रमाण मांगा जाना केवल अवतारवाद में एक अडंगा लगाना है। वेद को मान लेना यह इनका कर्त्तव्य कभी हो नहीं सकता। ये मानें या न मानें किन्तु 'ईश्वर को अवतार धारण करने की कथा आवश्यकता है' इसको वेद से सिद्ध कर देना हमारा कर्तव्य है। अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिये हम वेदमंत्र को उठाते हैं, देखिये—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव,
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते,
युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥

ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ म० १८

ईश्वर अपने रूप को अपने प्रेमी भक्त के दिखाने के लिये अनेक प्रकार से धारण करता है। ईश्वर अपनी माया का आश्रय लेकर असंख्य रूपों को धारण करता है। यों तो उसके सैकड़ों रूप हैं किन्तु उन सब में दश मुख्य हैं।

इसी मंत्र को लेकर जगद्गुरु शंकराचार्य ने निराकारवादियों का पराजय कर दिया। शास्त्रार्थ में निराकारवादियों ने यह दावा किया था कि ईश्वर सर्वथा ही निराकार है अतएव उसके मानने से कोई भी लाभ नहीं, जब कोई भी लाभ नहीं तो बिना प्रयोजन का ईश्वर क्यों माना जावे, इस पूर्वपक्ष को सुन कर जगद्गुरु शंकराचार्य बोले कि—

मायाभिरिन्द्रः पुरुरूप ईयत,
इत्येव तस्य बहुरूपता श्रुता।
तस्माच्चिदात्मा प्रकृतेः परः प्रभु-
र्ज्ञेयोस्ति मोक्षाय मुमुक्षिभिर्मुदा॥

शंकर दिग्विजय।

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' वेद के केवल इस एक मंत्र से ही ईश्वर के बहुत अवतार सिद्ध हो जाते हैं। ईश्वर चैतन्य है वह अवतार धारण करके भक्तों की रक्षा करता है, प्रकृति से परे है. अतएव मोक्ष पाने वालों को मोक्ष पाने के लिये उस परमात्मा का ज्ञान करना परमावश्यकीय है।

इस उत्तर पर निराकारवादियों का पक्ष गिर गया और शंकर का विजय हो गया। अब कोई कैसे कह सकता है कि

वेद में ईश्वर के अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं बतलाई गई। जिस समय भगवान् विष्णु ने देवहूती द्वारा कपिल शरीर को प्रकट करके देवहूती को ज्ञान बतलाया है उस समय इस वेद मंत्र के अभिप्राय को ध्यान में रख कपिल-देवजी माता से कहते हैं—

पश्यन्ति मे रुचिराण्यंबसंतः
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
शाकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ३

हे अम्ब ! अम्मा ! सन्त जो भक्त हैं केवल वे ही हमारे रूप को देखते हैं उनसे भिन्न माया का गुलाम बना हुआ कोई भी मनुष्य हमारे रूपों को देख नहीं सकता। मेरे रूप साधारण नहीं हैं, बड़े विलक्षण है। मेरे रूपों के मुख सर्वदा खिले रहते हैं। मेरे मुखों के नेत्र थोड़े २ लाल रहते है। मेरे रूप पांच भौतिक नहीं हैं किन्तु दिव्य हैं। मेरे रूपों का दर्शन खाली दर्शन नहीं है किन्तु वे रूप अनेक वरों के देने वाले हैं। अम्मा हो ! ऐसे रूपों को तो केवल भक्त ही देखते हैं। हमारे भक्त हमारे रूपों को ही देख लेते हों इतना ही नहीं किन्तु हमारे रूपों के पास बैठकर भक्तों की हमसे दो दो बातें भी हो जाती हैं।

हमने एक वेद का प्रमाण दिया, उसकी पुष्टि में दो प्रमाण और भी दिये। अब भी जिनको सन्तोष न हुआ हो वे एक

प्रमाण वेद का और सुन लें—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूंस्वाम् ॥

यह ईश्वर बहुत बकवाद से नहीं मिलता, अधिक बुद्धिमान होने से नहीं मिलता, अनेक शास्त्रों के श्रवण से भी नहीं मिलता। जो समस्त संसार पर थूक कर प्रभु को शरण जाता है उस अनन्यभक्त को यह परमात्मा मिलता है उसी को ईश्वर अपने शरीर के दर्शन करवाता है। ईश्वर के दर्शन मात्र से मनुष्य का भवबंधन कट जाता है, इसको ऋग्वेद इस प्रकार लिखता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

जब हम परावर जगदीश्वर के दर्शन पाते हैं तब हृदय की तर्क वितर्क रूपी ग्रन्थि टूट जाती है, समस्त संशय कट जाते हैं, हमारे शुभाशुभ कर्म क्षय हो जाते हैं, अतएव हम समस्त सुख साधन मोक्ष के अधिकारी बनते हैं।

जन्ममरण रूपी घोर दुःखों से जीव का उद्धार करने के लिये परमात्मा रूप धारण करके हमारे सामने आता है। सिद्ध हो गया कि भक्त के प्रेम में बंध कर भक्त के संकट दूर

करने के लिये ईश्वर अवतार धारण करता है, अतएव बीरवल की दिखलाई हुई अवतार की आवश्यकता को वेद अनेक मंत्रों से सिद्ध करता है। शास्त्र के देखने से यह भी ज्ञान हो जाता है कि गीता की कही हुई अवतार की आवश्यकता रहने पर भी भिन्न २ अवतारों में रूप धारण करने की भिन्न २ आवश्यकतायें रहती हैं। संसार को अनादि वेदज्ञान देने के लिये ब्रह्मा का अवतार हुआ। संसार की विभूतियों को पैर से ठुकरा देने के लिये प्रभु शंकर का अवतार हुआ। मैं सर्वव्यापक हूं इस बात को प्रत्यक्ष दिखलाने के लिये भगवान् नृसिंह खम्भे से ही निकल बैठे। मैं सर्वशक्तिमान् हूं, इसको सिद्ध करने के लिये ईश्वर ने एक छोटा सा अवतार धारण किया किन्तु जब ब्रह्माण्ड नापने लगे तब वह उस छोटे वामन अवतार के तीन चरण का भी न हुआ। धर्ममर्यादा का आदर्श दिखलाने के लिये राघव रामचन्द्रजी का अवतार है। उपनिषदों को दुह कर, दही जमा कर, गीता रूपी मक्खन निकाल कर पापी जीवों के आगे रख देने के लिये भगवान् कृष्ण का अवतार है। यदि ईश्वर ब्रह्मा का अवतार धारण न करता तब संसार को ईश्वरीय ज्ञान वेद कैसे मिलता। ईश्वरीय ज्ञान वेद का संसार में आने का कोई निर्भ्रान्त मार्ग दूसरा है ही नहीं। कई एक सज्जन यह कहेंगे कि इलहाम और पैगाम से भी ईश्वरीय ज्ञान मिलता है। ठीक है, किन्तु वह सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं रहता वह तो संदिग्ध होता है। शंकर ने जो संसारत्याग दिखलाया है, इस प्रकार

का त्याग विना ईश्वर के कोई दिखला नहीं सकता। एकदम माया के लात मार कर सर्वदा अकिंचन रहना और संसार की रक्षा के लिये विष भी पी जाना यह ईश्वर ही दिखला सकता था। सभी लोग कहते हैं कि संसार के प्रत्येक परमाणु में ईश्वर विद्यमान है किन्तु जब उनसे प्रमाण मांगते हैं तब पुस्तकों के पन्ने लेकर सामने आते हैं। पुस्तकों के पन्ने नास्तिकों को तोषदायक नहीं हो सकते, इस त्रुटि को दूर करने लिये भगवान् नृसिंह खंभे से निकल बैठे और यह दिखला दिया कि तुम प्रत्यक्ष देख लो म अणु अणु में विद्यमान हूं। संसार ईश्वर को सर्वशक्तिमान् कहता है उसकी पुष्टि में संसार के पास आप्त प्रमाण है जिसको नास्तिक सर्वथा मिथ्या कहा करते हैं। भगवान् ईश्वर ने वामन रूप धारण कर ब्रह्माण्ड को नाप प्रत्यक्ष दिखला दिया कि देखो मैं ब्रह्माण्ड भर को तीन कदम में लेता हूँ, यह सर्वशक्तिमान् का चमत्कृत दृश्य है। वेद में कहे हुये धर्म का आचरण करने के लिये ईश्वर ने राम शरीर धारण किया है जिनके आदर्श को देख कर शरीर के रोयें खड़े हो जाते हैं। कोटि कोटि जीव जिनके आचरण का अनुकरण करके भवबंधन को तोड़ गये और आगे को तोड़ेंगे। तलवार और बंदूक के सामने रहते हुये उपनिषद् के सच्चे भाव को गीतारूप से अर्जुन को दे दिया। कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, के मार्ग को विशदी कर दिया, इस उपकार के लिये भगवान् कृष्ण अवतार धारण न करते तो आज आप को गीता न मिलती। विना गीता के जगद्गुरु

शंकराचार्य, भगवान् रामानुजाचार्य तथा भगवान् माध्व, वल्लभ, निम्बार्क प्रस्थानत्रय कैसे मानते और प्रस्थानत्रय से वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि कैसे करते। यदि गीता न होती तो लोकमान्य तिलक को अपनी विद्वत्ता दिखलाने का अवसर ही न मिलता। गीता थी तो गीता-रहस्य बन गया। आज जिस गीता के महत्त्व को भूमण्डल की समस्त जातियां गा रही हैं जिसके ऊपर अरबी, फारसी, जर्मन, अंग्रेजी प्रभृति भिन्न २ भाषाओं में सैकड़ों भाष्य बन गये इस अलौकिक पदार्थ को संसार में प्रचलित करने के लिये कृष्णावतार की आवश्यकता थी।

जिन लोगों के दिमाग सड़ियल हो गये है वे रात दिन ईश्वर का, ईश्वर के अवतारों का, अवतारों के कारणों का, खण्डन भले ही करें किन्तु हिन्दू जाति के तो रोम रोम में ईश्वरभक्ति भरी है। जब कोई हिन्दू घोर विपत्ति में पड़ जाता है तब गृह, पुत्र, कलत्र, लक्ष्मी, बल, पराक्रम इनको तुच्छ समझ करके ईश्वर की शरण जाता है और वे सेव्य प्रभु अपनी अपार कृपा से इस दीन हिन्दु का कष्ट दूर करके उसको अपनी छाती से लगाते हैं। यह घटना सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक होती चली आती है।

पवित्र भारतवर्ष में ईश्वरावतार पर शंका करना ही घोर पाप है, भारतवर्ष का इतिहास बड़े जोर से कह रहा है कि इस देश के मार्कण्डेय, ध्रुव, प्रह्लाद प्रभृति छोटे २ दुधमुहे बच्चों ने

अपने प्रेम की डोर से ईश्वर को खींच कर साकार बना दिया। जिस देश का इतिहास बार बार ईश्वर के अवतार का साक्षी हो उस देश में ईश्वरावतार नहीं होता यह कथन मूर्खता सिद्ध करने के सिवाय और कुछ भी सार नहीं रखता।

इतिहास कहता है कि प्राचीन समय में एक हिरण्यकशिपु नामक प्रबल दैत्य शासक हुआ। उसने अपने राज्यबल से संसार से ईश्वर को उड़ाना चाहा। आजकल जो ईश्वरद्वेषी हैं वे ईश्वर को निराकार बतलाते हैं किन्तु यह इतना प्रबल नास्तिक हुआ कि इसने निराकार और साकार दोनों की ही चटनी बना दी। इसके राज्य में ईश्वरसत्ता की चर्चा करना, या ईश्वर का नाम लेना घोर अपराध था और ऐसा करने वाले को तीव्र दण्ड दिया जाता था। कुछ काल पर्यन्त सनातनधर्म को इस कठोर दारुण समय का भी दृश्य देखने का अवसर मिला। अन्त सभी का होता है। इस राजा के घर में एक बच्चा पैदा हुआ। धीरे धीरे वह कुछ बड़ा हुआ, गुरु के यहां पढ़ने भेजा गया, कुछ समय के बाद जब बच्चा पांच वर्ष का हो गया तब इस राजा ने एक दिन आज्ञा दी कि आज लड़का हमारे पास भेजा जावे। इस आज्ञा को सुन कर गुरु ने उसके पाठ को भली भांति याद करवा दिया। रानी ने लड़के के उबटन लगाया, स्नान करवाया, उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषणों से सज्जित कर राजा के पास भेज दिया। राजा ने प्रणाम करते हुये बच्चे को उठा कर छाती से लगाया और

अपनी गोद में बिठला लिया । इसके पश्चात् राजा ने लड़के से पूछा कि संसार में वह कौन चीज है जो तुम्हें प्रिय लगती है, राजा का प्रयोजन था कि जिन जिन वस्तुओं को यह अपने प्रेमपात्र बतलावेगा उन वस्तुओं को इसके लिये देने का हम हुक्म दे देंगे, इस अभिप्राय को आगे रख राजा का यह प्रश्न था कि तुमको कौन वस्तु प्यारी है । पिता के इस प्रियवाक्य को सुन कर लड़का बोला कि पिताजी मुझे जो प्यारा है उसको सुनो—

तत्साधुमन्येऽसुरवर्य देहिनां,
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमंधकूपं,
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥

दैत्येन्द्र ! इस गृहस्थ में मनुष्यों की बुद्धियां सर्वदा पाप में जाया करती हैं इस कारण मनुष्य अन्धकूप सदृश घर को छोड़ वन में पहुंच वहां भगवान् की भक्ति में लग जावे मुझे तो यही प्यारा है, मैं इसी को श्रेष्ठ मानता हूं ।

छोटे से बच्चे के इस वाक्य को सुन कर राजा बहुत हंसा और हंस कर कहने लगा कि बालकों की बुद्धि स्वतः मार्ग नहीं टटोलती दूसरों की बुद्धियों द्वारा बतलाये हुये मार्ग पर चलने लगती है । संसार में बड़े २ चतुर लोग होते हैं, लोगों ने समझा कि राजा ईश्वर को नहीं मानता और ईश्वर के नाम से चिढ़ता तथा ईश्वरभक्तों को उग्रदण्ड भी देता है

यह समझ कर हमारे ही लड़के को मूर्खता की पट्टी पढ़ा दी। मास्टर को बुला कर समझाया कि देखो यह लड़का मूर्खों की भांति अंड बंड बकता है इसको सुधारो, आगे को यह फिर कभी इस कुमार्ग की तरफ को न झुके। गुरुजी ने राजाज्ञा को सुन कर कहा कि प्रभो! बहुत अच्छा, मैं लड़के को सुमार्ग पर लाऊंगा जिससे कभी भी यह मूर्खपन की बातें नहीं करेगा।

शंडामर्क ने पाठशाला में बैठे हुये इस बच्चे से एक दिन पूछा कि बेटा यह तुम्हारी बुद्धि में भेद कहां से आ गया, तुम इतने मूर्ख क्यों हो गये, यह भेद तुम्हारी बुद्धि में अपने आप आया है या किसी के समझाने पर आया है? इसको सुन कर उस दुधमुहे बच्चे ने उत्तर दिया कि—

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ।
तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया॥

गुरु जी! जैसे चुंबक के साथ साथ लोहा अपनेआप घूमा करता है वैसे ही ईश्वर की इच्छा से मेरा चित्त घूमा करता है।

इस कथन को सुन कर अध्यापक को बड़ा क्रोध आया और बेंत उठा कर बच्चे का मारने लगा, मारता हुआ कहता है—

दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः।
यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः॥

हमने जान लिया कि चन्दनवन जो दैत्यकुल है उसमें यह लड़का कांटे वाला वृक्ष पैदा हो गया, दैत्यों के कुल का विध्वंस करने वाले विष्णु ने यह लड़का अपने में इस प्रकार मिला लिया जैसे कुठार लकड़ी के बेंट को अपने में मिला कर उसके अवलंबन से वृक्षों को काटता है।

गुरुजी ने उग्रदण्ड से बड़ी कठिन शिक्षा दी और गुरुजी की समझ में यह बच्चा बिलकुल रास्ते पर आ गया, यह समझ कर राजा से प्रार्थना की कि भगवन्! अब आपका बच्चा ठीक हो गया। राजा ने पण्डितजी को धन्यवाद देते हुये बच्चे के बुलाने की आज्ञा दी। कुछ देर के बाद सुन्दर शृङ्गारयुक्त बच्चा आया और पिताजी के चरणों में गिर पड़ा। राजा ने उठा कर बच्चे को आशीर्वाद दिया और अपनी गोदी में बिठलाया, फिर पूछा कि चिरंजीव! तैंने गुरुजी से क्या पढ़ा? यह सुन कर यह बालक बोलउठा कि—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ १
इति पुंसाऽर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ २

विष्णु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन करना अर्थात् यह नव प्रकार की भक्ति साक्षात् विष्णु में रखना, मैं इसी पाठ को उत्तम अध्ययन मानता हूं।

बालक के इस कथन को सुन कर राजा को बड़ा क्रोध आया; क्रोधित होकर बोल उठा कि यह जितनी खराबी है सब अध्यापक की की हुई है। हम इस बात को जानते हैं कि राजभय से घबरा कर बहुत से लोग ऊपरी मन से राजा को हां में हां मिलाया करते हैं और भीतर उनके पाप रहता है, वह पाप समय पर प्रत्यक्ष हो जाता है। गुरुजी ने उत्तर दिया कि—

न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं
सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो।
नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्
नियच्छ मन्युं कददाः स्म मानः॥

राजेन्द्र! जो यह बच्चा आपसे कह रहा है, न तो ऐसा पाठ इसको हमीं ने पढ़ाया है और न किसी और ही ने, यह इसको स्वाभाविक मति है इस कारण आप क्रोध को त्याग दें। राजा ने फिर परीक्षा की, परीक्षा में सिद्ध हो गया कि वास्तव में ऐसा ही मामला है, यह इसकी स्वाभाविक चेष्टा है अतएव राजा ने लड़के से कहा कि—

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ़ शासनं किम्बलोऽत्यगाः॥

ऐ लड़के! देख, जिस वक्त मुझे क्रोध आता है लोकेश तथा तीनों लोक काँपने लगते हैं; किन्तु तू मेरे क्रोध से ज़रा

भी नहीं डरता, तू किसके घमण्ड में भूला है, तुझे किसका भरोसा है ? इस कथन को सुन कर लड़का बोला कि—

गिरि को उठाय ब्रज गोप को बचाय लीन्हों,
अनल ते उबारचो पण बालक मांजारी को ।
गज की अरज सुन ग्राह ते छुड़ाय लीनों,
राख्यो व्रत नेम धर्म पाण्डव की नारी को ॥
राख्यो गज घण्टा तले बालक विहंगम को,
भारत में राख्यो प्रण भीष्म ब्रह्मचारी को ।
त्रिविध तापहारी निज सन्तन हितकारी,
मोहिं तो भरोसो एक सांवरे गिरधारी को ॥

न केवलं मे भवतश्च राजन्
स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ।
परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमाये
ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥

राजन् ! मुझको ही उसका बल नहीं है वह समस्त बलियों का बल है, संसार में जितने भी ब्रह्मादिक बड़े छोटे हैं वे सब उसी के बश में हैं, वही सब का बल है, मुझे भी उसी का बल है।

राजा ने समझाया कि तू बच्चा है, अभी तुझको ज्ञान नहीं, यदि तू इस प्रकार की मूर्खता दिखलायेगा तो तुझको जहर दे दिया जायगा, जलती आग में डाला जायगा, पर्वतों से गिराया जायगा, भालों से छेदा जायगा, फाँसी पर लटका दिया जायगा। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार तू मरेगा

इसी प्रकार मारा जायगा, अतएव तू यह मूर्खों का आचरण छोड़ दे। इसको सुन कर लड़का बोला कि—

गले तौक पहिराओ पाँव बेड़ी ले भराओ,
गाढ़े बंधन बँधाओ औ खिंचाओ काची खालसों।
बिच्छू ले बिछाओ तापर मोहिं ले सुलाओ,
फिर आग भी लगाओ बांध कापड़ दुशालसों॥
विष ले पिलाओ तापर मूठ भी चलाओ,
माँझ धार में बहाओ बांध पाथर कमारसों।
गिरि से गिराओ काले नाग से डसाओ,
हा हा प्रीति न छुड़ाओ गिरधारी नन्दलालसों॥

इसको सुन कर राजा को क्रोध आया, हुक्म दिया कि इसको मार डालो। प्रथम दूध में संखिया मिला कर बच्चे को पिलाया, फिर उसको एक कोठरी में बिठला दिया गया, चार पहरेदार मुकर्रर किये गये और शाही हुक्म हुआ कि जब यह बच्चा मर जावे हमको फौरन खबर दो। घण्टे दो घण्टे तो पहरेदार देखते रहे, अन्त में पूछा बच्चा तेरी हालत कैसी है? लड़के ने उत्तर दिया कि बहुत अच्छी। पहरेदारों ने समझा कि अभी असर नहीं आया, और ठहर गये। जब तीन घंटे और व्यतीत हो गये तब फिर पूछा कहो तबियत कैसी है? बच्चे ने उत्तर दिया कि हमतो मजे में हैं, तुम अपनी कहो, मरे या बचे। यह सुन कर पहरेदारों ने बादशाह के यहाँ खबर पहुंचाई कि बच्चा ज्यों का त्यों है। बादशाह ने हुक्म दिया कि इस बच्चे को

ले जाओ किसी ऊँचे पहाड़ से नीचे फेंक दो। दारुण प्रकृति दैत्य उसको किसी ऊँचे पहाड़ पर ले गये और जिस स्थान में दो तीन मील नीची खड्ड थी वहां से धक्का देकर नीचे गिरा दिया। गिराने के पश्चात् घर को लौटे। रास्ते में प्रसन्न होते आते हैं कि हमको इनाम मिलेगा। चलते चलते जब शाही मकान के दरवाजे पर आये तब देखा कि लड़का दरवाजे की देहली पर बैठा है। पूछा कि तू कहाँ से आ गया, हम तो तुझको खड्ड में गिरा आये थे। लड़के ने उत्तर दिया कि हम नीचे ही नीचे चले आये इस कारण जल्दी आ गये और तुमको पहाड़ से उतरना पड़ा इससे कुछ देर लग गई।

आपने देखा होगा कि जब कोई बाबू आठ घण्टे दफ्तर में कलम की चक्की पीस कर थक कर घर आवे और उसको कहीं दरवाजे पर अपना बच्चा मिल जावे तो सारी थकावट दूर होकर मन बाग बाग हो जाता है। कहीं वह लड़का उस समय यह कह दे कि बाबूजी हप्पा, तो बाबूजी प्रेम में मग्न हो जाते हैं और बच्चे को उठा लेते हैं, फिर बच्चे से कहने लगते हैं कि बेटा क्या लेगा हप्पा, हप्पा लेगा हप्पा, लड़के ने एक बार हप्पा। कहा तो बाबूजी दश बार हप्पा कहते हैं, इस हज़रत बाबू से पूछिये कि यह हप्पा कौन डिक्शनरी में लिखा है। संसार की किसी भी डिक्शनरी में यह शब्द नहीं तो भी अबोध बच्चे के मुख से निकला हुआ हप्पा शब्द प्रेम में डुबा देता है। सच तो यह है कि पुत्र के साथ पिता का एक अलौकिक प्रेम होता है,

पिता दोनों हाथ से बच्चे को उठा कर उछाला करते हैं, उस समय बच्चा रोता नहीं–हँसता है, ऐसा नहीं होता कि उछाला हुआ बच्चा हाथ से निकल कर जमीन पर गिर पड़े। जब दो हाथ वाले बाप का बच्चा भी जमीन पर नहीं गिर सकता तो फिर जिस परमात्मा के अनन्त हाथ हैं उसका बच्चा जमीन पर कैसे गिरेगा।

यदि गिर भी पड़ा तो गिरेगा कहाँ, गिरेगा तो जमीन में ही गिरेगा। वेद कहता है कि यह भूमि विराट् भगवान् के चरण हैं, पिता के चरणों में गिरा हुआ बच्चा कभी नहीं मरता किन्तु गिरते ही पिता प्रेम से उसको छाती से लगा लेता है, फिर यह बच्चा जो ईश्वर का पुत्र बन गया है मरे तो किस प्रकार मरे। आखिर बच्चा आग में जलाया गया, भालों से छेदा गया, हाथी के पैरों के नीचे दबाया गया, किन्तु यह तो ब्रह्मभूत हो गया है, इसके मारने की शक्ति अब संसार में नहीं है। जब किसी प्रकार भी न मरा तब गुरुजी ने समझाया कि राजन् अभी यह बच्चा है, उम्र पाने पर सभी की बुद्धि ठीक हो जाया करती है, इसकी भी ठीक हो जायेगी। संगति का प्रभाव भी बड़ा विकट है, इसको हम समझावेंगे और पिताजी से भी शिक्षा दिलावेंगे, सम्भव है कि यह शीघ्र ही रास्ते पर आ जावे, इसको हमारे ही सपुर्द कीजिये। यह सुन कर राजा ने आज्ञा दी कि तुम ले जाओ और इसको जल्दी सुधारो।

ब्राह्मण ने बहुत परिश्रम किया किन्तु इस बच्चे के मन की प्रवृत्ति की चांचल्यता, राजसी ठाठ की वस्तुयें, अपनी

तरफ न खींच सकीं। एक दिन गुरुजी कहीं निमंत्रण खाने चले गये (जिसको आजकल के नास्तिक लेटरबक्स भरना कहते हैं)। इस अवसर पर सब बालकों ने इस बच्चे से कुछ उपदेश की प्रार्थना की। बच्चे ने अपने उपदेश में भक्ति की भागीरथी बहा दी। समस्त बच्चों के नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था और अपने गत जन्मों में ईश्वर से विमुख रहने के पश्चात्ताप में डूबे हुये थे। अंत में लड़कों को ज्ञान हुआ कि इस शरीर का मुख्य फल ईश्वरोपासना ही है, फिर क्या था—

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।

छोटे बच्चों के मन में जमी हुई ईश्वर प्रीति को अब कोई उखाड़ नहीं सकता। थोड़ी सी देर में गुरुजी निमंत्रण खाकर आये, उन्होंने लड़कों की दशा देखी, पूछा कि यह तुमको क्या होगया? लड़कों ने उत्तर दिया कि इस ईश्वर के भक्त लड़के के उपदेश से हमको श्रेय का ज्ञान हो गया। मास्टर को बड़ा क्रोध आया और इस लड़के को पकड़ कर बादशाह के पास लेगये। बादशाह ने पूछा क्या यह लड़का सुधर गया? मास्टर ने उत्तर दिया कि यह क्या सुधरेगा इसने तो हमारी पाठशाला बिगाड़ डाली। राजा को क्रोध आया और क्रोधवश इस लड़के को अपनेआप मारने के लिये उद्यत हुआ और बोला कि—

यस्त्वया मंदभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते॥

अरे मूर्ख ! तू कहता है कि संसार का रचने वाला तुमसे अन्य कोई ईश्वर है, यदि वह है तो बतला कहाँ है ? बच्चा उत्तर देता है कि, 'सर्वत्र' वह सब जगह है। हिरण्यकशिपु कहता है कि, यदि सब जगह है तो फिर खंभे में क्यों नहीं ? बच्चा कहता है कि खंभे में भी है। राजा कहता है कि यदि वह खंभे में है तो फिर दीखता क्यों नहीं ? लड़का कहता है कि दीखता है। राजा ने सब लोगों से पूछा कि तुम सच सच बतलाओ क्या खम्भे में ईश्वर दीखता है ? सब लोगों ने कहा कि नहीं दीखता। यद्यपि नेत्रों में भेद है. लड़के के कुछ और नेत्र हैं और राजादि समस्त समुदाय के नेत्र दूसरे हैं तो भी जबर्दस्ती से भक्त को झूठ बोलने का कलंक लगाने पर उतारू हो गये।

नेत्रों का विवरण करता हुआ मार्कण्डेय पुराण लिखता है कि—

> दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावंधास्तथाऽपरे।
> केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः॥

कोई कोई आंख ऐसी होती है कि उससे दिन में नहीं दीखता और कितने ही नेत्र ऐसे हैं जिनसे रात्रि में नहीं दीखता, इन नेत्रों के क्रम से उदाहरण उल्लू और चिड़ियां हैं। कोई २ नेत्र ऐसे भी होते हैं कि जिनसे दिन रात में एकसा दीखता है इनके उदाहरण मनुष्य और पशु हैं। कई एक मनुष्य ऐसे भी होते हैं कि जिनका एक फाटक बन्द रहता है, बाज बाज मनुष्य सफाचट्ट भी होते हैं जिनके दोनों दरवाजे खतम।

इससे भिन्न चर्मचक्षु और दिव्यनेत्र में भी बड़ा भेद है। जिस समय भगवान् कृष्ण अर्जुन को विराट रूप दिखाने के लिये उद्यत हुये तब यही कहा कि अर्जुन इस नेत्र से तुमको विराट् के दर्शन नहीं होंगे अतएव 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः' अब मैं तुझे दिव्यनेत्र देता हूं। चर्मचक्षु में और इल्म की आंख में भी बड़ा फर्क है। हरयाने के एक गांव में एक दिन डिप्टी इंस्पेक्टर मदारिस आये, उन्होंने मदरसे के लड़कों का इम्तिहान लिया, एक लड़का परीक्षोत्तीर्ण हो इनाम लेकर घर पहुंचा। घर में उसके पिता बैठे हुए थे, उन्होंने जब नया कलमदान देखा तो उनको यह भ्रम हुआ कि यह लड़का चोर है और यह आज किसी का कलमदान उठा लाया, इस भ्रम से उस जाट ने पूछा तुम यह कलमदान किसका चुरा लाये? लड़के ने उत्तर दिया कि हमारा इम्तिहान हुआ था, हम पास हुये हैं, डिप्टी साहब ने हमको यह इनाम में दिया है, जाट ने कहा इम्तिहान में तुमसे क्या पूछा था? लड़के ने कहा हमसे पूछा गया था कि सूर्य कितना बड़ा, हमने ठीक बतला दिया कि ज़मीन से तेरह लाख गुणा बड़ा है। जाट ने कहा यह सूरज जो सामने दीखता है? लड़के ने कहा कि जी हां। जाट उठा, लड़के के दो थप्पड़ दिये और कान पकड़ कर लड़के को मदरसे ले गया। सहज में मास्टर को बुलाया, मास्टर से पूछा कि क्या आज इसका इम्तिहान हुआ है? मास्टर ने कहा जी हां। जाट ने पूछा कि इम्तिहान में इससे क्या पूछा गया? मास्टर

ने लड़के से कहा कि बतलाओ क्या पूछा गया, लड़के ने कहा किताब पढ़वाई गई, हिसाब पूछा गया। जाट बोला इन बातों से कौन प्रयोजन है यह असली बात बतला। लड़के ने कहा यह भी पूछा गया था कि सूर्य कितना बड़ा है। जाट बोला फिर तुमने कितना बड़ा बतलाया? लड़के ने कहा मैंने ज़मीन से १३ लाख गुना बतलाया। जाट ने मास्टर से कहा कि इसका बतलाना ठीक है? मास्टर ने कहा बहुत ठीक। जाट ने लड़के के दो थप्पड़ और दिये और कहा बस्ता उठा ला, खबरदार आज से पीछे मदरसे न जाना नहीं तो पैर काट डालूंगा। मास्टर ने कहा कि क्या है, क्यों गुस्सा हो गये। जाट बोला कि तुम तो अन्धे हो ही गये किन्तु इन लड़कों को आंखें क्यों फोड़ते हो। सूर्य को जमीन से १३ लाख गुना बड़ा बतलाया जाना अन्धों का काम है, अव्वल तो यह थाली कितना और बड़े से बड़ा परात कितना, जमीन से १३ लाख गुना बड़ा कहाँ से आया, लड़कों को अन्धा बना कर कुछ का कुछ कहलाया जाता है। यहां पर आंख का भेद है। लड़के के इल्म की आंख है इस कारण उसको ज्ञान है कि सूर्य जमीन से तेरह लाख गुणा बड़ा है, जाट के चर्मचक्षु हैं अतएव वह सूर्य को थाली परात कितना देखता है।

यही भेद यहां पर है, लड़का तो दिव्यचक्षुः है उसको अणु अणु में ब्रह्म दीख रहा है किन्तु बादशाह और उसके भृत्य चर्म चक्षु हैं उनको खम्भे में ब्रह्म न दीख कर केवल जड़ तत्व दीख

रहे हैं, नेत्रभेद से बच्चे को सब कोई झूठ बोलने की डिगरी दे रहे हैं, इस झूठे कलंक को ईश्वर सहन नहीं कर सका। उस समय व्यासजी लिखते हैं कि—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

भक्त की वाणी सच्ची करने को और प्रत्येक परमाणु में मैं व्यापक हूं इसको प्रकट करने के लिये स्तम्भ में एक अद्भुत रूप दिखलाई दिया जो न तो कोरा मनुष्य ही है और न कोरा शेर ही है।

इस भव्यमूर्ति के ऊपर एक पूर्व देश निवासी कविता करता हुआ लिखता है कि—

हिरणाकुश का कोप देखकर, कांप उठा यह जगवा रे।
जितने थे समझानेवारे, अब नहिं धरते पगवा रे॥
बड़ा कष्ट अब पड़ा भक्त पर, सुन घबराया मघवा रे।
पहलदवा के कारण भइया, रघवा हैगयो बघवा रे॥

इस इतिहास से यह सिद्ध है कि प्रह्लाद भक्त की रक्षा के लिये राघव रामचन्द्रजी आज बाघ होकर आये हैं। क्या यह इतिहास झूठा है, इतिहास भी मामूली पुरुष का लिखा नहीं है योगी का लिखा है, केवल योगी हो नहीं किन्तु इतिहास का

लिखने वाला कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की डिगरी पाये हुये है अर्थात् वेदरूपी वृत्त में सीधा निकलने वाले को वेदव्यास कहते हैं। जिन्होंने वेदों के अभिप्राय को उत्तम रीति से समझा है, जो स्वयं ईश्वरावतार है, उनका लिखा यह इतिहास है।

इसको कोई नहीं मानेगा कि वेद झूठे, इतिहास झूठा, तर्क झूठी, दर्शन झूठे, ये सब झूठे किन्तु अवतार के खंडन करने वालों का कथन ही सत्य है।

वास्तव में बात यह है कि संसार में नास्तिकता भर गई है अब वे जबर्दस्ती से अवतार को उड़ाना चाहते हैं। इस अवतार-वाद को चार्वाक बोध आदि नास्तिक खंडन कर करके थक गये उनका उड़ाया तो यह उड़ा ही नहीं अब इनका उड़ाया क्या उड़ेगा। सज्जनो! इन हुज्जतबाजों के जाल में फंस के तुम अपने वेदों का स्वाहा मत करो। हरिः ॐ तत्सत्।

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

कृष्णावतार

यं ध्यायन्ति सुरासुराश्च निखिला यक्षा पिशाचोरगा
राजानश्च तथा मुनीन्द्रनिवहाः सर्वार्थदं सिद्धये।
भक्तानां वरदाभयप्रदकरं पाशाङ्कुशालङ्कृत-
श्वश्वचामरवीज्यमानमनिशं सोहं श्रये शंकरम् ॥१॥

यो भूमिभारोद्धरणाय चक्री
चक्रेवतारं वसुदेवगेहे ।
गोपीजनानन्दकरो मुकुन्दः
पायात्स वो यादवराजहंसः ॥२॥

तुलसी कौशलराज भज, मत चितवे चहुं ओर।
सीताराम मयंकमुख, तू कर नयन चकोर ॥३॥
चटक मटक नित छैलबन, तकत चलत चहुं ओर।
नारायण यह सुध नहीं, आज मरें की भोर ॥४॥

दरवार में वैठे हुये किसी राजा ने मंत्री से कहा कि हमारे मन में चार प्रश्न उठे हैं, किसी पण्डित से उनका उत्तर खोज कर लाओ—(१) प्रश्न यह है कि ईश्वर खाता क्या है ? (२) प्रश्न यह है कि ईश्वर रहता कहां है ?

(३) प्रश्न यह है कि ईश्वर करता क्या है? और (४) चौथा प्रश्न यह है कि ईश्वर हँसता कब है? मंत्री ने राजा के इन चारो प्रश्नों को शहर के पण्डितों से पूछा, किसी ने भी नहीं बतलाये, लाचार राजा से कहा गया कि आपके प्रश्नों का नगरनिवासी एक भी पण्डित उत्तर नहीं देते। राजा ने कहा कि आसपास के पण्डितों से पूछो और जो इन चारो प्रश्नों के उत्तर बतला देगा उसको हम आधा राज्य देंगे। मंत्री ने आसपास दश बीस कोश तक के पण्डितों से पूछा किन्तु कुछ भी उत्तर न मिला। मंत्री ने राजा साहब से प्रार्थना की कि भगवन्! आसपास भी बहुत खोजा किन्तु किसी भी पण्डित ने आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये। राजा ने आज्ञा दी कि तुम दूर दूर देशों में जाओ और हमारे प्रश्नों के उत्तर खोज कर लाओ तथा उत्तर देनेवाले को हम अपना समस्त राज्य दे देंगे। राजा की आज्ञा हो गई, प्रातःकाल घोड़े पर सवार हो कर पांच च्यार आदमी साथ लेकर मंत्री चल दिया। चलते चलते जंगल में दोपहर हो गई, वहां एक वड़ का अच्छा वृक्ष था उसके नीचे हल छोड़ कर एक काश्तकार हुक्का पी रहा था, वहां ही मंत्रीजी भी ठहर गये। घोड़े को वांधा, घोड़ा दाना खाने लगा और ये सब कुएं पर स्नान करने चले गये। इस अवसर पर उस काश्तकार की स्त्री रोटी लेकर आई, साथ में दो तीन सेर आम भी लाई। इस काश्तकार ने अपनी स्त्री से कहा कि देखो अपने इस स्थान पर पांच चार अतिथि आ गये हैं, रोटी तो तूं हमारे खाने के लिये रख

दे और ये आम हम उन अतिथियों को देंगे। स्त्री ने कहा बड़ी अच्छी बात है। इतने ही में मंत्रीजी स्नान करके आये, इस काश्तकार ने उनके आगे आम रक्खे और हाथ जोड़ कर कहा कि भगवन्! आप मेरे अतिथी हैं इस समय यहां पर मेरे पास और कोई ऐसी वस्तु नहीं जो मैं आप के आगे भेंट में रक्खूं आप इन मेरे प्रेम भरे फलों को स्वीकार कीजिये। काश्तकार की अमृतमयी वाणी को सुन कर मंत्री ने आम स्वीकार कर लिये। काश्तकार ने भोजन खाया, मंत्री के साथ वालों ने भी भोजन खाया, भोजन से निवृत्त हो कर कुछ बातें होने लगीं। इसी अवसर पर काश्तकार ने पूछा कि आप कहां जाते हैं? दीवान साहब ने अपनी सब कथा सुना दी। इसको सुन कर काश्तकार बोला सरकार! इन चार बातों का उत्तर तो मैं दे सकता हूं। मैं बारह वर्ष से रात्रि को नित्य दो घंटे पुराण की कथा सुना करता हूं उससे कुछ मुझे भी थोड़ा थोड़ा ज्ञान हो गया है, अधिक नहीं तो आपके चार प्रश्नों का उत्तर तो मैं ऐसा दे दूंगा जो सर्वथा शास्त्रानुकूल और अकाट्य होगा। मंत्रीजी बोले उत्तर दीजिये। काश्तकार ने कहा कि यहां उत्तर देकर मैं आप से क्या ले लूंगा, राजा के यहां जाकर उत्तर दूंगा तो मुझे राज्य मिलेगा। मंत्री ने कहा कि अच्छा तुम हमारे साथ राजा के यहां चलो। दोपहर पश्चात् मंत्रीजी उस काश्तकार को लेकर अपने घर लौट आये, रात को काश्तकार को भोजन खिला कर सोने की आज्ञा दे दी।

प्रातःकाल दीवान इसको दरबार में ले गया। राजा ने पूछा कि हमारे चार प्रश्नों का उत्तर मिला ? मंत्री ने कहा कि आप के प्रश्नों का उत्तर यह काश्तकार देगा। राजा प्रथम तो काश्तकार के रूप को देख कर घबराये फिर मन में विचार किया कि इससे क्या मतलब, क्या रूपवान् ही बुद्धिमान होते हैं। राजा ने इस काश्तकार को राजसिंहासन के पास बिठलाया और कहा कि अच्छा हमारे चारो प्रश्नों का उत्तर कहिये। काश्तकार ने कहा आप प्रश्न कहिये मैं उत्तर दूंगा। राजा ने पूछा बतलाइये 'ईश्वर क्या खाता है ?' काश्तकार बोला ईश्वर 'मद' खाता है। हिरण्याक्ष, रावण, जरासंध, कंस जैसे सहस्रों 'घमंडी' इस भूतल पर हो गये अंत में ईश्वर ने इनके 'घमंड' को खा लिया और ये निराश होकर मर गये। राजा बोले क्यों मंत्री साहब, इसका यह उत्तर तो बहुत ठीक है, मंत्रीजी ने कहा कि राजन्! यह अनुभवी मनुष्य है यही समझ कर तो हम इसको यहां लाये हैं। राजा ने काश्तकार से पूछा दूसरा प्रश्न हमारा यह है कि 'ईश्वर रहता कहां है ?' काश्तकार ने उत्तर दिया, कि ऐसा एक भी स्थान नहीं जहां ईश्वर न रहता हो। परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक में ईश्वर व्यापक है और एक ही ब्रह्माण्ड में नहीं हमारे ब्रह्माण्ड से अलाहिदा जितने ब्रह्माण्ड बने हैं, ईश्वर उनमें भी रहता है, और उनसे बाहर भी रहता है। राजा सुन कर प्रसन्न हुये और बोले तीसरा प्रश्न बतलाओ। काश्तकार बोला परीक्षा के लिये दो प्रश्न बतला दिये, तीसरा

प्रश्न जो पूछना है तो तुम बनो श्रोता गद्दी से नीचे बैठो और मुझे बनाओ वक्ता गद्दी के ऊपर विठलाओ। राजा बोले ठीक है, राजा नीचे उतर कर बैठ गये और उसको राजसिंहासन पर बिठला दिया। काश्तकार ने कहा अब पूछो। राजा ने कहा तीसरा प्रश्न यह है 'ईश्वर करता क्या है?' काश्तकार ने उत्तर दिया कि यही करता है जो अब किया। राजा बोले हमारी समझ में नहीं आया। काश्तकार बोला कि हम जैसे भिखारियों को राजसिंहासन पर विठलाता है और तुम जैसे नर-पतियों को राजसिंहासन से अलाहिदा कर देता है, ईश्वर यह करता है। राजा सुन कर प्रसन्न हुये। बोले कि चौथा प्रश्न हमारा यह है 'ईश्वर हंसता कब है?' काश्तकार बोला कि ईश्वर आपत्ति पड़ने पर सैकड़ों करार करने वाले इस पापी जीव को इकरारनामे के विरुद्धाचरण करके संसार से जाते हुये देखता है तब हंसता है। राजा बोले यह उत्तर हम नहीं समझे। काश्तकार बोला समझिये, हम समझाते हैं।

गर्भ में रहने वाले बच्चे को अष्टम महीने में ज्ञान होता है। सुख दुःख का ज्ञान होने के कारण उस समय इसको कठोर कष्टों का सामना करना पड़ता है। एक तो माता के गर्भ में निवास करना कालकोठरी की सजा से भी कठिन है, काल कोठरी में हाथ पैर हिला सकते हैं किन्तु गर्भ में हिलने की जगह ही नहीं इतने पर भी समाप्ति नहीं, गठरी बंध कर उल्टा लटकना और भी कठिन है, इतना ही दुःख नहीं माता की

जठराग्नि के मारे शरीर में आंच लगती है फिर माता जो तीक्ष्ण पदार्थ खाती है उसकी तीक्ष्णता शरीर में आग लगा देती है, इससे अधिक गर्भ के छोटे २ प्राणी नोच २ खाते हैं इससे और भी पीड़ा बढ़ जाती है, जी घबड़ा उठता है। ऐसे समय में जब उसको कोई रक्षक नहीं मिलता तब वह अपनी प्राचीन कथा को आगे रख जगदीश्वर से पुकार करता है और उस पुकार के साथ ही साथ अपने इकरारनामे को भी ईश्वर के कान तक पहुंचाता है। इसका विवरण निरुक्त में इस प्रकार है—

मृतश्चाहं पुनर्जातो
जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नाना योनिसहस्राणि
मयोषितानि यानि वै॥ १

आहारा विविधा भुक्ताः
पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः
पितरः सुहृदस्तथा॥ २

अवाङ्मुखः पीड्यमानो
जन्तुश्चैव समन्वितः।
साङ्ख्यं योगं समभ्यस्ये-
त्पुरुषं वा पञ्चविंशकम्॥ ३

अशुभत्क्षयकर्तारं
फलमुक्तिप्रदायकम्।
यदि योन्याः प्रमुच्यामि
ध्याये ब्रह्म सनातनम्॥ ४

मरा हुआ मैं फिर उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होकर फिर मरा, अनेक सहस्र योनियां मैंने धारण कीं, अनेक प्रकार के आहार खाये, अनेक प्रकार के स्तनों का पान किया, अनेक प्रकार की मातायें देखीं, अनेक प्रकार के पिता और मित्र मिले। आज मैं नीचे को मुख करके लटका हूं और पीड़ाओं से पीड़ित हो रहा हूं। ऐसा होकर के यह प्राणी (जीव) ईश्वर से कहता है कि यदि मैं इस बार गर्भ से छूट जाऊंगा तो फिर सांख्य योग और पुरुष का अभ्यसन करूंगा। यदि मैं अब के जो संसार में जाऊंगा तो सब काम को छोड़ कर पाप कर्म के नाश कर देने वाले मुक्ति फल के देने वाले सनातन ब्रह्म का ही ध्यान करूंगा।

इस प्रकार की प्रार्थना करते २ ही इसका जन्म हो जाता है। होश में आते ही संसार की चमक दमक में लट्टू होकर इसी को अपना सर्वस्व और स्थिर मान इसी में लग जाता है। यह समझता है कि अब तो इसी प्रकार की मौजें हमेशा इसी संसार में उड़ती रहेंगी, इसको यह खबर नहीं रहती कि हमतो किस खेत की मूली हैं, इस संसार ने बड़े २ प्रतापियों को खा लिया।

दाताऊ महीप मान्धाताऊ दिलीप जैसे,
जाके यश अजहूं लौं द्वीप द्वीप छाये हैं।
बलि ऐसो बलवान को भयो है जहान बीच,
रावण समान को प्रतापी जग जाये हैं॥
बान की कलान में सुजान द्रोण पारथ से,
जाके गुण दीनदयाल भारत में गाये हैं।
कैसे कैसे शूर रचे चातुरे विरंचिजू ने,
फेर चकनाचूर कर धूर में मिलाये हैं॥

ऐसा होने पर भी यह प्राणी समझ बैठता है कि संसार ने सब को तो खा लिया किन्तु हमको नहीं खा सकेगा, यह समझ कर भगवान् के स्मरण को भूल संसार पर चिपट बैठता है। संसार-चक्र में पड़े हुये प्राणी का किसी दिन वारंट कट जाता है उस समय यह संसार को छोड़ देता है तब ईश्वर हँसता है कि देखो इस प्राणी ने गर्भ में कैसे कैसे प्रण किये थे और फिर संसार-चक्र में पड़ कर हमको एक दिन भी याद नहीं किया। राजा सुन कर प्रसन्न हुये।

बात सोलह आने सच है। संसार-चक्र में पड़ कर प्राणी ईश्वर को भूल जाता है। ईश्वर को याद करवाने के लिये ऋषियों ने बड़े बड़े शास्त्र बनाये, इन शास्त्रों के बनाने का अभि-प्राय यह था कि यह भूला हुआ जीव ईश्वर का स्मरण करे। ऋषियों के बड़े बड़े शास्त्रों को तो हम आपको सुना नहीं

सकते किन्तु शुकदेवजी का बनाया हुआ एक श्लोक आप के आगे रखते हैं।

स्वरूपं शरीरं नवीनं कलत्रं
धनं मेरुतुल्यं वचश्चारुचित्रम्।
हरेरङ्घ्रियुग्मे मनश्चेदलग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥

बहुत दिव्य अति सुन्दर मनोहर तो शरीर हो और घर में पतिव्रता वीणावाणी नवीन स्त्री हो, हिमालय पहाड़ के बराबर घर में धन हो, वाणी अत्यन्त मधुर हो, इतना होने पर भी यदि भगवच्चरणारविन्द में मन न लगा तो कुछ नहीं।

भगवत् में प्रीति करने के लिये वेदव्यासजी ने नौ नियम बतलाये है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दना, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन, ये नौ नियम साकार ईश्वर में ही किये जा सकते हैं, निराकार में नहीं। ईश्वर साकार होगा तो कुछ कार्यों को करेगा, ईश्वर के कृतकार्यों की कथा बनेगी, भक्त उस कथा का श्रवण करेंगे। निराकार कुछ कार्य करता ही नहीं फिर उसकी कथा क्या, जब भक्ति का प्रथम लक्षण ही निराकार में नहीं घट सकता तो फिर निराकार की भक्ति कोई करेगा कैसे? भक्ति अवतारों में ही हो सकती है इस कारण

शास्त्र ने अवतारज्ञान को बड़ो उत्तम रीति से समझाया है, आप भी समझने को कृपा करें।

चतुर्थावतार ।

आवेश, प्रवेश, आविर्भाव, स्फूर्ति ये चार प्रकार के अवतार हुआ करते हैं। ये चार प्रकार के अवतार केवल ईश्वर में ही नहीं होते किन्तु जिस अग्नि को जड़ कहा जाता है वह भी चार प्रकार के अवतारों को धारण करता है।

आवेश ।

आप पानी को भट्ठी पर रखिये फिर इसके नीचे आग दीजिये अधिक आंच जलने से पानी में अग्नि का अवतार हो जावेगा। इस अत्यन्त गर्म पानी को किसी मनुष्य के शरीर पर डाल दीजिये बराबर अग्नि का काम करेगा, शरीर जल जायगा, छाले पड़ जावेंगे, शरीर में पीड़ा भी होगी, किन्तु इसी अत्यन्त गर्म पानी को जब आप अग्नि पर डालेंगे तो यह अग्नि को बुझा देगा। इसका कारण यह है कि यह अवतार सर्वांश पूर्ण नहीं हुआ है केवल जल में अग्नि का आवेशावतार हुआ है, आवेश का अर्थ है थोड़े गुणों का आना। फिर उस पानी को नीचे रखिये थोड़ी देर में उसकी गर्मी भाग जावेगी और शीतल जल हो जावेगा। इससे सिद्ध हो गया कि आवेशावतार थोड़ी देर के लिये होता है। जिस समय सहस्रबाहु अर्जुन ने यमदग्नि का शिर काट लिया उस समय

यमदग्नि की स्त्री रोती हुई तप करते हुये अपने पुत्र परशुराम के पास पहुंची। अभी तक परशुराम ब्राह्मणकुमार सामान्य जीव थे किन्तु जब उसने पिता का मरण सुना और मन में घबराहट आई परशुराम में ईश्वर की किञ्चित् शक्ति का आवेश हुआ, बस इसी दिन से परशुराम अवतार होगया और इसने इक्कीस बार ब्राह्मणों से द्रोह रखने वाले क्षत्रियों का संहार किया। संहार के बाद परशुराम में से आवेश शक्ति निकल गई यह फिर पूर्ववत् ब्राह्मणकुमार बन कर तप को चला गया। शक्ति निकलने के पश्चात् यह भगवान् रामचन्द्र से युद्ध न कर सका। सामान्य जीव परशुराम ने प्रभु राम की उपासना रूप स्तुति की, ऐसा करना ही उचित था। यहीं परशुराम जोश में आकर भीष्म से लड़ बैठा, आवेशशक्ति न होने के कारण भीष्म द्वारा इसका पराजय हो गया। रामचन्द्रजी के आगे परशुराम का हाथ जोड़ना इसमें अब कोई शंका नहीं रह गई। सनातनधर्म के अतिरिक्त अन्य कई एक धर्म भी आवेशावतार को मानते हैं। इनका कहना है कि योग्य पुरुष जब ईश्वर में मन लगाता है तब ईश्वर उसको अपनी कुछ शक्ति देता है, उस पाई हुई शक्ति के द्वारा वह भक्तमनुष्य धर्मविधायक ग्रंथों का प्रादुर्भाव करता है।

प्रवेश।

लोहे के गोले को लीजिये और उसको आग में डाल दीजिये कुछ देर के पश्चात् वह लोहे का गोला लाल हो

आवेगा उसको बाहर निकालिये, उस पर घास फूंस लकड़ी डालिये वह तृणादिकों में अग्नि लगा देगा। यह बात आवेशावतार में नहीं थी। अग्नि लग जाना सिद्ध करता है कि प्रवेशावतार में अवतार धारण करने वाले की शक्ति अधिक आ जाती है। अब ईश्वर का प्रवेशावतार सुनिये। उस दृश्य को याद कीजिये कि जब दुःशासन के अत्याचार से पतिव्रता साध्वी द्रौपदी के चीर दुःशासन भरी सभा में खेंचने के लिये तैयार होगया। दीना द्रौपदी ने भीष्म द्रोण विदुर पाण्डवों की तरफ इस कारण से दृष्टि डाली थी कि इस समय ये मेरी लज्जा बचावेंगे किन्तु किसी ने भी द्रौपदी को धैर्य न बंधवाया, उस समय द्रौपदी भगवान् कृष्ण में मन को लगा कर और आंसुओं की माला लेकर अपनी एक टेर कृष्ण के कानों तक भेजती है, इस दीन वाणी को सुन कर भगवान् ठहर न सके, तत्काल निराकार चीर में प्रवेशावतार धारण करके आ गये। अब क्या था अब तो भगवान् की अनंत शक्ति चीर में घँस बैठी, चीर को अनंत बना दिया, चीर खेंचते २ ढेर लग गया, दुःशासन की भुजायें थक गईं, किन्तु चीर का अंत न आया। इसका नाम है प्रवेशावतार।

स्फूर्ति।

अग्नि का स्फूर्ति अवतार समझिये। जब दो विरुद्ध हवायें या तुल्य धर्मवाले बादल आपस में टकरा जाते हैं तब उनमें से अग्नि निकल पड़ती है। वह अग्नि उसी क्षण अदृश्य हो जाती

है, इसी से इसका नाम स्फूर्ति है। अब ईश्वर का स्फूर्ति अवतार सुनिये—जिस समय छोटे से बच्चे भक्त प्रहलाद का हिरण्यकशिपु शिर काटने के लिये हाथ में खड्ग लेकर पूछता है कि तुम्हारा ईश्वर कहां है, यदि होवे तो तुम्हें बचावे। प्रहलाद ने कहा सब जगह है। हिरण्यकशिपु ने कहा कि क्या खम्भे में भी है? प्रहलाद ने कहा "है"। उस समय प्रहलाद और हिरण्यकशिपु दोनों का लक्ष्य खम्भा हो गया था, खम्भे में दैवीभाव तथा आसुरीभाव जाकर टकराये, दोनों के संघर्ष से उसी समय स्फूर्ति अवतार भगवान् नृसिंह खम्भे से निकल बैठे। संयमावस्था में जो प्रथम योगियों को ईश्वरस्वरूप का दर्शन होता है वह ईश्वरस्वरूप भी स्फूर्तिरूप है। भगवान् नारद पूर्वजन्म में जब वह दासीपुत्र थे और योगियों की संगति से आत्मज्ञान की प्राप्ति करके वन को गये, बन में समाधिस्थ हुये, उस दशा में जो जगदीश्वर ने अपने रूप का दर्शन कराया उसका वर्णन श्रीमद्भागवत में इस प्रकार लिखा है-

तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आश्रितः।
आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥१६
ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥१७

श्रीमद्भा० स्कं० १ अ० ६

जनशून्य उस घोर बन में मैं एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गया, अपनी बुद्धि से शरीर में स्थित जैसा सुना था वैसे

ही रूप का चिन्तन करने लगा ॥ १६ ॥ भक्ति से चित्त को जीत कर ईश्वर के चरणकमलों का ध्यान करते हुये उत्सुकता से मेरे नेत्रों में अश्रु आ गये, इसके पश्चात् मेरे अन्तःकरण में धीरे धीरे भगवान् प्रकट हुये ॥ १७ ॥

आविर्भाव ।

अग्नि का आविर्भाव अवतार सुनिये। जिस समय कोई मनुष्य दो काष्ठों को घिसेगा उनकी रगड़ से यद्वा पत्थर और लोहे के संघर्ष से सर्वत्रव्यापक निराकार अग्नि का प्रादुर्भाव हो जाता है। आजकल लकड़ी की बारीक सींक बना कर उस पर गंधक आदि अग्नितत्त्वप्रधान वस्तुओं को लगा कर सींक वाली दियासलाई तैयार करते हैं उसके संघर्ष से, यद्वा सूर्य-कान्त मणि को सूर्य के सन्मुख रखने से, या आतशी शीशे से जो निराकार अग्नि साकार बनता है यह अग्नि का प्रादुर्भाव है। इसी प्रकार जब दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति का संघर्ष होता है उस संघर्ष में दुःखित ज्ञानी भक्त जब ईश्वर में अनन्यशरण होकर प्रेमडोरी से ईश्वर का आह्वान करते हैं तब पृथु, राम, कृष्ण आदि रूपों में ईश्वर का प्रादुर्भाव होता है। प्रादुर्भाव अवतारों में मर्यादा पुरुषोत्तम और लीलावतार पूर्ण ब्रह्म होते हैं इस कारण ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फलों को देते हैं। कृष्ण के पूर्णावतार होने में श्रीमद्भागवत ने बलदेवजी को तो अंशावतार माना है किन्तु कृष्ण के लिये स्पष्ट लिख दिया है कि—

एते चांशकलाः प्रोक्ताः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।

ये सब अवतार अंशावतार और कलावतार हैं किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् है।

इसी प्रकार प्रभु रामचन्द्र के विषय में श्रीमद्भागवत लिखता है कि—

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः॥ २

श्रीमद्भा० स्क० ९ अ० १०

जब देवताओं ने संसाररक्षा की प्रार्थना की तब दशरथ के यहां ब्रह्ममय साक्षात् भगवान् हरि अंशांश सहित चार प्रकार से प्रकट हुये।

जो लोग अंशावतार, कलावतार और पूर्णावतार का अभिप्राय नहीं समझते वे इस विषय पर रोज झगड़ा करते हैं, उनकी दृष्टि में कलावतार और अंशावतार ईश्वर ही नहीं रहते, केवल पूर्णावतार को ही भगवान् मानते हैं। यह उनका भ्रम है। ब्रह्म पूर्ण और अखंड है, पूर्ण और अखंड के टुकड़े हो नहीं सकते, बिना टुकड़े हुए अंशावतार और कलावतार का होना असंभव है, इस कारण सुविज्ञ पंडित श्रीधर स्वामी प्रभृति श्रीमद्भागवत के टीकाकारों ने 'अंश' का अर्थ किया है कि 'अंश इव अंश' अर्थात् जैसे किसी अपूर्ण अखंड वस्तु का अंश होता है उसकी भांति अंश, क्योंकि साक्षात् ब्रह्म पूर्ण और अखंड होने से उसके अंश नहीं हो सकते। तो अब

'अंश इव अंश' का क्या अभिप्राय। इसके विवेचन में विद्वानों का यह सिद्धान्त है कि जब ब्रह्म अनंतशक्ति को साथ में लेकर आता है तब वह पूर्णावतार होता है और जब ब्रह्म परिमित शक्ति को लेकर अवतार धारण करता है तब वह अंशावतार और कलावतार कहलाता है। पृथु, व्यास, नर नारायण, दत्तात्रय प्रभृति अवतार परिमित शक्ति को लेकर हुये थे इस कारण ये संसार के जीवों को मोक्ष नहीं दे सके। भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान श्रीराम ये पूर्णब्रह्म थे अतएव इन्होंने अनेक जीवों का संसारबंधन तोड़ कर उनको मोक्ष दे दी। आज भी मोक्ष पाने के लिये राम और कृष्ण की आराधना होती है, यह अभिप्राय पूर्णावतार का है।

यद्यपि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी के चरित्र में भी अविवेकी लोग बहुत कलंक लगाते हैं किन्तु प्रभु रामचन्द्र जी की पालित धर्म मर्यादाओं को देख कर वे कलंक लोगों के चित्त में स्थान ही नहीं देते। भगवान् कृष्ण मर्यादावतार तो हैं नहीं जो प्रत्येक कार्य में धर्म मर्यादा दिखलावें, ये तो लीलावतार हैं, इस भेद को न जान कर कृष्ण के चरित्रों पर आज अज्ञ जनता अनेक कलंक लगाने को तैयार है। ईसाई, मुसलमान तो अनेक कटाक्ष करते ही थे किन्तु स्वा० दयानन्द और उनके चलाये हुये आर्यसमाज ने तो इस विषय में बाइस करोड़ हिन्दुओं के शरीर का रक्त चूस लिया। आज हम यह उद्योग करेंगे कि भगवान् कृष्ण में एक भी कलंक नहीं है, इनमें

जो आर्यसमाज ने कलंक लगाये हैं यह अर्यसमाज की अज्ञता, बुद्धिशून्यता, अदूरदर्शिता, अविवेकता है। आजकल के लोग सब से प्रथम यह कहा करते हैं कि भगवान् कृष्ण चोर और जार थे बस आज के व्याख्यान में इन दो ही बातों का विवेचन होगा।

कृष्ण का टेढ़ापन।

सामान्य लोगों के लिये भगवान् श्रीकृष्ण बड़े टेढ़े हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के टेढ़ेपन को क्या कहूं, कैसे कहूं। भगवान् कृष्ण की कभी आपने प्रतिमा देखी है? यदि देखी होगी तो आप को मालूम होगा कि वास्तव में भगवान् श्रीकृष्ण टेढ़े हैं। खड़े रहते भी उनकी एक टांग टेढ़ी, टांग ही नहीं टेढ़ी बल्कि वंशी भी टेढ़ी है, मुख भी टेढ़ा, मुकुट भी टेढ़ा और हाथ भी टेढ़े। जिस प्रकार ये स्वतः टेढ़े हैं, जो लोग मर्यादावतार, लीलावतार प्रभृति अवतारों के भेद को नहीं जानते उनकी दृष्टि में उसी प्रकार इनकी कथा भी टेढ़ी है।

जब बच्चा गर्भ में आता है तब गर्भ के कष्ट से घबरा कर बार बार ईश्वर की स्तुति करता है और जब कृष्ण गर्भ में आये इन्होंने किसी की स्तुति न की बरन् ब्रह्मा, शंकर, इन्द्रादि देव कृष्ण की ही स्तुति करने आये तथा लंबी चौड़ी स्तुति करके अंत में कह उठे कि—

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।

त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥

हे ईश! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम, वामन अवतार धारण करके आप हमारी और त्रिभुवन की रक्षा करते हो ऐसे ही अब आप रक्षा करना तथा पृथ्वी का भार उतारना, हम आपको प्रणाम करते हैं।

संसार में जो बच्चा पैदा होता है दाई उसको साफ करती है, नाल काटती है, दो एक महीने के पश्चात् उसको कपड़ा पहनाये जाते हैं, पांच छः महीने में वह बैठना सीखता है, आठ नौ महीने का जब हो जाता है तब वह घुटनों के बल चलता है, वर्ष सवावर्ष के पश्चात् खड़ा होना आता है किन्तु उत्पन्न होते ही भगवान् कृष्ण को जब वसुदेव ने देखा तो वह कैसे थे, इसको सुनिये—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सांद्रपयोदसौभगम् ॥ १

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषापरिष्वक्तसहस्रकुंतलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ २

वसुदेव ने कमल कैसे नेत्र, चतुर्भुजाधारी, चारो भुजाओं में क्रम से शंख चक्र गदा पद्म धारण किये, छाती में श्रीवत्सचिन्ह और गले में कौस्तुममणि, पीतपट धारण किये, नीलमेघ सदृश स्वरूप, बड़े मूल्य की वैदूर्यमणि मुकुट में लगाये, कुंडल पहने, मुकुट और कुण्डलों के प्रकाश से चमक रहे हैं ग्रथित केश जिनके, बड़े मूल्य की कर्धनी और बाजूबन्द तथा कंकणों से मकान को प्रकाशित कर देने वाले अद्भुत बालक को देखा। यहां पर गर्भ में आने में टेढ़ापन और उत्पत्तिकाल के स्वरूप में टेढ़ापन।

संसार में जो बच्चा पैदा होता है उसके कुछ बड़े होने पर पिता माता उसको संसारी पदार्थों का ज्ञान करवाते है, जब वह रोटी दाल लोटा गिलास प्रभृति वस्तुओं का ज्ञान पा चुकता है तब उसको अक्षर सिखलाते हैं, किन्तु प्रभु श्रीकृष्ण जी प्रकट होते ही माता पिता से कहते हैं कि—

त्वमेव पूर्वसर्गेभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः॥

माता! इस सृष्टि से पहिली सृष्टि में जबकि स्वायम्भुव मनु वर्तमान थे उस समय जो आपका जन्म हुआ आपका नाम पृश्नि था और पिताजी का नाम सुतपा था। आप दोनों ने घोर तप किया, उस तप से मैं जगन्नियन्ता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ। मैंने कहा वर मांगो, तुमने वर मांगा कि तुम्हारे ही जैसा हमारे पुत्र हो। मेरे जैसा तो मैं ही हूं यह समझ कर

मैने आपके यहां जन्म लिया। तुम्हारे यहां मेरे दो जन्म और हो चुके हैं, अब यह तीसरा जन्म है। जिस चतुर्भुजी रूप से मैंने तुमको वरदान दिया था उसी चतुर्भुजी रूप से मैं आपके आगे खड़ा हूं, आपने दर्शन कर लिये अब मैं प्राकृत शिशु बनता हूं। कहिये कुछ टेढ़ापन है या नहीं ?

संसार में तीन महीने के बच्चे में कुछ भी शक्ति नही होती। हमने ग्रामों में सुना है कि अमुक पुरुष का तीन महीने का बच्चा था उसको जम्बुक (गीदड़) भगवान् उठा कर ले गये किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी तीन महीने की अवस्था में भयंकरी प्राणघातिनी, देवदैत्यमदमर्दिनी पूतना की छाती पर चढ़े हुये हैं, वह बलवती छुड़ाना चाहती है किन्तु ये छोड़ना नहीं चाहते, आखिर वह विकल होकर कहने लगी कि—

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
प्रस्विन्नगात्राक्षिपती रुरोद ह॥

छोड़ दे, छोड़ दे, मेरे मर्म स्थानों में पीड़ा हो रही है, इतने पर भी जब नहीं छोड़ा तो मारे कष्ट के शरीर में पसीना आ गया, हाथ पैर फेंकने लगी, आंखें फट गईं, अन्त में प्राण त्याग कर दिये। यह भगवती स्तनों पर विष लगा कर दूध पिलाने आई थी इसको ऐसे गुरू मिले कि दूध के साथ प्राण भी पी गये। है बात टेढ़ी ?

जिस दिन भगवान् एक वर्ष के थे उस दिन जन्मोत्सव मनाया गया था। स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठादि वैदिककृत्य होने के पश्चात् यशोदा ने भगवान् कृष्ण को घी के भरे हुये कुप्पों से लदे हुये गाड़े के नीचे सुला दिया, आप आगत सम्बन्धियों के भोजनादि प्रबंध में लग गई। बड़ी देर तक भगवान् को दूध न पिलाया इससे क्रोधित हो कृष्ण ने गाड़े के लात मारी, औंधा गाड़ा दूर जाकर पड़ा। मिट्टी खाने पर माता ने कृष्ण का मुख देखा तो इस मुख में समस्त ब्रह्माण्ड के दर्शन होने लगे। जिस समय भगवान् कृष्ण नाचने लगे तो सर्प के फनों पर नाचे जिसकी सूरत देखने से संसार के मनुष्य नाच भूल जाते हैं। ब्रह्मा को छकाने के लिये नकली गोपाल, बछड़े, छींके, डण्डे भगवान् ने बना कर तैयार कर दिये, एक वर्ष इन्हीं से काम चला, घबरा कर ब्रह्मा चरणों में गिर पड़ा। रासपंचाध्यायी में एक कृष्ण के हजारों कृष्ण बन गये। सात वर्ष के बच्चे भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन उठा लिया। कहिये इन कथाओं में कुछ टेढ़ापन है या नहीं? जो लोग लीलावतार का मुख्य प्रयोजन अलौकिक शक्ति को दिखलाना और जो जिस भाव से आवे उसके भाव पर दृष्टि न डाल कर मोक्ष देना इन दो बातों को नहीं जानते तथा लीलावतार के चरित्र को अगड़ू धोबी के आचार व्यवहार शक्ति से मिलान करेंगे वे बराबर धोखा खायंगे। आजकल के मनुष्यों की बुद्धि बड़ी विलक्षण हो गई है, संसार में जो आंख से देखते हैं उतने को ही सत्य

मानते हैं, बाकी सब झूठ। यदि यह नाशकारिणी बुद्धि साइन-टिस्टों की होती तो साइंस की इतनी उन्नति न होती और न इस बुद्धि से आगे को उन्नति हो सकती है। यदि यही बुद्धि धार्मिकजनों में आ फँसती तो कृष्ण को बाजीगर कह बैठते। संसार के गुलामों की दृष्टि में तो कृष्ण की कथा ही असंभव है, फिर असंभव को सत्य मान कर कृष्ण को चोर बतलाना अपनी बुद्धि को नीलाम करना है।

चोरी।

जो लोग कृष्ण को चोर बतलाते हैं हम उनसे पूछते हैं कि तुम कृष्ण को चोर क्यों बतलाते हो? क्या कृष्ण ने तुम्हारी भैंस खोल ली, या एक जोड़ी बैल उड़ा ले गया। बिना अपराध सिद्ध किये किसी को अपराधी बना देना यह तुम्हारी मूर्खता नहीं तो और क्या है? जब हम इन पर अधिक जोर देते हैं तब ये कह उठाते हैं कि जिस भगवान् कृष्ण ने सैकड़ों गोपियों का मक्खन चुरा खाया, क्या इस मक्खन के चुराने से कृष्ण पर चोरी का अपराध नहीं है। इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि क्या किसी गोपी का मक्खन खाने से भगवान् कृष्ण चोर हो जावेंगे, इसको तो इनकी पवित्र बुद्धि ही स्वीकार कर सकती है। संसार में एक भी मनुष्य ऐसा न निकलेगा कि जो माखन खाने से भगवान् कृष्ण को चोर मान ले।

सुनिये एक आधुनिक कथा। एक रोज सात बजे प्रातःकाल बा० शंभूनाथ जी बी० ए० थाने में पहुंचे और वहां

जाकर सब-इंस्पेक्टर से कहा दरोगाजी ! हमारे यहां चोरी हो गई है, रिपोर्ट लिख लीजिये। दरोगाजी बोले क्या सच ही चोरी हो गई ? बा० शंभूनाथ बोले जी हां, सच नहीं होती तो रिपोर्ट लिखवाने क्यों आते। जाड़े के दिन थे, दरोगाजी पाखाने भी नहीं गये थे, पाखाने का दबाव लगा था, दरोगाजी बोले हम पाखाने हो आवें तब लिखें। बा० शंभूनाथ बोले कि हमको तो डथ्यूटी पर पहुंचने के तीन ही मिनट रह गये हैं यदि हम नहीं जायंगे तो चीफ इंजीनियर साहब बहादुर को कागजात कौन देगा, चीफ इंजीनियर कागजात लेकर इसी गाड़ी से राजघाट का पुल देखने जायगा। लाचार बेचारे दरोगाजी ने वहीं लोटा रख दिया और रिपोर्ट लिखने लगे। बोलिये आप का क्या नाम है ? बाबूजी बोले बाबू शंभूनाथ। आपके पिता का नाम ? बाबू जी ने कहा ला० रामसहाय। आपकी उम्र क्या है ? बाबूजी बोले ३६ वर्ष की। दरोगाजी ने पूछा कौन जात ? बाबूजी ने कहा वैश्य। आप कहां रहते हैं ? बाबूजी ने उत्तर दिया कि इसी अलीगढ़ शहर के जयगंज मुहल्ले में। दरोगाजी ने पूछा आपका मकान नंबर ? बाबूजी ने कहा २४० । दरोगाजी ने पूछा क्या चोरी घर से हुई है ? शंभूनाथ ने कहा जी हां। किस वक्त चोरी हुई है ? बाबूजी ने कहा कि १८ मिनट मुझको घर से चले हुये हुआ और उससे दो मिनट पहिले चोरी हुई। दरोगाजी ने पूछा क्या क्या माल गया ? बाबूजी बोले लिखिये

मैं सब लिखवायें देता हूँ—पैसा डबल २, इकन्नी १, दुअन्नी ३, चवन्नी १, अठन्नी २, पन्द्रह रुपये की सोने की अंगूठी १, घड़ी १ पौने चार रुपये की, बस इतना ही माल गया है। दरोगाजी बोले किसी पर शुभा भी है? बाबूजी बोले अजी चोर ही आँख से देख लिया। मैं पाखाने के हाथ धो रहा था कि इतने में चोर आया, चारपाई के पाये पर वास्कट रक्खी थी उस पर हाथ मारा और लेकर भागा, मैं जब तक उठा चोर भाग गया, वास्कट तो दरवाजे पर पड़ी मिली और उसकी जेब का इतना माल गायब होगया, वास्कट की जेब में २६) रुपये और भी थे वे वहीं पड़े मिल गये। दरोगाजी बोले चोर का क्या नाम? बाबूजी ने कहा बंशीधर। अच्छा चोर के बाप का क्या नाम? बाबूजी ने कहा आनरेबिल रायबहादुर ला० धर्मदत्त। दरोगाजी ने कहा चोर की उम्र क्या? बाबूजी ने कहा करीबन पौने पांच वर्ष की। इतना सुनते ही दरोगा जी झुंझला कर बोले कि बड़े बेवकूफ हो, मनहूस कहीं के सुबह ही सुबह चल दिये, और साथ ही साथ हमारी भी अक्ल मारी गई, कागज पर लिख लेते तो फाड़ कर ही फेंक देते, हमने तुमको ग्रेजुवेट समझ कर रजिस्टर पर ही लिख लिया है, अब जिस समय सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब रजिस्टर को देखेंगे, हमको क्या कहेंगे, चले आये सुबह ही रिपोर्ट करने, जाहिल कहीं के, वह कौन दफा है कि जिसके ज़रिये से पौने पाँच वर्ष के बच्चे को हम चोर ठहरा दें, जाइये कदम बढ़ाइये

हमारा जो कुछ होना होगा, होता रहेगा, किन्तु अब आप यहां तशरीफ न रखिये आपको देख कर हमको गुस्सा आता है।

श्रोताओ! आज भी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के कानून में कोई भी ऐसी दफा नहीं है कि जिसके जरिये से हम चार वर्ष के बच्चे को चोर करार दे दें। जब कोई भी कानून पांच वर्ष की उम्र से कम मनुष्य को चोर करार नहीं देता फिर साढ़े तीन वर्ष की उम्र में या चार वर्ष की उम्र में भगवान् कृष्ण ने किसी गोपी का मक्खन चुरा लिया तो वे उस मक्खन के चुराने से किस तरीके से चोर कहला सकते हैं। हमको संसार में कोई भी कानून ऐसा नहीं दीखता कि जिसके ज़रिये से चार वर्ष की उम्र में मक्खन चुराने वाले कृष्ण को चोर कहा जावे।

गोपियां बैठी बैठी अपने मनहीमन प्रार्थना किया करती थीं कि नहीं मालूम वह दिन कब आवेगा जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी माखन खाने के लिये पधारेंगे और हमारे अपवित्र घर को पवित्र करेंगे। गोपियां जब इस तरह की प्रार्थना करती है और प्रार्थना करने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी पधारते हैं फिर हमको नहीं मालूम इनको चोर क्यों कहा जाता है? क्या कोई मनुष्य अपने घर में चोर के बुलाने की प्रार्थना करता है, क्या आपने भी कभी प्रार्थना की है कि हे चोर जी तुम हमारे घर में आना और बक्स में जो नोट तथा गिन्नियां

रक्खी हैं उनको उठा ले जाना, अलमारी में का सब जेवर भी उठा लेना, शाल दुशाला सब कपड़े ले लेना, तुम जल्दी आना और हमारे घर को पवित्र करना, आपके आये बिना हम बड़े दुःखी हैं।

चोर को कोई बुलाता नहीं, और जो हजार बार बुलाने पर आवे वह चोर नहीं हो सकता, फिर नहीं मालूम संसार के पालक श्रीकृष्ण भगवान् को चोर क्यों कहा जाता है।

भगवान् में गोपियों के प्रेम को देख कर मनुष्य के रोयें खड़े हो जाते हैं, आभ्यन्तर दो नेत्र खुल जाते हैं, इसको देखिये। एक दिन भगवान् कृष्ण गोपी के घर में मक्खन खाने के लिये घँसे, मक्खन हाथ में उठाया ही था कि घर के भीतर से गोपी निकल आई, भगवान् भागे। ज्येष्ठ के दिन थे, दिन का एक बजा था, जमीन का बालू तप रहा था, इस आपत्तिदायक भागने को देख कर गोपी बोल उठी कि—

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं च किं तेन।
आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव ॥

प्यारे कृष्ण! तैंने मक्खन ले लिया, यदि मक्खन ले लिया तो इस से क्या हो गया। हे माधव! मक्खन तो घर ही का है इसको लेकर तप्तभूमि में क्यों दौड़ते हो, आप के पैर जलते होंगे। इसका नाम है प्रेम। आज घर का बच्चा भी माखन ले ले तो माता अपने प्राणप्यारे दुलारे आंखों के तारे को मारने और पीटने को तैयार है, मातृप्रेम से अधिक प्रेम संसार में कहीं

नहीं, किन्तु गोपियों में कृष्ण का प्रेम बच्चे में माता के प्रेम से बढ़ कर है। जब कि भगवान् चोर ही थे तो गोपियों को इतनी करुणा क्यों? क्या चोर के ऊपर भी करुणा आती है? दैवयोग से आपके घर में चोर घुस जाय और आपका सर्वस्व अपहरण कर गठरियों में बांध ले, इतने में आप जाग उठें तो फिर आप चोर के ऊपर करुणा करेंगे? क्या यह कहेंगे कि चोर साहब आपने माल ले लिया, तो कोई क्षति नहीं किन्तु अब इस अंधेरी रात में आप कहां जाओगे-कहीं ठोकर लग कर गिर पड़ोगे अतएव प्रातःकाल चले जाइयें, यदि आप नहीं मानते तो लाओ यह माल हम आपके घर रख आवें,! यदि आप यह भी नहीं मानते तो लीजिये हम लालटेन जलाये देते हैं इसको लेते जाइये, इसके जरिये से मार्ग में किसी प्रकार का दुःख न होगा और कृपा करके यह भी बतलाते जाइये कि अब दुवारा आप का आगमन कब होगा तथा हमारे ऊपर कृपा बनाये रखिये।

एक गोपी की और कथा सुनिये। भगवान् ने देखा कि इस घर में गोपी नहीं है, सूना जान कर लगे धीरे २ किवाड़ खोलने। कभी भीतर को देखते हैं कभी बाहर को देखते हैं और किवाड़ खोलते जाते हैं। किवाड़ खोल कर मक्खन की हंडिया के पास पहुंचे तथा फौरन मक्खन उठाया, मक्खन उठा ही रहे थे कि बाहर से गोपी आ गई, कृष्ण ने सोचा आज होगई फजीत, आप मक्खन को लेकर एक अंधेरी कोठरी में भागे, भागते हुये कृष्ण को देख कर गोपी बोली—

चीरसारमपहृत्य शङ्कया
स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मम मानसे नितान्ततामसे
नन्दनन्दन कुतो न लीयसे॥

भगवन्! आप मक्खन लेकर अंधेरी कोठरी में छिपते हो यदि आपको अंधकार में छिपना स्वीकार है तो फिर कोठरी में न छिपें किन्तु जन्म जन्मान्तर के दुष्ट कर्मबन्धनों से अंधकारमय बना जो मेरा चित्त है उसमें छिप जाइये।

अब विचारशील बतलावें कि भगवान् कृष्ण चोरी की आदत से मक्खन खाने जाते थे या गोपियों का उत्कट प्रेम उनको मक्खन खिलाने को बुलाता था।

जार।

चीर हरण।

चीर हरण की कथा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार है कि गोपियों ने जगन्मोहन भगवान् कृष्ण के रूप और अनंत शक्ति को देख कर कृष्ण की प्राप्ति का उद्योग रूप भगवती कात्यायनी देवी का व्रत और पूजन प्रारम्भ किया—

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥

हेमन्त के प्रथम-मास में नन्द के व्रज की कन्यायें हविष्य भोजन करती हुई कात्यायनी का व्रत और पूजन करने लगीं।

पूजन के अन्त में गोपियां प्रार्थना करती थीं कि—

नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।

हे देवि ! मैं तुझे प्रणाम करती हूं, तू नन्द गोप के पुत्र को मेरा पति कर ।

इस कर्म को नित्य करते देख श्रीकृष्ण के चित्त की वृत्ति गोपियों की तरफ खिंची, उस समय भगवान् श्रीकृष्णजी ने विचारा कि इनके कर्मफल में "नग्न होकर स्नान करना" ही प्रतिबन्धक है। नग्न होकर स्नान करना यह निकृष्ट कर्म है। वर्तमान समय में भी पंजाब, कुरु, जाङ्गल, मरुस्थल आदि देशों में अब भी यह कुप्रथा देखने में आती है, इसी प्रकार उस समय व्रज में थी। भगवान् ने उन गोपियों का सुदृढ़ अनुराग देख कर यह उचित समझा कि इस परिपाटी को हटा दिया जावे। ये भोली भाली गोपियां इसको नहीं जानतीं कि यह कार्य निन्दनीय है इस निन्दनीय काम से इनके कर्त्तव्य में भी हानि पहुंचती है इसको विचार भगवान् आये और इन गोपियों के वस्त्र लेकर कदम्ब पर चढ़ गये। जब गोपियों ने बहुत कुछ प्रार्थना की कि हमारे वस्त्र दे दो तब भगवान् ने उनसे कहा कि—

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।
बध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः
कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥

व्रत करने वाली तुम जल में नंगी धंसी हो, तुमने देव का

अनादर किया है अतएव तुम दोनों हाथों की अंजुली बांधकर मस्तक पर रख अपने पाप के प्रायश्चित्त में सूर्य भगवान् को प्रणाम करो और फिर अपने वस्त्र ले जाओ।

श्रीमद्भागवत के दशवें स्कंध के बाइसवें अध्याय में यह कथा लिखी है। समस्त कटाक्ष इसी के ऊपर हैं। इन महात्माओं से यह तो पूछो कि गोपियों को नग्न स्नान का निषेध किया यह भला किया या बुरा? यदि ये कहें कि यह तो अच्छा किया किन्तु नग्न करके प्रणाम क्यों कराया ? तब मैं पूछता हूं कि किसी बुरे काम का प्रायश्चित्त करवा देना अच्छा है या बुरा? यदि ये यह कहें कि यह सब ठीक, किन्तु श्रीकृष्णजी ने गोपियों को नग्न क्यों देखा ? इस पर मेरा उत्तर यह है कि अब तक भाई बंधु ग्रामवासी कृष्ण आदि सभी नग्न गोपियों को रोज देखते थे इस पर शंका न कर आज के देखने पर शंका कैसी ? हम और आप अपनी छोटी २ पुत्रियों या पड़ोसियों की पुत्रियों को रोज नग्न देखते हैं इस पर शंका न कर भगवान् कृष्णचन्द्र पर शंका क्यों? यदि कहो कि हम कामभावना से तो नहीं देखते, आप काम भावना से नहीं देखते तो कृष्ण गोपियों को काम भावना से देखते थे इसमें कोई प्रमाण है? कुछ नहीं, केवल मन की तरंग। मन से तरंग उठा कर भगवान् या अपने मान्य को झूठा कलंक लगा देना क्या यह किसी की सभ्यता है ? इनसे यह पूछो कि तुम श्रीकृष्ण को मनुष्य मानते हो या ब्रह्म। यदि ये कहें कि हम तो मनुष्य मानते हैं तो इन से कहो

कि आपने किसी वैद्य, हकीम या डाक्टर से पूछा कि क्या छः वर्ष की उम्र वाले बच्चे के भोगादि ज्ञानोत्पादक मानसिक भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं? भगवान् कृष्ण ने छः वर्ष की उम्र में चीर हरण किया और सप्तम वर्ष में गोवर्धन उठाया। यदि ये यह कहें कि हम तो कृष्ण को ब्रह्म मानते हैं तो इन कृपा के झीलों से पूछो कि ब्रह्म तो सर्वदा सब के सब अंगों को देख ही रहा है फिर शंका कैसी? यदि ये लोग यह प्रश्न करें कि ऐसा किया क्यों? तो इसके उत्तर में इतना ही कह देना तोषदायक होगा कि ब्रजभूमि में प्रचलित नग्न स्नान को कुरीति को दूर कर देने के लिये।

रासक्रीड़ा।

अज्ञ लोगों को श्रीकृष्ण भगवान् की पवित्र रासक्रीड़ा में भी कलंक दीख पड़ता है। रासक्रीड़ा में भगवान् कृष्ण ने कामदेव का विजय किया इसके ऊपर भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी लिखते हैं कि—

ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमंडलमंडनः॥

कामदेव ने ब्रह्मा से लेकर पशु पक्षियों तक का विजय कर लिया इस से कामदेव का दर्प बढ़ गया और वह कामदेव भगवान् कृष्ण के पास आया। कामदेव की इच्छा थी कि हम भगवान् कृष्ण का भी विजय करें, इसी अभिप्राय से कामदेव कृष्ण के पास आया और आकर बोला कि हमने समस्त संसार का

विजय कर लिया, अब हमारी इच्छा है कि हमारा और आप का संग्राम हो जाय किन्तु हम मैदानी लड़ाई लड़ेंगे, लंबा चौड़ा मैदान हो, आपके सामने हमारे बड़े बड़े सेनापति खड़े हों, हमारे बड़े बड़े वीर सिपाही हों, हमारे योग्य काल हो, और हमारी विजय कर देनेवाली समस्त युद्ध की सामग्री हो, तब हमारा आपका युद्ध हो। फिर देखिये किस का विजय होता है। हम किले के युद्ध में धोखा खा चुके हैं इस कारण किले की लड़ाई नहीं लड़ेंगे। एक दिन दिव्य दिव्य अपने युद्ध के शस्त्र और बड़े बड़े वीर सिपाहियों को लेकर हम महादेव पर चढ़े, उस समय शंकर महादेव समाधिरूप किले में छिप गये, हमारे योद्धा काम न कर सके, हम लाचार हो गये। फिर महादेव ने समाधि खोल कर एकदम हमको भस्म कर दिया। अतएव इस प्रकार से किले को लड़ाई न लड़कर आपके साथ में हमारा मैदान का समर होगा, फिर हम देखेंगे कि आपका विजय होता है या हमारा। मैदान का युद्ध ठना, और उस में भगवान् कृष्ण ने कामदेव के घमंड को चूर कर दिया, ऐसे श्रीपति भगवान् गोपियों के रासमंडल के मंडन की जय हो।

आजकल के कामी लोग अपने दूषित चित्त के भाव को आगे रख कर कृष्ण को दूषित समझ और कामदेव को अजेय जान कर ही रासक्रीड़ा पर शंका उठाया करते हैं, वास्तव में हम जैसे तुच्छ लोगों के लिये काम अजेय है इसके विषय में शास्त्रों के बड़े बड़े लेख हैं उनमें से एक दो हम श्रोताओं के आगे रखते हैं।

उडुराजमुखी मृगराजकटी
गजराजविराजतमन्दगती ।
यदि सा वनिता हृदये रमिता
क्व जपः क्व तपः क्व समाधिरतिः ॥

चन्द्रमा के तुल्य मुख और सिंह के तुल्य कमर, हस्ती के तुल्य मस्त चाल चलनेवाली यदि ऐसी वनिता एक बार हृदय में समा जावे फिर जप कहां, तप कहां, समाधि का रमण कहां, सब छूट जाते हैं, और ये हजरत मनीराम वनिता के सच्चे भक्त बन जाते हैं। इस हजरत कामदेव ने कैसे कैसे तपस्वियों को धूल में मिलाया है, ज़रा उनका भी फोटू देखिये।

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना
स्तेपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः ।
साल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ॥

विश्वामित्र पराशर प्रभृति अनेक ऋषि केवल वायुमात्र का भक्षण करते और कितने ही केवल जलपान करते तथा कितने सूखे पत्ते ही खाते ऐसे ऋषि भी सोभन स्त्री मुखकमल को देख कर मोह को प्राप्त होगये, जो लोग घृत दुग्ध दधि मिश्रित तण्डुल खाते हैं यदि वे कहें कि हम इन्द्रियों को जीत लेंगे तो उनको इन्द्रियों का निग्रह हो जाना उतना ही असंभव है जितना कि विंध्याचल पर्वत का हिन्द महासागर तैर कर पार होना।

तावदेव विदुषां विवेकनी,
बुद्धिरस्ति भवबन्धभेदिनी।
यावदिन्दुवदना न कामिनी,
वीक्षिता रहसि हंसगामिनी॥

विद्वानों की बुद्धि विवेकवाली तथा संसारबंधन को तोड़ने वाली तभी तक रहती है जब तक हंस की चाल चलने वाली चन्द्रमुखी वनिता का एकान्त देश में समागम नहीं होता।

यद्यपि हमारे तुम्हारे लिये काम अजेय है किन्तु उसी अजेय कामदेव को भगवान् कृष्ण ने रासक्रीड़ा में जीता है यह रासपंचाध्यायी से अपने आप पता लगता चला जाता है। अब हम रासपंचाध्यायी का आरंभ करते हैं।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ १॥

भगवान् ने शरद् ऋतु की मल्लिका जिन में फूल रही है और जिन रात्रियों में कामदेव से युद्ध का वचन दे दिया उन रात्रियों को देख कर योगमाया का आश्रय लेकर रमण करने की इच्छा की।

उस समय कामवर्द्धक रात्रि का फोटू उतारते हुये भगवान् कृष्णद्वैपायन श्रीमद्भागवत में लिखते हैं कि—

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिंपन्नरुणेन शन्तमैः।

स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

उसी समय उन श्रीकृष्णजी की प्रीति के निमित्त जैसे बहुत दिनों में दर्शन देनेवाला प्रियपति विनोद के समय अपनी स्त्री का मुख लालवर्ण के केशर से लिप्त करता है तैसे ही सब प्राणियों के ताप और ग्लानि को दूर करने वाला वह प्रसिद्ध चन्द्रमा अपनी अति सुखकारिणी किरणरूप हाथों से उदय के रंग करके पूर्वदिशारूप स्त्री का मुख लाल लाल करता हुआ उदय हुआ ॥ २ ॥ तब श्रीकृष्णजी ने लक्ष्मी के मुख कान्ति के समान कान्तिवाले नवीन केशर के समान लाल लाल और कमलिनियों को प्रफुल्लित करने वाले तिस पूर्ण चन्द्रमा को देख कर और उसकी सुखकारी किरणों से शोभायमान हुये वृन्दावन को देख कर स्त्रियों के मनको हरने वाला मधुर गान करा ॥ ३ ॥

भगवान् ने काल सर्वथा कामदेव के अनुकूल समझा तब ही वंशी बजाई। भगवान् समझते थे ऐसा न हो कि किसी प्रकार की त्रुटि रह जाय और कामदेव हमको उलहना दे कि इतनी कमी के कारण हमारा पराजय होगया। प्रथम तो शरद ऋतु

स्वतः ही कामोत्पादक होती है फिर शरदऋतु में भी रात्रि यह उस से भी अधिक कामोत्पादक है, और फिर चन्द्रमा का प्रकाश युक्त दर्शन जो विरही मनुष्य के लिये यमराज का दादा बतलाया गया है, इस से भी अधिक कामोत्पादक वन और उसमें भी असंख्य प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि जो स्वभावतः ही विषयवर्द्धिनी है, फिर मंद, शीतल, सुगंधि-युक्त वायु का संचलन ये समस्त साधन युद्ध में कामदेव के सहायक हैं इनको समझ करके ही आज कामदेव को ससैन्य युद्ध में उतारने के लिये भगवान् ने मनमोहनी वीणा बजा दी। यह वीणा थी, होगी योगियों के लिये वीणा, यह तो कामदेव के लिये संग्राम का बिगुल है। बिगुल के बजते ही कामदेव की सेना में उद्विग्न होगया तत्काल ही तैयारियां, फौरन ही चढ़ाई के सामान हो गये। जब युद्ध का बिगुल बज जाता है फिर जो सिपाही खाना खाता हो खाने को छोड़ कर वर्दी पहन लेता है, रोटी पकाने वाला सिपाही चौका छोड़ युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाता है, बन्दूक का साफ करने वाला सिपाही हाथ में बंदूक लेकर तुरंत खड़ा हो जाता है। अभिप्राय यह है कि युद्ध के बिगुल को सुन करके सिपाही लोग समस्त कामों को छोड़ देते हैं और अति शीघ्रता से युद्धस्थल में पहुंचने का उद्योग करते हैं। इस वर्तमान नियम के अनुसार कामदेव के प्रबल योद्धा भ्रूभंगमात्र से इन्द्रादिकों का विजय कर देने वाले गोपियों के यूथ वंशी के बजते ही अपने कृत्यों को छोड़ कर जिस प्रकार

समर की उपस्थिति में शीघ्रता करते है उनकी शीघ्रता का वर्णन भगवान् वेद व्यास जिस प्रकार लिखते हैं उसको सुनने की कृपा करें।

निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥

दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥
परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून्पयः।
शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥६॥
लिंपन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अंजत्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः॥७॥
ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तंत मोहिताः ॥ ८ ॥

उस कामदेव की वृद्धि करने वाले गान को सुन कर जिनके मन कृष्ण ने खींच लिये हैं और सापत्न्यभाव उत्पन्न न हो इस प्रकार जिन्हों ने अपना कृष्ण के समीप जाने का उद्योग परस्पर जताया नहीं है ऐसी वह गोकुल में की स्त्रियें जहां वह श्रीकृष्ण जी थे तहां गान की ध्वनि के मार्ग से चली गई उस समय जाने की शीघ्रता से उनके कानों के कुंडल हिलते थे॥ ४ ॥ श्रीकृष्णजी

को जताने वाले शब्द के सुनने से श्रीकृष्णजी की ओर को चित्त लगाने वाले पुरुषों के धर्म, अर्थ, काम के प्रतिपादन करनेवाले कर्मों की तत्काल निवृत्ति होती है यह दिखाने के लिये गोपियें आधा आधा हुआ हो अपना काम छोड़ कर चली गईं यह वर्णन करते हैं, कितनी ही गोपियें गौओं का दूध दुह रही थीं उन्होंने आधा दूध दुहा इतने ही में श्रीकृष्ण की मुरली का शब्द सुनाई दिया सो वह श्रीकृष्णजी को पाने में उत्कंठित हो कर वह दूध का पात्र तहां ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही गोपियें दूध की हांडी में के दूध को चूल्हे पर चढ़ा कर वह औंट गया था नहीं सो विना देखे ही तैसे ही चली गईं, दूसरी कितनी ही गोपियें चूल्हे के ऊपर होते हुये हलुआ को विना उतारे तसे ही चली गईं ॥ ५ ॥ कितनी ही पति पुत्रों को भोजन परोस रही थीं सो अधपरोसा ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही अपने बालकों को स्तनों का दूध पिला रही थीं सो तैसा ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही अपने पति की सेवा कर रही थीं वह अधबीच में ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही भोजन कर रही थीं वह भोजन को छोड़ कर चली गईं॥ ६ ॥ कितनी ही शरीर में चन्दन आदि मल रही थीं, कितनी ही शरीर में उबटना लगा रही थीं और दूसरी कोई नेत्रों में काजल आंज रही थीं वह अपना काम आधा आधा ही छोड़ कर उन श्रीकृष्णजी के समीप को चली गईं, कितनी ही वस्त्र आभूषण धारण कर रही थीं, वह उलटे ही वस्त्र पहन कर गले के आभूषण चरणों में और चरणों

के आभूषण गले में पहन कर, नाक की नथ कानों में और कानों की वालो नाक में पहिन कर श्रीकृष्णजी के समीप को चली गईं ॥ ७ ॥ अब जिनके मन श्रीकृष्णजी ने खींचे हैं उनको विघ्न नहीं होने हैं ऐसा वर्णन करते हैं। गोविंद द्वारा चित्त को खिचने के कारण मोहित होकर श्रीकृष्णजी के समीप को जाने वाली वह स्त्रियें पति माता पिता और भाई वान्धवों के निषेध करने पर भी पीछे को न लौटीं किन्तु श्रीकृष्णजी के समीप को चली गईं ॥ ८ ॥

जो दशा समरभूमि में युद्ध का बिगुल सुन कर सिपाहियों की होती है वही दशा आज गोपियों की हो गई है, कई एक गोपियों को उनके वान्धवों ने नहीं जाने दिया उनकी भी दशा को श्रवण कीजिये।

अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९
दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्याक्षीणमंगलाः ॥ १०
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबंधनाः ॥ ११

उस समय कितनी ही गोपियें तो घर में ही थीं उनको उनके पति पुत्रादिकों ने द्वारों में जंजीर ताले आदि लगा कर कृष्ण के समीप जाने से रोक लिया इस कारण उनको मार्ग नहीं मिला सो वह पहिले ही श्रीकृष्ण का ध्यान करनेवाली थीं परन्तु उस

समय उन्होंने नेत्र मूंद कर एकाग्रता से श्रीकृष्णजी का ध्यान करा ॥ ९ ॥ और वह अति प्रिय श्रीकृष्णजी के दुःसह विरह से होने वाली तीव्रताप करके अनेक जन्मों के इकट्ठे हुये पाप कर्मों का फल (दुःख) एक साथ भोग कर शुद्धचित्त हुईं तैसे ही ध्यान से प्राप्त हुये श्रीकृष्णजी के आलिंगन के परमसुख करके अनेक जन्मों के इकट्ठे हुये पुण्य कर्मों का फल (सुख भी) भोग कर क्षीण पुण्य हुईं इस प्रकार तत्काल जिनके पुण्य पाप रूप बंधन सर्वथा दूर हो गये हैं ऐसी वह गोपियें जार बुद्धि से भी इन परमात्मा श्रीकृष्णजी को प्राप्त होकर अपने गुणमय शरीर को त्याग सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुईं ॥ १० ॥ ११

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं,
धातारं प्रणिपत्य हंत शिरसा तत्रापि याचे वरम् ।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गणे,
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः ॥

भीतर घर में बन्द हुई गोपी मरने के समय प्रार्थना करती हैं कि मेरा जो शरीर है वह पंचतत्व को प्राप्त हो और मेरे शरीर में जो तत्व समूह है वह अपने अपने तत्व मे प्रवेश करे ऐसा होते समय में भी मैं नम्र होकर के अपने शिर को जगदीश्वर के चरणों में झुकाती हुई एक वर मागती हूं कि मेरे जो शरीर का जल है वह उस वापी के जल में जाय जिसमें कृष्ण स्नान करते हैं, मेरे शरीर की जो ज्योति है वह उस दर्पण में जावे जिसमें भगवान् मुख देखते हैं, मेरे शरीर का जो आकाश है

वह उस आंगन में जाय जिसमें भगवान् खेलते हैं, मेरे शरीर का जो पृथ्वी तत्व है वह उस मार्ग में जाय जिस पर भगवान् चलते हैं, मेरे शरीर का जो वायु तत्व है वह उस तालवृन्द में जाय जहां भगवान् को शीतल मंद सुगंध वायु स्पर्श करता है।

गोपियां वंशी के शब्द से मोहित होकर रात्रि को घोर व में पहुंचीं कृष्ण के रूप को देख कर चकित रह गईं, एक गोपी और गोपियों से कहने लगी कि आली आज कृष्ण के रूप की छवि को देखिये सारे संसार का सौन्दर्य धूल में मिला दिया है।

वारि डारौं शरदइन्दु मुखछवि गोविंद पै,
दिनेशहु को वारि डारौं नखन छटान पर।
कोटि काम वारि डारौं अंग अंग श्याम लखि,
वारि डारौं अलि आलि कुंचित लटान पर॥
नैनन की कोरन पै कंजहू को वारि डारौं,
वारि डारौं हंसहू को चाल लटकान पर।
देख सखी आज ब्रजराज छवि कहा कहूं,
कामधनु वारि डारौं भृकुटी मटान पर॥

आई हुई गोपियों से कुशल क्षेम पूछ कर भगवान् कृष्ण ने उनको एक उपदेश सुनाया, उपदेश यह है—

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम्॥ २४
दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जड़ो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥२५

पति की सेवा करना स्त्रियों का परमधर्म है इसी प्रकार पति के माता पिता की सुश्रूषा और बच्चों का पालन करना यह भी स्त्रियों का धर्म है। दुःशील, दुर्भाग्य, वृद्ध, मूर्ख, रोगी, निर्धन ऐसा पति भी उन स्त्रियों को अनादर करने के योग्य नहीं है जो स्त्री अपनी उत्तम गति चाहती है। स्त्री केवल पतित पति को त्याग सकती है।

तुम जाओ, पतियों को सेवा करो, गौओं को दुहो और अपने बच्चों को दूध पिलाओ। इसको सुन कर गोपियां लज्जित हुईं तथा विषय से मन खिंच कर भगवान् की भक्ति की तरफ गया और बोलीं—

मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मा-
न्देवो यथादि पुरुषो भजते मुमुक्षून्॥ ३१

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बंधुरात्मा॥ ३२

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्म-
न्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम्।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशाम्भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र॥ ३३

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूला-
द्याम: कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४

हे व्यापक ! इस प्रकार से आप हम से क्रूरवाक्य मत कहो, हम समस्त विषयों को छोड़ कर आपके चरणारविन्द में प्राप्त हुई हैं। हे स्वच्छन्द ! हम आप की भक्त है इस कारण हमको मत छोड़ो, जिस प्रकार आदिपुरुष ब्रह्म मुमुक्षु जीवों को अपनी दया का पात्र वनाता है उसी प्रकार आप भी हमको अपनी दया की अधिकारिणी बनावें॥ ३१ ॥ धर्म के जाननेवाले आपने जो पति और अपत्य तथा पतिबन्धु की सेवा करना ही स्त्रियों का धर्म वतलाया है वह धर्म संसारप्रिय जो आप है आप में चरितार्थ हो तो कैसी अच्छी वात है जितने शरीरधारी हैं उन सबके प्रिय, वन्धु, आत्मा आप ही तो हैं ॥ ३२ ॥ भगवन् ! संसार में जो वहुत कुशल है वे आपमें ही रति करते है, आप कैसे हैं कि प्राणीमात्र को नित्य प्यारे हैं, पति, सुत ये तो दुःखों के देने वाले हैं, कभी इनका संयोग होता है और कभी इनका वियोग होता है इनमें प्रीति करने से प्रयोजन क्या निकलेगा । हे कमलनेत्र ! हमने वहुत दिन से आप में प्रीति लगाई है आप हमारी आशारूप लता को बीच से मत काटिये ॥ ३३ ॥ भगवन् ! आपने सुखपूर्वक ही हमारे चित्त को अपनी तरफ खैंच लिया है, अव वह चित्त घरों में

और घरों के कृत्यों में जाता ही नहीं, आपके चरणारविन्द से
हमारे पैर एक कदम भी अन्यत्र कहीं नहीं चलते, कहिये तो
सही अब हम कैसे और कहां जायं और क्या करें ॥ ३४ ॥

भगवान् कृष्ण ने देखा कि गोपियों में जो कामभावना
रूप भूत धँसा था उसका मस्तक तो नीचा हो गया अब ये
अवश्य कृपा की पात्र हैं यह समझ कर भगवान् ने रास का
आरंभ किया। भगवान् को जैसे जैसे गोपियां ब्रह्म जानती जाती
हैं वैसे ही वैसे उनकी कामभावना विदा होती चली जाती है।
जिस समय गोपियों की समस्त कामभावना अस्त हो गई तब
भगवान् ने फिर कामभावना को उभारने का उद्योग किया—

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु,
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्ब्रजसुन्दरीणा,
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥ ४६

दूरवाली को पकड़ने के निमित्त भुजा फैलाना, बलात्कार
से खींच कर आलिंगन करना, हाथ, केश, जंघा, वस्त्र का
बन्धन और स्तनों का स्पर्श करना, हास्य की वार्ता करना
नखों के अग्रभागों से नोचना, क्रीड़ा के साथ देखना तथा
हंसना, इस प्रकार उन ब्रज सुन्दरियों के कामदेव को उद्दी-
पित करते हुये श्रीकृष्णजी ने उनको क्रीड़ा कराई ॥ ४६ ॥

इतना होने पर भी अब काम वेग का उदय न हुआ। हां,
अभिमान आगया कि आज रहस्य में जो हमारे ऊपर भगवान् ने

दया की है वह दया किसी स्त्री पर, लक्ष्मी पर, इन्द्रादि देवों पर और ऋषि मुनियों पर आज तक नहीं हुई। भगवान् कृष्ण इस अभिमान को समझ कर गोपियों के यूथ से एकदम अन्तर्धान होगये, साथ में ही एक गोपी को भी ले गये। कृष्ण को अन्तर्धान देख गोपियों को बड़ा दुःख हुआ, पागल की भांति बन कर वृक्षों से पूछती हैं कि क्या तुमने इधर को जाते हुये नन्दसूनु को तो नहीं देखा? जब कृष्ण न मिले तो गोपियां कृष्ण की लीलायें करने लग गईं। एक गोपी कृष्ण बनी एक शकटासुर बनी, कृष्ण बनने वाली गोपी ने शकटासुर को उल्टा डाल दिया, एक गोपी कृष्ण बनी, कृष्ण बनने वाली गोपी पूतना की छाती पर चढ़ बैठी, दो गोपियों ने चद्दर तान कर चद्दर का गोवर्धन बनाया, तीसरी गोपी कृष्ण बन कर सब व्रजवासियों को कह रही है कि वर्षा से मत डरो इस पर्वत के नीचे धॅस जावो। ये गोपियां तो इस प्रकार लीला कर रही हैं परन्तु जिस गोपी को भगवान् कृष्ण साथ ले गये थे वह अभिमानरहिता थी किन्तु अब उसको भी अभिमान आया कि हम धन्य भाग हैं भगवान् ने समस्त गोपियों को छोड़ दिया किन्तु हमको साथ रक्खा। गोपी बोली कि अब हम नहीं चल सकतीं, कृष्ण बोले हमारे कंधे पर चढ़ लो, कृष्ण बैठ गये, वह कंधे पर चढ़ने लगी इतने में कृष्ण गायब होगये, वह अकेली ही रह गई। लीला करने के पश्चात् ये गोपियां कृष्ण को ढूंढने के लिये निकलीं, पैर के चिन्हों से ज्ञात हुआ कि एक गोपी और

भी साथ गई है इतने में वह आकर झुण्ड में मिली, फिर समस्त गोपियां वन से लौट कर यमुना के पुलिन में आ गईं, बैठ कर भगवान् की चिन्ता करने लगीं। इस चिन्ता का जो वेद व्यासजी ने उल्लेख किया है उसका नाम गोपीगीत है, उस गोपी-गीत के दो पद्य आज हम श्रोताओं के आगे रखते हैं इन पद्यों से श्रोता उत्तम रीति से समझ जावेंगे कि अब गोपियों में काम भावना है या भक्ति है।

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसा-
 द्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भया-
 दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः॥
न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
 नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये
 सख उदेयिवान्सात्वतां कुले॥

भगवन्! आपने विषमिश्रित कालीदह के जलपान के प्राप्त मृत्यु से, व्याल राक्षस अघासुर से, इन्द्र की कोपवृष्टि से, अग्नि से, अरिष्टासु और व्योमासुर से इसी प्रकार और राक्षसों से हे ऋषभ! तैंने हमारी बार २ रक्षा की है। आप केवल सामान्य रूप से गोपी के लड़के ही नहीं हैं वरन् समस्त प्राणियों के अन्तरात्मा द्रष्टा हैं, ब्रह्मा ने संसार की रक्षा के लिये आपसे प्रार्थना की तब आपने यादवकुल में अवतार धारण किया।

गोपियों ने विविध प्रार्थना की और आर्तनाद से भगवान् को पुकारा। दीनदयालु कहलाने वाले जगदीश्वर भगवान् गोपियों के झुंड में आकर प्रकट हुये। आये हुये कृष्ण को देख कर गोपियों के हर्ष की सीमा को कोई वर्णन नहीं कर सकता। फिर रास रचा गया, एक एक गोपी एक एक कृष्ण वन कर रास किया गया। इस रास को देखने के लिये देवाङ्गनासहित देवता विमानों में बैठ कर पधारे थे।

आमोद, प्रमोद, हर्ष, केलि, खेल कूद, नाच गान और कामदेव के योद्धा मनोहर रमणी स्त्रियों के उपस्थित होते हुये भी भगवान् ने कामदेव का पराजय कर दिया। ध्वस्तमुख कामदेव नीचा शिर करके हार कर चला गया। इस रासपंचाध्यायी में अपने अज्ञान से कोई मनुष्य विषय न समझ बैठे, विषय की शंका को दूर करने के लिये व्यास कृष्णद्वैपायन चार श्लोक लिखते हैं (१) "भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः। वीक्ष्य रंतु मनश्चक्रे योगमाया मुपाश्रितः"। इस श्लोक में भगवान् वेदव्यासजी ने "योगमायामुपाश्रितः" पद दिया है अर्थात् रासक्रीड़ा करने के लिये भगवान् ने योगमाया का आश्रय लिया। योगमायी पुरुष को 'विषय' अपने काबू में नहीं कर सकते क्योंकि सांसारिक विषय में उस आनन्द का लेश मात्र भी नहीं है जो आनन्द योग में होता है।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।

न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

समाधि से हुये पवित्र मन को जिसने आत्मा में लगा दिया उसको जो सुख होता है उस सुख को जवान से नहीं कह सकते, वह सुख अन्तःकरण से ग्रहण होता है।

इस अलौकिक आनन्द में मग्न होकर भगवान् ने रासक्रीड़ा का आरंभ किया। इसका अभिप्राय यह है कि योगियों को काम सता नहीं सकता, जब तक भगवान् रासक्रीड़ा में रहेंगे योग-माया का आश्रय लिये रहेंगे, इस भाव को दिखलाने के लिये व्यासजी ने 'योगमायामुपाश्रितः' यह पद दिया है। (२) फिर भगवान् वेदव्यासजी ने "इति विक्लवितं तासांश्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः। प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोप्यरीरमत्" इस श्लोक को लिख कर यह सिद्ध किया है कि भगवान् कृष्णचन्द्र आत्माराम हैं। जो आत्माराम है उसको सांसारिक विषय अपने काबू में नहीं ला सकते। इस विषय में प्रमाण भी मिलता है—

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रू प्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

हे वरद ! आप कैसे हैं कि, यदि कोई आपके घर की सामग्री की संभाल करे तो आपके घर में इतनी सामग्री पावे। बूढ़ा बैल, खटिया का एक पाया, कुठार, मृगचर्म, भस्म, सांप,

मुर्दे को खोपड़ी, बस आपके घर में इतनी सामग्री है और देवता लोग आपकी भृकुटि के चलाने से उत्पन्न हुई बड़ी बड़ी ऋद्धि सिद्धियों को धारण करते हैं यह बात क्या है ? बात यह है कि आत्मा में है रमण जिसका उसको यह मृगतृष्णा अपने चक्कर में नहीं डाल सकती। (३) वेदव्यासजी लिखते हैं कि "तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः। पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः"। जीवों के मनको कामदेव मथ डालता है और कामदेव को चूर्ण कर देने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं, जब 'मन्मथमन्मथः' पद श्लोक में विद्यमान है फिर किस हेतु को लेकर भगवान् कृष्ण पर व्यभिचार का कलंक लगा सकते हैं।' (४) आगे वेदव्यासजी लिखते हैं कि "एवं शशांकांशुविराजिता निशा स सत्यकामोऽनुरतावलागणाः। सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः" इस प्रकार प्रेम करने वाली स्त्रियों के समूह में रहने वाले, सत्य संकल्प और अपने में ही वीर्य को रोकने वाले (अस्खलित वीर्य) तिन श्रीकृष्णजी ने चन्द्रमा की किरणों करके प्रकाशयुक्त हुई और शरद-ऋतु में होने वाले तथा काव्य में कहे हुये रसों की आश्रय उन सकल रात्रियों में इस प्रकार क्रीड़ा करी।

शंका करने वाले मनुष्य यदि कृष्ण को ब्रह्म मानते हैं तब तो ब्रह्म पूर्णकाम है और यदि मनुष्य मानते हैं तो आठ वर्ष की अवस्था में व्यभिचार की शंका ही नहीं हो सकती। सात वर्ष की अवस्था में भगवान् ने गोवर्धन उठाया,

अष्टम वर्ष में रासक्रीड़ा की और ग्यारहवें वर्ष में कंस को मारा।

ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्धि विभ्यता।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्॥ २६

कंस से भयभीत हुये पिता वसुदेव ने भगवान् कृष्ण को व्रज में नन्द के यहां पहुंचा दिया यहां सबल भगवान् कृष्ण ने ग्यारह वर्ष तक इस प्रकार निवास किया जैसे राख में ढकी हुई अग्नि रहती है।　　स्कं २ अ० २

जो शंका आजकल के मनुष्य खड़ी करते हैं यह तो निर्मूल है। हां, दूसरे को स्त्रियों का स्पर्श करना यह शंका हो सकती है और इसी शंका को परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी के सन्मुख रख दिया है, सुनिये परीक्षित क्या कहते हैं—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः॥ २७
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम्॥ २८
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत॥ २९

हे शुकदेवजी! धर्म को भली प्रकार स्थापन करने और अधर्म को दूर करने को ही अपने अंशरूप बलरामजी के साथ उन जगदीश्वर भगवान् ने अवतार धारा था॥ २७॥ फिर हे ब्रह्मन्! उपदेश करके दूसरों से धर्म की मर्यादा को

प्रवृत्त करने वाले, आप आचरण करके दिखलाने वाले और विरोधियों का तिरस्कार करके सब प्रकार के धर्म की रक्षा करने वाले उन श्रीकृष्णजी ने ही परस्त्री का स्पर्श रूप यह बड़ा धर्म विरुद्ध कार्य कैसे किया, यदि कहो कि पूर्ण मनोरथों को यह अधर्म नहीं होता है तो पूर्णकाम भी निन्दित कर्म नहीं करते हैं तब पूर्णमनोरथ श्रीकृष्णजी ने किस अभिप्राय से यह परस्त्री स्पर्शरूप निन्दित कर्म करा, हे सदाचार ! इस हमारे संदेह को तुम काटो ॥ २९ ॥

यद्यपि श्रीशुकदेवजी ने यहां पर कई उत्तर दिये हैं परन्तु उनमें से एक उत्तर मैं आपके सन्मुख रखता हूं—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३०

सामर्थ्यवालों का साहस और धर्मव्यतिक्रम भी देखा जाता है किन्तु तेजधारियों को उसका कुछ दोष नहीं होता जैसे अग्नि दूषित पदार्थ को खाकर दूषित नहीं होता ।

सामर्थ्यवान् को दोष नहीं होता, शास्त्र में इसके तीन दृष्टान्त आते हैं–एक अग्नि का, दूसरा सूर्य का और तीसरा गंगाजी का । हिन्दीसाहित्य के सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी तुलसीकृत रामायण में तीनों दृष्टान्त इकट्ठे कर दिये हैं, चौपाई इस प्रकार है—

समरथ को नहिं दोष गुसाईं।
रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

समरथ को दोष नहीं होता, जैसे सूर्य अग्नि और गंगाजी को दोष नहीं लगता। पृथ्वी पर पड़े हुये "मल" से जब सूर्य संयोग करता है तो उसके बदबूदार गीलेपन को मल से खींच लेता है फिर प्रशंसा यह है कि अपने में उसको ग्रहण नहीं करता। यह सूर्य में सामर्थ्य है कि जिस दूषित पदार्थ के साथ वह संयोग करे दूषित अंश को उसमें रहने नहीं देता और अपने में आने नहीं देता। यही सामर्थ्य अग्नि में भी है। कल्पना करो कि अग्नि में किसी ने सूखा 'मल' डाल दिया, वह अग्नि सूखे मल में दूषित पदार्थ को रहने नहीं देगा और अपने में ग्रहण नहीं करेगा किन्तु मल में प्रवेश करके दूषितांश को हाइड्रोजन बना कर उड़ा देगा। यही सामर्थ्य गंगाजी में भी है। गंगाजी में जब दूषित पदार्थ पड़ेगा तो संयोग करते ही गंगाजी उसमें से दूषितांश के निकालने का उद्योग आरंभ कर देगी और शनैः शनैः उसको शुद्ध बना देगी तथा वह दूषितांश अपने में आने नहीं देगी। इस प्रकार की सामर्थ्य जिसमें हो उसको समर्थ कहा गया है। धन, विद्या, राज्यादि सामर्थ्य को लेकर यहाँ सामर्थ्यवान् नहीं लिया जाता है। सूर्य, अग्नि, जाह्नवी में जो यह सामर्थ्य है कि संयोगवाले पदार्थ में से दूषितांश निकाल देंगे और अपने में लेंगे नहीं। भगवान् कृष्ण ने रासपंचाध्यायी में इसी शक्ति को दिखलाया है। गोपियों में

उत्कट भक्ति रहने पर भी कामभावना थी इस कामभावना को जगदीश्वर ने गोपियों में से निकाल डाला और अपने तक आने नहीं दिया।

चोर जार शिखामणिः।

कई एक सज्जन यह कह देंगे कि गोपालसहस्रनाम में भगवान् कृष्ण के लिये 'चोरजारशिखामणिः' लिखा है। इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि वह ठीक लिखा है किन्तु मक्खन को चोरी करने से भगवान् चोर नहीं, रासक्रीड़ा से जार नहीं, और न गोपालसहस्रनाम ने ही चोर जार लिखा है, गोपाल सहस्रनाम ने तो 'चोरराज, जारराज' लिखा है। 'शिरोमणिः' का अर्थ यह है कि चोर से भी बढ़िया चोर और जार से भी बढ़िया जार, इसी को चोरराज, जारराज कहते हैं। वेद लिखता है कि "तस्कराणांपतये नमो नमः" चोरों के पति जो भगवान् हैं उनको हम प्रणाम करते हैं। जब वेद ने ही उनको चोरराज कह दिया तो गोपालसहस्रनाम ने लिख दिया तो क्या बुरा किया।

चोर जब किसी के घर में आता है तब उन्हीं पदार्थों को चुराता है जो दीखते हैं, जो नहीं दीखते वे बच जाते हैं, किन्तु जिस समय भगवान् किसी मनुष्य के अंतःकरण में आते हैं वे अदृश्य पदार्थों को भी चुरा ले जाते हैं, इस विषय में संस्कृत साहित्य लिखता है कि—

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसञ्चयं
हरत्यशेषं स्मरतां सदैव ॥

मनुष्यों के नायक जो नारायण हैं वे संसार में प्रसिद्ध चोर हैं, जिसके अंतःकरण में एक बार घंस बैठते हैं फिर वे अनेक जन्मों के कर्मों को एकदम चुरा ले जाते हैं और मनुष्य के कर्मबंधन को काट कर फेंक देते है।

यह चोरराज लिखने का अभिप्राय है। जारराज के विषय में संस्कृतसाहित्य लिखता है कि—

रमते भगवान्नित्यमजया योगमायया।
सृजति सापि भूतानि तेन जारशिरोमणिः ॥

भगवान् नित्य ही अजा योगमाया के साथ में रमण करते हैं वह अजा भी समस्त भूतों को उत्पन्न करती है ब्रह्म रमण करते करते कभी भी नहीं थकते इस कारण ये जारशिरोमणि हैं।

शास्त्र के इस अभिप्राय को तो जनता समझती ही नहीं। आजकल के समय में लोगों के मन दूषित हो रहे हैं, अपने दूषित मन के अनुसार जनता भगवान् कृष्ण को भी दूषित समझती है, किन्तु यह जनता की भूल है। आज हमने स्पष्ट रूप से भगवान् कृष्ण के चरित्र को आपके आगे रक्खा है मुझे आशा है कि आप मेरे व्याख्यान से ठीक भाव पर पहुंच कर नास्तिकों की झूठी शंकाओं को अपने चित्त से निकाल देंगे।

हरिः ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

कालूराम शास्त्री।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

मूर्तिपूजा ।

किरातहूणान्ध्र पुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवना खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रया श्रयाः
शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १

यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतयो
धियानुपश्यन्ति हि तत्वमात्मनः ।
वदन्ति चैतत्कवयो यथा रुचं
स मे मुकुन्दो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २

सन्त सभा झांकी नहीं, कियो न हरिगुण गान ।
नारायण फिर कौन विधि, तू चाहत कल्यान ॥ ३
तुलसी अपने राम को, रीझ भजो की खीझ ।
भूमि परे बिउ जामिहै, उलटा परै कि सीध ॥ ४

बहुत दिनों की बात है हम भागलपुर जा रहे थे, रास्ते में एक स्टेशन से दो मनुष्य हमारी गाड़ी में आ बैठे, उनके साथ में हारमोनियम और तबला भी था, बैठने पर बातचीत होने लगी, मालूम हुआ कि एक मनुष्य तबला बजाता है और दूसरे

मनष्य किसी धार्मिक सोसाइटी के भजनोपदेशक हैं। जब बातें हो चुकीं तब उन्होंने तबलची से कहा कि तबला ठीक करो, पंडितजी को एक भजन सुनावें। तबला और हारमोनियम मिलाये गये—गाना आरंभ किया गया और एक बहुत बड़ा भजन गाया गया जिसका आरंभ यह है कि—

तुम्हीं हो मूर्ति में व्यापक, तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
कहो भगवान पर भगवान, भला क्यों कर चढ़ाऊं मैं॥

भजन पूरा हुआ, पूर्ण होने पर भजनोपदेशक ने हमसे पूछा कि कहिये पंडितजी भजन कैसा है ? हमने कहा अच्छा है। उन्हों ने फिर पूछा कि भजन में कोई गलती हो तो बतला दीजिये। इसके उत्तर में हमने कहा कि गलती तो अवश्य है, पहली कड़ी को सुधार दीजिये, उसने कहा कैसा बनादें, हमने उत्तर दिया कि—

तुम्हीं हो पेट में व्यापक, तुम्हीं व्यापक हो भोजन में।
कहो भगवान में भगवान, भला क्यों कर घसाऊं मैं॥

उसने कहा इससे क्या होगा, हमने बतलाया कि जो कुछ होना होगा आठ दश दिन में हो जायगा। श्रोताओ! मौन हो जाना पड़ता है आजकल के ज्ञानियों का विज्ञान सुन कर, जब पूजा की बात चले तब इनको यह ब्रह्मज्ञान याद आ जाता है कि मूर्ति में भी ईश्वर है और फूल में भी ईश्वर है, यदि हम मूर्ति पर फूल चढ़ा देंगे तो ईश्वर पर ईश्वर चढ़ जावेगा किन्तु जब ये खाने बैठते हैं तब इनको यह ज्ञान नहीं होता कि पेट

में भी ईश्वर है और भोजन में भी ईश्वर है कहीं पेट में भोजन डाल लिया तो ईश्वर में ईश्वर धंस बैठेगा। हमको नहीं मालूम कि इनको सर्वव्यापक ईश्वर का ज्ञान मूर्तिपूजा के समय क्यों हो उठता है और वह भोजन के समय इनका ज्ञान कैसे नष्ट हो जाता है। इस प्रकार की शैलियों पर आज मूर्तिपूजा का खंडन किया जाता है, क्यों न करें, ऐसे न किया जावे तो देश की उन्नति कैसे होगी। देश की उन्नति तो इनकी दृष्टि में तभी होगी जब मूर्तिपूजा, श्राद्ध, संध्या छोड़ दी जावें, जाति पांति का बंधन तोड़ दिया जावे, वेद धर्मशास्त्र पुराणों की अन्त्येष्टि कर दी देश की उन्नति हो जावेगी। इस प्रकार से होने वाली उन्नति का ज्ञान ऋषि मुनियों को न हुआ, इन्हीं को हुआ है!-

महर्षि वेद्व्यासजी ने तो उन्नति का मार्ग यही समझा था कि—

परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्।

परोपकार के समान कोई पुण्य नहीं और दूसरों को कष्ट पहुंचाने के तुल्य कोई पाप नहीं। नारद भी संसार में अनेक कष्टों से दुःखित जीवों को देख कर दुखी हो गये, उसी समय विष्णु के पास पहुंचे और कहा भगवन्! कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिस काम के करने से दुःखित मनुष्यों का दुःख दूर हो, दधीच ने देवतावों को दुःखित देख उनका दुःख दूर करने के लिये अस्थि दे दिये, अपना शरीर त्याग देवताओं का उपकार किया, शिवि ने कबूतर को बचा

लिया और उसके बदले अपना मांस दे दिया। हिन्दुओं ने आज तक परोपकार में उन्नति समझी थी किन्तु अब भारतवर्ष के प्रबल भाग्योदय होने के कारण कुछ मनुष्य ऐसे भी हो गये है जो मूर्तिपूजा मिटाने से ही उन्नति समझते हैं। जैसे ऋषि मुनि उपकार का पालन करते थे उसी प्रकार प्रभु जगदीश्वर ने भी उपकार को मुख्य मान सृष्टि के आरंभ में ही वेदों का प्रादुर्भाव इस कारण किया कि इससे मनुष्यों का उपकार होगा।

वेद में न रेल है न तार, न बढ़ई लुहारों की विद्या और न फौजी क़ानून, न मोटरों का बयान, न हवाई जहाजों का उड़ान। वेद में तीन काण्ड हैं—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। संध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव प्रभृति नित्यकर्म इष्टि से लेकर अश्वमेध यज्ञ पर्यन्त यज्ञ, कुआ बावड़ी प्रभृति इष्टा-पूर्ति, वेदोक्त इन कर्मों से मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र होता है, इसी को यजुर्वेद ने कहा है कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

यजु० अ० ४० मं० २

इस लोक में वैदिककर्म को करता हुआ सौ वर्ष जीता रहे अर्थात् काम्यकर्मों की तरफ़ से अरुचि और वैदिककर्म में प्रवृत्ति करता हुआ मनुष्य कर्मबंधन में नहीं आता।

इसी श्रुति के भाव को लेकर जगद्गुरु शंकराचार्य जी लिखते हैं कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि सकलं भद्रमश्नुते।
इत्यादि श्रुतिवाक्यानि नित्यं कर्म स्तुवन्ति च ॥

इस संसार में कर्मों को करता हुआ समस्त कल्याण को पाता है 'कुर्वन्ने वेह कर्माणि' प्रभृति जो वेद की श्रुतियां हैं नित्य ही कर्म की प्रशंसा करती हैं।

भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी गीता में लिख दिया है कि—

कर्मणैव तु संसिद्धिरास्थिता जनकादयः।

कर्म से ही जनकादिक सिद्धियों को प्राप्त हुये हैं।

मीमांसा प्रभृति दर्शनों ने कर्म को प्रशंसनीय बना कर मनुष्य को कर्म करने की आज्ञा दी है, कर्म को त्याग कर ब्रह्मज्ञानी बनने वाले मनुष्य के विषय में वेद लिखता है कि—

ततो भूय इवते तमोय उ संभूत्यारताः।

यजु० ४० । ९

जो शुष्क आत्मा के ज्ञान में रत हैं वे उससे अधिकतर अज्ञान लक्षण तम में प्रवेश करते हैं।

वेदादि सच्छास्त्रों में वैदिक कर्म का बड़ा महत्व दिखलाया गया है अतएव इसका त्याग न करना चाहिये। याज्ञिक कर्म करते करते जब मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र हो जाता है तब वह उपासनाकाण्ड का अधिकारी बनता है। उपासनाकाण्ड को बतलानेवाली वेद में सोलह सहस्र श्रुतियां हैं वे उपासना से मन की चांचल्यवृत्ति का रुकना सिद्ध करती हुई उपासना

का उपदेश करती हैं। व्यासजी लिखते हैं कि उपासना में
प्रवेश करने वाले मनुष्य का प्रथम कर्तव्य यह है—

अर्चायामेव हरये श्रद्धया पर्युपासते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥

मूर्ति में जो श्रद्धापूर्वक हरि की उपासना करता है और हरि
के भक्तों में हरि की उपासना नहीं करता वह प्राकृतिक भक्त है।
यह उपासना का आरंभकाल है, इसके आगे आगे सीढ़ी दर
सीढ़ी उपासना बढ़ती जावेगी, विना उपासना के प्राणी की कभी
मोक्ष ही नहीं होती, मनुष्य उपासना करते करते जब उपासना
के शिखर पर पहुंचेगा तब उसका मन सारे संसार से खिंच
कर प्रभु में लग जावेगा और उस मन की चांचल्यता मारी
जावेगी, इतना होने पर वेदान्तदर्शन लिखता है कि—

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।

अब वह ब्रह्म के ज्ञान की इच्छा करेगा।

यद्यपि ज्ञानी ब्रह्मविद्या में लग कर ब्रह्म का ज्ञान और ब्रह्म
का अनुभव करता है इतना करने पर भी उपासना छूट नहीं
जाती, उपासना बराबर साथ साथ चलती रहेगी। कहां तक
चलेगी इस विषय में भगवान् वेदव्यास लिखते हैं कि—

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते।
तावदेवमुपासीत मनो वाक्कायवृत्तिभिः॥

जब तक समस्त भूत प्राणियों में और पंचतत्व में अमली
रूप से ब्रह्मभावना का उदय न हो तब तक मन वाणी और

शरीर से ईश्वर की उपासना करता रहे।

जब सच्ची अमली ब्रह्मभावना हो जाती है, ब्रह्म को छोड़ कर अन्य पदार्थ कभी मन में भी नहीं आता उस समय यह अभ्यासी ज्ञान का विद्वान् बन कर जीवन्मुक्त हो जाता है, उस समय में इसकी क्या दशा होती है इसके विवेक को शास्त्र कहता है कि—

भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे
मायामोहौ क्षयमधिगतौ नष्टसन्देहवृत्तेः।
शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्वावबोधं
नैस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः॥

भेद और अभेद ये दोनों ही नष्ट हो जाते हैं, पुण्य और पाप ये द्विविध कर्म क्षय हो जाते हैं, माया और मोह इनका नाश हो जाता है और सन्देहवृत्ति नाम को नहीं रहती। शब्द से परे त्रिगुणरहित तत्व ब्रह्म के ज्ञान को जब पा जाता है नैस्त्रैगुण्यमार्ग में विचरने वाले यति को विधि निषेध नहीं रहता।

इसी के लिये भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि अर्जुन! तू ऐसा ही बन।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

अर्जुन! वेद त्रिगुणात्मक विषयक हैं और तू तीनों गुणों से ऊपर निकल जा। कर्मबन्धन में पड़े हुये जीव के उपकारार्थ ईश्वर ने संसार को वेदज्ञान देकर कर्म, उपासना, ज्ञान के अनुष्ठान से जीव को ब्रह्म बनाने का मार्ग बतला दिया है। यह

जीव की परमोन्नति है किन्तु नास्तिकता के झोकों से घबराये हुये मनुष्य कहते है कि कर्मकाण्ड ने देश का सत्यानाश कर दिया, उपासना ने देश में मूर्खता फैला दी, ब्रह्मविज्ञान ने देश को आलसी और नामर्द कर दिया, इन तीनों काण्डों को संसार से मिटा कर तरक्की करो, यह आवाज आज भारतवर्ष के घर घर में भर गई है।

इस प्रकार से देश को उन्नति पर ले जाने वाले सज्जन यह भी कहने लगे हैं कि वेदों में मूर्तिपूजा का खंडन मिलता है, इसकी पुष्टि में एक मंत्र भी पबलिक के आगे रखते हैं, वह मंत्र यह है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है।

ठग लोग पीतल का अंगूठी छल्ला आदि आभूषण लेकर उसको बहुत साफ करते है फिर कुंकुम आदि घिस कर उस पर सुर्खी की चमक ले आते है ऐसा करके उस जेवर के ऊपर कागज लपेटते हैं फिर उत्तम रेशमी कपड़े में बांध कर शहर से मील डेढ़ मील के फासले पर जाकर सड़क पर डाल देते हैं और उसके आस पास घूमते रहते हैं जब किसी अक्ल के बुद्धू को जांच लेते हैं तब उसके साथ २ बातें करते चल देते हैं, चलते चलते जब जेवर के पास आते हैं तब ये उस दूसरे मनुष्य से कहते हैं कि यह क्या पड़ा है, इतना कह कर उठा लेते हैं,

उसको समझाते हैं कि किसी से कहना नहीं वरना यहां हथकड़ी पड़ जायंगी और हम तुम आधा २ बांट लेंगे, इतना समझा कर ये बांटने के लिये उस सड़क से कुछ दूर पर ले जाते हैं, वहां ले जाकर उसको अंदाजते हैं कि डेढ़ तोला का है तीस रुपये का हुआ, लाचारी यह है कि हमारे पास रुपया नहीं, नहीं तो हम आपको पन्द्रह रुपये दे देते, अब आप हमें रुपये दे दें और जेवर ले लें। अनेक बातें बना कर वह छल्ला उसको दे देते हैं और रुपये ठग कर रफूचक्कर होते हैं। वह साधारण मनुष्य जब अपने गांव में जाता है और जेवर को अन्य मनुष्यों को दिखलाता है, जब वे पीतल का बतला देते हैं सुनार की जांच होने पर सिद्ध हुई पीतल को देख कर वह रोने लगता है।

जिस प्रकार ये ठग कमाई का सार रुपये को छीन लेते हैं और वह यह समझ लेता है कि मैं ठगा गया उसी प्रकार आजकल लोग धर्म कर्म के नाश कर देने वाले ठगों से वेद मंत्र रूपी आभूषणों के लोभ से ठगे जाते हैं, इनको क्या मालूम कि यह मंत्र वेद का है या नहीं, इसका अर्थ मूर्तिपूजा का खंडन करता है या मंडन, ये बेचारे धोखे में आकर मूर्तिपूजा छोड़ बैठते हैं।

इस वेदमंत्र से जो मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं वे जान बूझ कर छल करते हैं हम प्रथम संपूर्ण मंत्र को कहते हैं और फिर उसके आगे विवेचन कहेंगे। मंत्र इस प्रकार है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

हिरण्यगर्भ इत्येषः मामाहि ऌ सी
दित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः ॥

यजु० अ० ३२ मं० ३

उस परमात्मा की तुल्यता नहीं है जो महत् यशवाला है,
जो 'हिरण्यगर्भ' इस श्रुति में वर्णित हुआ है। जिस परमात्मा
का वर्णन 'मामाहि ऌ सी' श्रुति कर रही है जो 'यस्मान्नजात'
इस श्रुति में वर्णित है।

प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति करना छल है क्योंकि मंत्र के
पद ईश्वर की मूर्ति ही सिद्ध करेंगे। मंत्र कहता है कि उसके
तुल्य कोई नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है, यदि हम यह
अर्थ करें कि उसकी मूर्ति नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है
तो महत् यशवाला यह हेतु विरुद्ध हेतु हो जाता है। संसार
में महत् यशवाले स्त्री पुरुषों की ही मूर्ति होती है भिखमंगों
की नहीं होती अतएव यह हेतु सिद्ध करता है कि ईश्वर के
तुल्य कोई नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है। उव्वट ने प्रतिमा
शब्द का अर्थ "न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचि-
द्विद्यते" लिखा है अर्थात् जिस ईश्वर की समतावाला कुछ या
कोई नहीं है। महीधर ने "प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तु
नास्ति" लिखा है अर्थात् ईश्वर से बराबरी करने वाली कोई
वस्तु नहीं है। शंकराचार्य ने भी "न तस्य प्रतिमा अस्तीति
ब्रह्मणोनुपमानत्वं दर्शयति" लिखा है जिसका भाषा यह होता
है कि ब्रह्म की उपमा रखनेवाला कोई पदार्थ नहीं है—यही वेद

मंत्र दिखा रहा है। मंत्र के उत्तरार्द्ध में तीन मंत्रों की प्रतीक है उन तीन में ईश्वर कैसा कहा गया है इसको सुनिये—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० १३।४

हिरण्यपुरुष रूप ब्रह्माण्ड में गर्भरूप से जो प्रजापति स्थित है वह हिरण्यगर्भ कहलाता है वह प्रजापति सर्व प्राणिजाति की उत्पत्ति से प्रथम स्वयं ब्रह्माण्ड शरीरी हुआ और उत्पन्न होने वाले जगत् का स्वामी हुआ वह प्रजापति अंतरिक्ष द्युलोक और भूमि को धारण किये हुये है उस प्रजापति की हम हवि से परिचर्या करते हैं।

मामाहिंसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवंसत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० अ० १२ मं० १०२

जो प्रजापति पृथ्वी का उत्पन्न करने वाला, जो सत्य धारण करने वाला द्युलोक को सृजन कर व्याप्त है और जो आदि पुरुष प्रथम शरीर जगत् का आह्लाद और तृप्ति साधक जल को उत्पन्न करता हुआ वा मनुष्यों का रचने वाला है वह

प्रजापति मुझे मत मारे उस प्रजापति के निमित्त हवि देते हैं।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराण
स्त्रीणि ज्योतिꣳषि स च ते स षोडशी॥

यजु० अ० ८ मं० ३६

जिस पुरुष से दूसरा कोई उत्कृष्ट नहीं प्रादुर्भूत हुआ है जो संपूर्ण लोकों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है वह षोडश-कलात्मक सब भूतों का आश्रय जगत् का स्वामी प्रजारूप से सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालन के निमित्त अग्नि वायु सूर्य लक्षणवाली तीन ज्योतियों को अपने तेज से उज्जीवन करता है।

हम पहिले बतला चुके हैं कि प्रतिमा का अर्थ तुल्यता है अब तीनों प्रतीक के मंत्रों का अभिप्राय यह है कि 'हिरण्यगर्भः' इस मंत्र में ईश्वर को शरीरी मूर्तिमान् बतलाया है। 'मामाहिꣳसी' इस मंत्र में ईश्वर को संसार की मूर्तियों में व्यापक बतला कर मूर्तिमान् सिद्ध कर उससे रक्षा की प्रार्थना की गई है। 'यस्मान्न जात' इस मंत्र में ईश्वर को व्यापक मूर्तिमान् बतला कर ईश्वर से उत्कृष्ट कोई भी नहीं यह दिखलाया है। जब तीनों ही मंत्रों में ईश्वर को मूर्तिमान् कह दिया तब ईश्वर को मूर्ति का निषेध करना पागलपन नहीं तो और क्या है। 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र में जो 'हिरण्यगर्भः' इसकी

प्रतीक दी है इस प्रतीक वाले मंत्र में ही मूर्तिपूजन करना लिखा है, इसके ऊपर जो कात्यायन कल्पसूत्र है वह यह है—

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोऽग्निः
स यजमानः स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै
हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतꣳहिरण्यममृतमग्निः
पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः १
उत्तानम्प्राञ्चꣳहिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भ इति।

कात्यायनकल्पसू० १७। ४। १३

"हिरण्यगर्भ." इस मंत्र के ऊपर शतपथ भी है उसको भी सुनिये—

अथ सामगायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय
तमेतादृशमेवापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् ॥ २२ ॥
ते अब्रुवन् उपतज्जानीत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं
दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमिच्छतेति
वा वतदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं दधामेति २३
ते चेतयमाना एतत् सामापश्यंस्तदगायंस्तस्मिन्वीर्य
मधुस्तथैवास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे
तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणि हि चित्राण्यग्नि
स्तमुपधाय न पुरस्तात्परीयान्नेन मायमग्निर्हि
न सदिति ॥ २४ ॥
अथ सर्पनामैरुपतिष्ठत इमे वै लोकाः सर्पाः।

श० ७। ४। १। २२–२५

जब देवताओं ने हिरण्यमय पुरुष को सुवर्णफलक के ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्णपुरुष चेतना से रहित शुष्कफलक की समान है। तब फिर सब बोले कि इस हिरण्यमय पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो। सब देवताओं ने इस बात का अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें वह देवता मीमांसा करते हुये तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचने०) इन तीन मंत्र रूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुये और इस तीन मंत्र रूप साम को गाया तब उस हिरण्यमय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रदायक शक्ति को स्थापन किया। इसी प्रकार यह यजमान भी इसी साम के बल से इस पुरुष में सामर्थ्य का विधान करता है तात्पर्य यह कि ऊपर के तीन मंत्र पढ़ने से इस रुक्म पुरुष में सामर्थ्य प्रकट होती है।

'जब शतपथ 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र के उत्तरार्द्ध में प्रतीक युक्त 'हिरण्यगर्भ' इस मंत्र से ईश्वर की मूर्ति बनाना और उस मूर्ति में चैतन्यता आना लिख रहा है तब फिर शत-पथ को मिथ्या ठहरा कर 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र से मूर्तिपूजन का निषेध कोई भी वेदज्ञाता आस्तिक मान नहीं सकता।

वेदों में यज्ञों का वर्णन है, इन यज्ञों में अग्नि, सूर्यादि देव-ताओं का पूजन है, इससे भिन्न ईश्वर प्रतिमाओं का पूजन भी वेद के सहस्रों मंत्रों में लिखा है उनमें से दो मंत्र आज मैं

श्रोताओं के आगे रखता हूं, श्रोता ध्यान से सुनें—

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि॥

अथर्व० का० १ अ० ३ मं० १

मैं बिजलीरूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूं, मैं गर्जनारूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूं, मैं पाषाणरूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूं जिस पाषाण से चोट लगती है।

इस मंत्र में ब्रह्म को सर्वस्वरूप मान कर प्रणाम किया गया है। नीचे के मंत्र में भगवान् भूतपति शंकर का पूजन है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

यजु० अ० ३ मं० ६०

हम तीन नेत्रों वाले रुद्र परमात्मा को पूजते हैं जो पुण्य-गंध से युक्त है, धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ाने वाला है जिस से कि उसकी कृपा से खरबूजे के तुल्य हम बंधन से छूटें अमृत से न छूटें।

मूर्तिपूजावलोकन।

वेद में मूर्तिपूजा का दिग्दर्शन हम करा चुके अब यह दिखलावेंगे कि केवल भारतवर्ष में ही सनातनधर्मी मूर्तिपूजा नहीं करते किन्तु भूतल के अनेक देशों में मूर्तिपूजा प्रचलित है, श्रोता ध्यान से सुनें।

अफ्रीका के प्राचीन 'इजिप्ट' (मिश्र) देश में 'असिरिस' और 'आइसिस' नाम के लिंग आज तक पूजे जाते हैं। शिव के तुल्य असिरिस के मस्तक में सर्प, हाथ में त्रिशूल एवं अंग में व्याघ्रचर्म का वस्त्र है 'एपिस' नाम वृषभ के ऊपर बैठे हैं। उक्त देश में एक बिल्व सदृश वृक्ष होता है इस वृक्ष के पत्र उस लिंग (मूर्ति) पर प्रतिदिन चढ़ाये जाते हैं, दूध से स्नान कराया जाता है। जिस प्रकार अपने देश में काशीधाम है इसी प्रकार वहां पर 'मेम्फिस' नामक प्रसिद्ध नगर है। उस देश में लिंग का बीजाक्षर 'ट' है, मूर्ति कृष्णवर्ण है, 'असिरिस' वृषभ एवं 'आइसिस' गौ रूप से स्थित है। उत्तर अफ्रीका की जितनी अरब जातियां हैं सब लिंग एवं शक्ति की ही पूजा करती हैं। यूरोप के 'ग्रीस' (यूनान) देश में लिंगपूजा अद्यावधि (आज तक) प्रचलित है, 'वेसक' और 'प्रियेसस' शिवजी के दो नाम हैं। 'एलिक्स' तथा 'कोरेंथ' में 'विनसन देवी' वा 'गौरी' की पूजा होती है। 'इफिसिस' देश में 'डायना' देवी की पूजा और 'इटली' के रोम नगर में अद्यापि लिंगपूजा प्रचलित है अर्थात् रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के क्रिश्चियन इटली में आज तक लिंग (मूर्ति) पूजते हैं। इंगलैंड, अंग्रेजों के इंगलैंड के भीतर 'योर्क' देश में 'स्टोनहैंज' नामक मन्दिर है। फर्मेनक में जो प्राचीन मन्दिर और पत्थर के खम्भे दीख पड़ते हैं उससे स्पष्ट ही प्रकट होता है कि यहां पूर्वकाल में शिव ही का मन्दिर था। 'आयर्लैण्ड' क्रूस्तान है तथापि

गिरजे के द्वार पर स्त्रीमूर्ति अब भी पूजी जाती है। स्काटलैंड के 'ग्लासगो' नगर में सूर्य मन्दिर के भीतर लिंगमूर्ति है जिस पर सुवर्णपत्र भी जटित हैं । फ्रांस वा फिरंग देश में सौभाग्य आयुर्वृद्धि एवं आरोग्य प्राप्ति के लिये स्त्रियाँ अब तक शक्ति के दर्शन करती हैं। अष्ट्रोक्षुण गिरि देश में ताम्रष्वेक नामक लिंग पूजा जाता है एवं नारवे स्वीडैन में भी लिंगपूजा होती है।

एशिया-रूम देशान्तर्गत 'असिरियावा सुरयानी देश' वा विलन नगर में तीन सौ घन हस्त परमित शिवलिंग है। शाम देश में 'एकोनिस' और 'एष्टर गेटिस' नाम के लिंग पुजे जाते हैं। अरब में मुहम्मद के जन्म से पहिले ही से लात, मनात, अल्लात, अलुजा, इन महादेव और देवियों की पूजा होती है। खास 'मक्का' में असवद व मक्केश्वर का लिंग चुम्बित होता है। मक्के के 'जमजम' कुयें में मूर्ति एवं नजरा में खजूर की पत्ती पूजी जाती है। भारतवर्ष के पूर्वीय द्वीप पुञ्ज सुमात्रा एवं यवद्वीप में लिंग-पूजा और महाभारतादि की ज्यों की त्यों लिंग कथा एवं अन्यान्य हिन्दू पुराणपाठ अद्यावधि वर्तमान हैं। फिनसिया देश में वाल नाम के सूर्य और देवी की पूजा होती है। फ्रोजियन देश में 'पेटिस' नाम का लिंग पूजा जाता है। निनिभा नगर में एशीरा नाम व विशाल लिंगमूर्ति विद्यमान है। यहूदिया देश में इसरायली व यहूदी लोगों की प्रतिष्ठित लिंगमूर्ति अब तक वर्तमान हैं, उन लोगों में लिंगमूर्ति स्पर्श करके शपथ खाने की प्रथा प्रचलित है, तौरेत प्रसिद्ध इब्राहीम के नौकर के लिंग स्पर्श की शपथ देते

है। याकूब जब अपने पिता की अस्थि लिये मिश्र को जाता था तब नौकर को यही लिंग स्पर्श कराया था और यहूदी राजा लोग भी यही लिंग पूज कर अदालत (कचहरी) करते थे। दाऊद जब बअल नामक मूर्ति लाते थे तब उसकी माइकेल नाम वाली स्त्री इस पर गुरु शालइल के पास उठ गई तब गुरु ने शाप दिया कि वंध्या हो जाय। जापान में बौद्ध धर्म प्रचलित होने पर भी लिंग पूजा जाता है, बौद्ध धर्म के ग्रंथ देखने से पुराणों की प्राचीनता और मूर्तिपूजा उत्तम भांति से सिद्ध हो जाती है। जापान के आइस नगर में सूर्य तथा लक्ष्मी के लिंग मूर्तियों की पूजा होती है। लंका सीलोन या सिंहलद्वीप में लिंग पूजा जाता है। आफरीदिस्थान स्वाद, चित्राल, काबुल, बलखबुखारा, काफरहाड़ आदि में चंचशेर पंचवीर आदि नामों से मूर्ति पूजी जाती है। ईरान में ज्वाला-मय लिंग की पूजा होती है। साइबेरिया ताशकन्द में शेवली-नियन जाति के मनुष्य लिंगपूजा करते हैं। ओशनियाँ मंडविच या हवाई टापू में किसी प्रकार का उपद्रव होने पर जैसे कि महामारी, हैजा, भूकम्प, दुर्भिक्ष, ज्वालामुखी फटने पर लिंग पूजा करते हैं, उनकी महारानी की मृत्यु हुये बहुत ही थोड़े दिन हुये अन्त्येष्टि क्रिया के पश्चात् समस्त देशवासियों ने मूर्तिपूजा की थी।

अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द के धर्मप्रचार एवं सनातन धर्म का झंडा खड़ा करने से प्रथम ही वहां पर लिंगपूजा

होती थी। दक्षिण अमेरिका में ब्रजिल देश में बहुत प्राचीन समय की शिव गणेश की मूर्तियां मिलती हैं। पेरू प्रदेश में मृत्तिका की मूर्तियां पूजी जाती हैं, यह पूजन बड़े उत्साह और समारोह के साथ होता है, यहां पर मृत्तिका के घंटों पर भी मूर्तियां बनी रहती हैं। अमेरिका के पेन्थूको नगर एवं होंडुरास देश में गोल सरल द्विमुख प्रस्तरलिंग अद्यावधि वर्तमान हैं। यूनाइटेड स्टेट के टेनसी नगर में एक बृहत् लिंगमूर्ति स्थित है। तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई भी देश नहीं कि जिसमें मूर्तिपूजा न होती हो, इन सब बातों को न जान कर आज मूर्ति का खंडन हो रहा है।

प्रमाणिकता।

जिस प्रकार संसार के समस्त देशों में मूर्तिपूजन पाया जाता है इसी प्रकार संसार के समस्त मज़हब मूर्तिपूजा का अवलंबन करते हैं। इसको इस प्रकार समझें कि प्रत्येक धर्म में एक धार्मिक ग्रंथ होता है जिसको उस धर्म के लोग अपने मज़हब का ईश्वरप्रणीत प्रमाणिक ग्रन्थ मानते हैं। जैसे मुसलमानों के यहां 'कुरान शरीफ' है, कुरान शरीफ क्या है ईश्वर का कौल है, कौल कहते हैं वाणी को, कुरान शरीफ ईश्वर के मुख से निकली हुई आज्ञाओं का समूह है। आज्ञा या वाणी मुख से निकलने वाली आवाज़ को कहते हैं, आवाज निराकार है, निराकार आवाज को जब तक साकार न बना लिया जाय, उसकी मूर्तियां कल्पित न करली जांय, तब तक पढ़ नहीं सकते

और जान नहीं सकते, बड़े बड़े आलिमों ने खुदा के ज्ञान कुरान शरीफ को मनुष्यों के समझाने के लिये एक तरीका निकाला। सब से पहिले शकल वाला कागज लिया, उस कागज पर मूर्तिमान् स्याही से मूर्तिमान् कलम के द्वारा मूर्तिमान् मनुष्य ने खुदा के कौल को मूर्तिरूप हरूफ लिखे, फिर उस कापी पर मूर्तिवाला मसाला लगा कर डेढ़ हाथ लंबे और हाथ भर चौड़े मूर्तिमान् पत्थर पर जमा दिया, मूर्तिमान् चाकू लेकर मूर्तिमान् अक्षरों की गलतियां निकालीं, इसके बाद उस मूर्तिमान् पत्थर को मूर्तिमान् प्रेस पर चढ़ा दिया, एक मूर्तिमान् मनुष्य ने मूर्तिमान् बेलन से मूर्तिमान् स्याही का लगाना आरंभ किया, दूसरे मनुष्य ने मूर्तिमान् प्रेस में मूर्तिमान् निशान लगा कर मूर्तिमान् कागज पर धड़ाधड़ हरूफरूपी मूर्तियां छापनी आरंभ कीं। छपने के बाद मूर्तिमान् मनुष्य ने मूर्तिमान् कागज को भांज कर मूर्तिमान् सुई डोरे से सीं दिया। उस मूर्तिमान् किताब को कटिंग मशीन पर चढ़ा कर तीन तरफ से काटा, अब कुरान शरीफ़ बनी। यह कुरान शरीफ क्या है निराकार आवाज की नकली हरूफरूपी मूर्तियों का खजाना है। मुसलमान इसकी इज्जत करते हैं, यदि इसका अपमान हो जाय तो मुसलमान तोबा करते हैं, दूसरे मज़हब वाले इस पुस्तक का अपमान कर दें तो मुसलमान खून की नदियां बहाने को तैयार हैं। कौन कहता है कि यह मूर्तिपूजा नहीं है? केवल मुसलमान ही ईश्वर की निराकार आवाज की मूर्तियां नहीं बनाते

किन्तु संसार के समस्त ही मज़हब बनाते हैं, इस कारण दुनियां में जितने मज़हब हैं वे सब मूर्तिपूजक है।

आर्यसमाज।

कई एक मनुष्य यह समझते हैं कि आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है। यह उनका भ्रम है। आर्यसमाज अनेक मूर्तियों को पूजता है इसका विवरण हम सुनाते हैं, आप लोग सुनने की कृपा करें-

एक समय रोपड़ सनातनधर्म सभा का उत्सव था, उसमें हम और महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी गये थे। प्रातःकाल हमको एक घोड़ागाड़ी दी गई उस पर सवार होकर हम शतद्रु के स्नान को चले गये। स्नान करके जब लौटे तो एक चमारों का बाजार पड़ा, जिस बाजार में दोनों तरफ अनेक दुकानों में चमार जूता बना रहे थे। महामहोपाध्यायजी ने हम से कहा कि कुछ तमाशा देखा? हमने कहा कुछ नहीं देखा। महामहोपाध्यायजी ने बतलाया कि प्रत्येक चमार की दुकान पर स्वामी दयानन्दजी का फोटू रक्खा है। हम गाड़ी से उतरे और देखा कि सच ही प्रत्येक दुकान पर स्वामी दयानन्दजी का फोटू रक्खा है, इसको देख कर हमने कहा कि वाह महाराज! जहां के योग्य थे वहां ही आ विराजे। फोटू का रखना और फोटू के जरिये से फोटू वाले का यशगान करना निःसन्देह मूर्ति पूजा है, फिर कौन कहता है कि आर्यसमाजी मूर्ति नहीं पूजते।

बहुत दिन का समय हुआ दानापुर आर्य्यसमाज का उत्सव था उस समय सनातनधर्म सभा दानापुर ने विद्यानिधि

पं० गणेशदत्तजी वाजपेयी और विद्यारत्न पं० कन्हैयालालजी शर्मा को बुलाया था मुझे भी बुला लिया था। मैं दानापुर घूमने के लिये निकला, आर्यसमाज का नगरकीर्तन हो रहा था, एक भजनोपदेशक टोपी में पीतल का 'ओंकार' लगाये भजन गा रहा था। जब उसने गान बन्द किया तब मैंने पूछा कि आपकी टोपी में क्या लगा है ? उसने टोपी को उतारा और रूमाल से पोंछ कर हमसे कहा क्या लगा है कुछ नहीं। हमने कहा और कुछ नहीं लगा किन्तु यह पीतल का चिन्ह जो आपने टोपी में लगा रक्खा है यह क्या है ? इसको सुन कर वह बोला कि यह 'ॐ' है। हमने पूछा 'ॐ' क्या होता है ? वह भजनोपदेशक हमसे बोला कि तुम कौन हो हिन्दू या मुसलमान जो 'ॐ' को भी नहीं जानते, ईश्वर के जितने भी नाम हैं उन सब में ईश्वर का यह 'ॐ' नाम श्रेष्ठ गिना जाता है। हमने कहा कि ईश्वर के नाम 'ॐ' का क्या होता है ? इसने उत्तर दिया जप होता है 'ॐ' 'ॐ' कह कर जपा जाता है। हमने कहा कि हमतो इसको न जप सकेंगे। उसने कहा क्यों, हमने उत्तर दिया कि यह जो इसकी लंबी नोक बायें को चली गई है यह हमारे गले में धँस कर गले का काट कर देगी। यह सुन कर भजनोपदेशक बोला कि तुम बड़े पागल मालूम होते हो, क्या यह पीतल का ॐ गले में धँसाया जायगा। हमने कहा तो फिर जप कैसे होगा। उसने समझाया कि ॐ ईश्वर का नाम है और वह नाम निराकार है, उसका जप किया जाता है उसी ॐ की पीतल की

शकल बना कर हमने यह टोपी में लगाई है। इसको सुन कर हमने कहा कि तब तो आप बड़े सामर्थ्य वाले हो, ईश्वर के निराकार नाम ॐ की मूर्ति बना लेते हो, फिर आप मूर्तिपूजन का खंडन कैसे करोगे, निराकार की मूर्ति तो तुम भी बनाते हो, अन्तर केवल इतना है कि तुमने निराकार ईश्वर के नाम की मूर्ति बनाई और हमने निराकार ईश्वर के नाम और रूप दोनों की ही मूर्ति बनाई हैं, दोनों मूर्तिपूजक। जो संप्रदाय ईश्वर के निराकार नाम की मूर्ति बना कर उसको आदर देता है फिर कौन कह सकता है कि वह मूर्तिपूजक नहीं है।

आर्यसमाज की संध्या में 'मनसा परिक्रमा' लिखी है, प्रथम तो ऊपर लिखा है कि "अथ मनसा परिक्रमा मंत्राः" इस हेडिंग के बाद नीचे "प्राचीदिकग्निरधिपतिः" इत्यादि वेद के ६ मंत्र परिक्रमा करने के लिखे हैं, जिन मंत्रों से हमारे समाजी भाई नित्य प्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं। मन से ईश्वर की परिक्रमा करना तब ही हो सकती है जब कि ईश्वर की मूर्ति कायम कर ली जावे, मूर्ति कायम करके उसके चारो तरफ घूमना निःसन्देह मूर्तिपूजन है क्योंकि बिना स्वरूप शरीर या मूर्ति के परिक्रमा हो ही नहीं सकती। हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्ति नित्यप्रति बनानी पड़ती है, यह बात दूसरी है कि सनातनधर्मी चार अंगुल या बिलस्त भर की मूर्ति बनाते हों और आर्यसमाजी भाई सौ दो सौ मील लंबी या पचास साठ मील चौड़ी बनाते हों परन्तु

बिना मूर्ति के इनकी संध्या हो ही नहीं सकती। जब ये रोजाना संध्या करते हुये संध्या में ईश्वर की परिक्रमा करते हैं तब क्या कोई भी विचारशील मनुष्य यह कह सकता है कि ये मूर्ति नहीं पूजते।

पंचमहायज्ञविधि के बलिवैश्वदेव प्रकरण में लिखा है कि—

ॐ सानुगायेन्द्राय नमः। ॐ सानुगाय यमाय नमः। ॐ सानुगाय वरुणाय नमः। ॐ सानुगाय सोमाय नमः। ॐ मरुद्भ्यो नमः।

इन मंत्रों को बोल बोल कर भोजन की बलि रक्खी जाती है, इस बलि रखने को ही भोग लगाना कहते है। आर्यसमाज के मत में ऊपर के मंत्रों में आये हुये नाम ईश्वर के नाम हैं। जब आर्यसमाज निराकार ईश्वर को उसको खाने के लिये मंत्रों से बलि रखता है फिर कौन कह सकता है कि आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है।

इसी पंचमहायज्ञविधि में 'ॐ वास्तुस्पतये नमः' इस मंत्र से मकान के देवता का भोग रक्खा जाता है फिर 'ॐ भद्र-काल्यै नमः' इस मंत्र को पढ़ कर दुर्गा के नाम की बलि रक्खी जाती है। इसके आगे 'ॐ वनस्पतिभ्यो नमः' इस मंत्र को पढ़ कर ओखली मूसल के आगे बलि रक्खी जाती है। जो सोसाइटी ओखली मूसल को खाने के लिये भोग रक्खे फिर कौन कह सकता है कि वह सोसाइटी मूर्तिपूजक नहीं है।

आर्याभिविनय में लिखा है—

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधं हविः।

हे जगदीश्वर ! आप आओ यह सोमादि समस्त रस आपके लिये बहुत उत्तम रीति से तैयार किया है सर्वात्मा से आप इनका पान करो।

यहां पर आर्यसमाज ने निराकार ईश्वर को गुर्च के अर्क का भोग लगाया है। भोग आर्यसमाज भी लगाता है और हम भी लगाते हैं, अन्तर केवल इतना है कि हम लड्डू पेड़ा जलेबी खीर साग पूरी दाल भात रोटी का भोग लगाते हैं और आर्य-समाज गिलोय के अर्क का भोग लगाता है। संसार में हम देखते हैं कि तपेदिक के बीमार को गुर्च का अर्क पिलाया जाता है संभव है आर्यसमाजी-ईश्वर को तपेदिक हो गया हो और इसी कारण से ये गुर्च का भोग लगाते हैं। कहीं ऐसा न हो कि इस तपेदिक वाले ईश्वर का सनातनधर्मियों के ईश्वर के साथ विवाद ठन जावे, यह तो बेचारा तपेदिक में बीमार है और सनातनधर्मियों का ईश्वर लड्डू पेड़ा हलुआ रबड़ी दूध खाकर पहलवान बन गया है यदि दोनों में कुश्ती चल गई और इस सनातनधर्म के पहलवान ईश्वर ने तपेदिक वाले ईश्वर के पेट पर पैर रख दिया तब तो बड़ी मुश्किल हुई, एक ही पैर के रखने से इस बीमार ईश्वर का राम नाम सत्य हो जावेगा और आर्यसमाज को बिना ईश्वर रहना पड़ेगा।

एक वार आर्यसमाज के साथ सनातनधर्म का शास्त्रार्थ ठना, सनातनधर्म की तरफ से यही मंत्र मूर्तिपूजा में हमने रक्खा, स्वा० पूर्णानन्द ने बहुत चाहा कि हम किसी तरह से इस मंत्र के पेंच से निकल आवें किन्तु हमने निकलने नहीं दिया। अन्त में आर्यसमाज शास्त्रार्थ हार गया। गुर्च के अर्क का भोग लगाने वाला आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है इसको कोई भी मनुष्य किसी समय भी सिद्ध नहीं कर सकता।

आर्यसमाज के मत में लकड़ी का पटेला (पहटा) जिससे खेत की मिट्टी एक सी की जाती है पूजनीय वस्तु है। स्वा० दयानन्दजी लिखते हैं कि—

घृतेन सीता मधुना समज्यतां
विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना
स्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥

य० १२।७०

सब अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् मनुष्यों की आज्ञा से प्राप्त हुआ जल वा दुग्ध से पराक्रम संबंधी सींचा वा सेवन किया हुआ पटेला घी तथा शहद वा शक्कर आदि से संयुक्त करो, पटेला हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा, इस हेतु से जल से वार वार वर्ताओ।

जब पटेले के ऊपर जल घी दुध शक्कर शहद चढ़ाया जाता है तब यह पटेले का पूजन नहीं तो और क्या बलाय है। जो

सोसाइटी लकड़ी के पटेले का पूजन करे और वह फिर मूर्ति पूजन से डरे तो यह उसकी भूल नहीं तो और क्या है।

संस्कारविधि में कुशा (दर्भ) से प्रार्थना की जाती है; इसका विवेचन इस प्रकार है—

ॐ ओषधे त्रायस्वैनꣳमैनꣳहिꣳसीः।

इसका अर्थ यह है कि भो ओषधे एनं बालं त्रायस्व एनं मा हिंसीः। हे ओषधि कुश! इस बालक की रक्षा कर इसको मत मार।

कुशा तृण है, तृण से जीवन की प्रार्थना करना निःसन्देह यह मूर्तिपूजा है।

चूड़ा प्रकरण में समाज नाई के छुरे को भी पूजता है इसका विवरण इस प्रकार है कि—

ओं विष्णोर्दꣳष्ट्रोसि।

इसका भावार्थ यह है कि हे छुरे तू विष्णु की दाढ़ है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि इनके मत में विष्णु तो निराकार और उस निराकार विष्णु के चार चार अंगुल की दाढ़ तथा तरक्की के जमाने में विष्णु की दाढ़ भी तरक्की कर गई। देशी छुरा तो चार ही अंगुल का होता था किन्तु अब विलायती छुरा आठ २ अंगुल का आता है, अब कुछ दिन से इनके निराकार ईश्वर की आठ आठ अंगुल की दाढ़ हो गई जिसके इतनी बड़ी बड़ी दाढ़ हो और वह सर्वथा निराकार रहे, इस बात को कोई भी विचारशील मान नहीं सकता। हम कैसे मान लें कि छुरा

निराकार ईश्वर की दाढ़ है। कोई माने या न माने आर्यसमाजियों को तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि उनकी धर्मपुस्तक में लिखा है।

आगे चल कर संस्कारविधि में लिखा है कि—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते
पिता नमस्ते मामाहिंऽसीः।

इसका भाषा यह है कि हे तेज धार वाले छुरे! शिव तेरा पिता है और मैं तुझे नमस्ते करता हूं तू मत मार।

इस मंत्र में छुरे को नमस्ते करना लिखा है। जड़ पदार्थों को प्रणाम करना क्या मूर्तिपूजा नहीं है। आगे चलकर संस्कार विधि में लिखा है कि—

ओं स्वधिते मैनऽहिंऽसीः।

संवत् १९३२ की संस्कारविधि में स्वामी दयानन्दजी ने इस मंत्र का भाषा लिखा था कि हे तेजधार वाले छुरे! तू इस बच्चे को मत मार। स्वा० दयानन्दजी के स्वर्गवास होने के पश्चात् आर्यसमाज ने यह समझा कि इस भाषा टीका से तो साधारण मनुष्य भी छुरे से प्रार्थना करनी समझ जावेगा अतएव फिर यह भाषाटीका संस्कारविधि से निकाल दिया गया। चाहे निकाल दें और चाहे रख लें अर्थ मंत्र का यही होगा जो स्वा० दयानन्दजी ने लिखा था। छुरे से यह प्रार्थना करना कि तू इस बच्चे को मत मार निःसन्देह मूर्तिपूजा है फिर कौन कहता है कि आर्यसमाज मूर्तिपूजक नहीं है। हमने एक दिन

एक मनुष्य से एक कविता सुनी थी वह यह है—

देवमूर्ति कभी न पूजैं पूजैं छुरा जो नाइयों का।
अजब हाल संस्कारविधिमें आर्यसमाजी भाइयों का॥

हमने आर्यसमाज के ग्रंथों से कई प्रकार का मूर्तिपूजन दिखलाया, हमारी यह इच्छा है कि आर्यसमाज स्वा० दयानन्द लिखित मूर्तिपूजा करे किन्तु जमाने के चक्कर में पड़ कर आर्यसमाज ने स्वामी दयानन्द लिखित मूर्तिपूजन को छोड़ दिया यह आर्यसमाज ने भूल की है। जिस प्रकार सनातनधर्मियों को मनु, व्यासादि ऋषियों के लेख प्रमाण हैं तथा जिस प्रकार ईसाई और मुसलमान हजरत मसीह तथा हजरत मोहम्मद का सन्मान करते हैं उसी प्रकार आर्यसमाजियों को स्वा० दयानन्दजी के लेख का सन्मान करना चाहिये था किन्तु ऐसा न करते हुये आजकल के आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द के लेख से कोशों दूर भाग रहे हैं इसका कारण सिवाय 'धां' रोग के दूसरा कोई कारण समझ में नहीं आता। हम प्रसंग से 'धां' रोग को आपके आगे रखते हैं, समझिये—

एक मनुष्य अंधेरी रात में लकड़ियों की भरी हुई गाड़ी को हांकता हुआ अपने घर को ला रहा था। जब वह गाड़ी शहर के अन्दर धंसी तो वहां पर सड़क में एक लड़का सो रहा था, रात्रि अंधेरी होने के कारण गाड़ीवान को वह लड़का न दीखा उसके ऊपर से गाड़ी का पहिया निकल गया और लड़का मर गया। पहरे पर खड़ा हुआ पुलिस का एक कानि-

स्टेबिल इस घटना को देख रहा था, उसने गाड़ी और गाड़ी-
वान को गिरफ्तार कर चालान कर दिया। इसकी खबर गाड़ी-
वान के घर वालों को लगी, वे घबराये हुये एक सुप्रसिद्ध
प्रवीण वकील के यहां गये और वकील साहब को समस्त
वृत्तान्त कह कर सुनाया। वकील साहब ने कुछ विचार के
बाद कहा कि हम इसको साफ छुड़वा देंगे, किन्तु रुपया दश
हजार लेंगे। इन लोगों ने इतना रुपया देना स्वीकार किया। ये
मालदार थे और व्यवहार के सच्चे थे, इनका अनुभव वकील
साहब स्वतः कर चुके थे इस कारण वकील साहब ने जमानत
की कोई आवश्यकता न समझी, मामला पक्का हो गया। वकील
साहब अपराधी से मिले और कहने लगे कि तुमसे पुलिस या
अदालत कोई कुछ भी पूछे तो तुम 'बां' कहना, 'बां' को छोड़
कर और कुछ न कहना, यदि तुमने 'बां' के सिवाय और कुछ न
कहा तो फिर हम तुमको साफ छुड़वा देंगे और यदि तुमने किसी
बात का भी कुछ जवाब दे दिया तो फिर तुम फांसी पर लटक
जाओगे। अपने वकील के इस कथन को सुन कर अपराधी ने
कहा कि हम 'बां' को छोड़ कर और कुछ नहीं कहेंगे। पुलिस ने
'बां' से हार मान कर अपराधी को अदालत भेज दिया। इस
'बां' के मारे छोटी अदालत का भी नाक में दम हो गया। उसने
अपराधी को जजी भेज दिया। जिस समय यह अपराधी साहब
जज के यहां लाया गया तो साहब जज ने पूछा कि तुम्हारा नाम
क्या है? इसने उत्तर में कहा कि 'बां'। साहब जज ने फिर पूछा

कि तुम्हारे बाप का क्या नाम है ? इसने कहा कि 'बां' । साहब जज ने इससे कहा कि तुम्हारा नाम तो हमने 'बां' लिख लिया किन्तु तुम अब अपने बाप का नाम बतलाओ ? इसने फिर कहा कि 'बां' । साहब ने बाप का नाम भी 'बां' लिख लिया । फिर पूछा तुम्हारी उम्र क्या ? इसने फिर उत्तर दिया कि 'बां' । साहब जज ने वकीलों से पूछा कि 'बां' क्या होती है ? वकीलों ने कहा हजूर हम क्या जानें क्या होती है । जज साहब ने समझा कि इसका दिमाग ठिकाने नहीं, पुलिस के कानिस्टेबिलों से कहा कि इसको हवा खिलाओ । दो तीन बार हवा खिलाई गई किन्तु फिर जब इससे पूछा गया कि तुम्हारा नाम क्या है ? इसने फिर वही उत्तर दिया कि 'बां' । जज के नाक में दम होगई । अन्त में इसके वकील से पूछा कि यह 'बां' क्या है ? वकील ने उत्तर दिया कि हजूर जब यह डेढ़ वर्ष का था तब यह जंगल को चला गया इसके यहां भेड़ बकरियां पाली जाती हैं और वे सर्वदा जंगल में रहती हैं वहां पर ही यह रहता रहा, इसके साथ मनुष्य का संसर्ग न हुआ, यह भेड़ बकरियों की बोली सीख गया, उत्तम रीति से तो इसको आई नहीं केवल 'बां' सीख गया, जब यह गाड़ी हांकता आता था तब 'बां' 'बां' करता आता था, सड़क पर सोते हुये लड़के ने 'बां' का मतलब नहीं समझा वह वहीं पड़ा रहा और गाड़ी से दब कर मर गया, इसमें इसका तनक भी अपराध नहीं, उस समय यदि यह 'बां' 'बां' न करता तो यह अपराधी था ।

वकील का कथन जज को सत्य मालूम दिया इस कारण जज ने इसको निरपराधी समझ कतई साफ छोड़ दिया। सायंकाल यह मुकद्दमा फैसल हुआ, रात को मारे दश हजार की खुशी के वकील साहब को नींद न आई। प्रातःकाल होते ही फिटन पर सवार हो वकील साहब इसके घर पहुंचे, आसपास के कुछ सज्जन आकर वकील साहब से मिले, कुर्सियां डाल दी गईं, वकील साहब प्रभृति सब लोग बैठ गये, वकील साहब की प्रशंसा करने लगे कि आपने किस युक्ति से और कैसा साफ छुड़वाया है कि न तो एक पैसा जुर्माना हुआ और न एक दिन की सजा। वकील साहब बोले यह तो सब कुछ हुआ अब आप लोग दशहजार रुपये मेहनताने के और पांच हजार शुकराने के दिलवावें। लोगों ने कहा लीजिये आप का आसामी पाखाने गया है उसको आ जाने दीजिये। ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में वे हजरत भी लोटा हाथ में लिये आ गये। वकील साहब ने इसको देख कर कहा कि जल्दी कीजिये हमको काम बहुत जरूरी है और शीघ्र जाना है, दश हजार रुपये मेहनताने के और पांच हजार शुकराने के दीजिये। वकील के इस कहने को सुन कर ये हज़रत बोले कि 'वां'। वकील साहब ने कहा 'वां-वां' मत करो रुपये निकाल कर लाओ। इसको सुन-कर यह हज़रत बड़े जोर के साथ बोला कि 'वाँ'। वकील साहब 'वां' के चक्कर में पड़ गये और घबरा गये। अन्त में सोच समझ कर बोले कि हमारी सिखलाई हुई 'वां' को लेकर

हमारे उस्ताद मत बनो, रुपये लाओ। यह इसको सुन कर भी बोला कि 'बां'। वकील साहब अनेक बातें बनाते हैं किन्तु यह 'बां' के सिवाय कुछ उत्तर नहीं देता। जब 'बां' के मारे सब घबरा गये तब दो चार मनुष्य उठे और इसको अलहदा ले जाकर समझाने लगे कि देखो वकील साहब ने तुम्हारी जान बचाई है इनके तुम रुपये दे दो और यह 'बां' का झगड़ा इनके साथ मत लगाओ। यह बोला कि तुम सब बड़े बेवकूफ हो, जिस 'बां' ने हमारी जान बचाई है क्या वह दश पंद्रह हजार रुपये नहीं बचा सकती। सभी मनुष्य लाचार होगये और हार कर वकील साहब अपने घर को चले गये।

यह एक दृष्टान्त है, इसमें वकील साहब ने इसको 'बां' इस कारण सिखलाई थी कि उस 'बां' के सहारे से इस वकील को कुछ फायदा हो जावेगा किन्तु यह इतना उस्ताद निकला कि इसने वकील साहब के कथन पर भी 'बां' कर दी। हूबहू यही हाल आर्यसमाजियों का है। स्वामी दयानन्दजी ने इनको सिखलाया कि ईश्वर का अवतार मत मानो, मूर्तिपूजा और श्राद्ध मत मानो, जात पांत चौका चूल्हा सब के लिये 'बां' करो पर ये इतने उस्ताद निकले कि सबको 'बां' करते हुये स्वामी दयानन्द के लेख पर भी 'बां' करने लगे कि यह भी झूठा है हम इसको भी नहीं मानते। 'बां' का रोग बुरा है, आगे चल कर यह बड़े बड़े रंग दिखलावेगा इस कारण धार्मिक पुरुषों से प्रार्थना है कि वे इस 'बां' के रोग को रोकें, यदि

इसका प्रवाह इसी प्रकार चलता रहा और इसमें रोक टोक न की गई तो कुछ दिन में यह 'बां' मनुष्यों को धर्म कर्म हीन करके पशुधर्म में ले जावेगी अतएव इसका रोकना आवश्यकीय है।

श्रोतागण! प्रथम मैंने यह सिद्ध किया कि हिन्दूशास्त्र में मूर्तिपूजन मोक्ष का हेतु बतलाया गया है, इसके पश्चात् मैंने इसका विवेचन किया कि वेद में मूर्तिपूजा का निषेध नहीं है वरन् विधान है, फिर यह दिखलाया कि संसार के सभी देशों में भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्तियां पूजी जाती हैं, इसके पश्चात् यह भी दिखलाया कि संसार के समस्त मजहब निराकार की मूर्ति बना कर संसार में अपने पवित्र ज्ञान को फैला सकते हैं, अंत में कई एक लोगों का यह भ्रम दूर किया गया कि आर्य-समाज मूर्तिपूजक नहीं है। मुझ में जहां तक ईश्वर ने बुद्धि और बल दिया है उसके जरिये से समझाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी इतने पर भी जो मनुष्य मूर्तिपूजन को बुरा समझता है वह न करे किन्तु यह कह देना कि सनातनधर्म ही मूर्ति पूजता है नितान्त चण्डूखाने की गप्प है। मैंने जो कुछ समझाया श्रोता इस पर मनन और निदिध्यासन करें। अब मैं आज के इस व्याख्यान को यहां पर ही अवसान देता हूँ। एक बार बड़े प्रेम के साथ बोलिये श्रीसनाधर्म की जय।

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

प्रतिमा पूजन

जयन्ति वाणासुरमौलिलालिता
दशास्यचूड़ामणिचक्रचुम्बिता।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो
भवच्छिदे त्र्यम्बकपादपांसवः ॥१॥

धन वृन्दावन धाम है, धन वृन्दावन नाम।
धन वृन्दावन रसिकजन, सुमिरत राधेश्याम ॥
वृन्दावन जे बास कर, साग पात नित खात।
तिनके भागन को निरखि, ब्रह्मादिक ललचात ॥३॥

आजकल धार्मिक सिद्धान्तों के मार डालने का समय आ गया है, प्रत्येक मनुष्य चाहे कुछ पढ़ा हो या न पढ़ा हो मूर्तिपूजा के खंडन करने को प्रत्येक समय तैयार रहता है, आश्चर्य यह है कि मूर्तिपूजा का खंडन भी करते हैं और मूर्तिपूजन को मानते भी जाते हैं, इस विषय पर हम आप को अपनी बीती एक बात सुनाते हैं।

दैवयोग से हमारे यहां एक ब्रह्मज्ञानी खंडन-प्रवीण मनुष्य तैयार हो गया, वह रात दिन जब देखो तब मूर्तिपूजा का खंडन

करता ही दीख पड़ता था। कई एक सज्जनों ने हम से कहा कि यह अच्छा खंडनबाज पैदा हुआ जो रात दिन मूर्ति का ही खंडन करता रहता है। हमने यह सुन कर कहा अच्छा किसी समय देखा जायगा। एक दिन हमको एक रुपये के पैसों की आवश्यकता थी हम पैसे लेने को उसी की दूकान पर गये, उसने हमको एक रुपये के पैसे दिये हमने उसके आगे रुपया फेंक दिया और रुपया फेंक कर चल दिये। उसने रुपया उठाया और उठा करके हमारे पीछे दौड़ा, आवाज दी कि पंडितजी! पंडितजी!! खड़े रहिये, हम खड़े हो गये। उससे पूछा क्या है? उसने कहा आपका रुपया खराब है। वह रुपया हमारा तो देखा ही हुआ था ओर जान बूझ कर उसको दिया था, हमने पूछा क्या खराब है? उसने कहा यह चल नहीं सकता। हमने कहा कि जब यह चांदी का है और आवाज भी अच्छी देता है तथा सरकारी सिक्के का ढला हुआ है तब यह क्यों नहीं चल सकेगा? इसमें पेच क्या है? वह बोला यह चलने लायक नहीं है। हमने कहा तो खराबी क्या है? बड़ी देर तक इसी पर बहस होती रही। इस बहस को सुन कर दश बीस मनुष्य जमा हो गये। अन्त में वह बोला कि और तो सब ठीक है मगर इसके एक तरफ जो विक्टोरिया की मूर्ति है वह बिल्कुल घिस गई है। हमने कहा यह रुपया तो हम तुम्हीं को देंगे, जब तुम हरदम मूर्ति का खंडन करते रहते हो और मूर्ति को बिल्कुल नहीं मानते फिर अब रुपये में मूर्ति क्यों टटोलते हो? हम इतना

कह कर फिर चल दिये। फिर वह पीछे दौड़ा। आकर बोला कि यह रुपया ले लीजिये और दूसरा बदल दीजिये, हम अपना कान पकड़ते हैं आज से मूर्ति का खंडन नहीं करेंगे। कैसी मजे की रही, ईश्वर की मूर्ति को तो मानते नहीं किन्तु रुपये की मूर्ति को मानते हैं।

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र और हम अपने स्थान से उठ कर इलाहाबाद में नुमायश स्थान में जा रहे थे। जब नुमायश स्थान चार फर्लाङ्ग रह गया तब हमको बटाला निवासी स्वा० पूर्णानन्दजी मिले, ये नुमायश से आ रहे थे, इनके हाथ में चौखटा जड़ी हुई एक उत्तम फोटू थी। हमने पूछा कि स्वामीजी क्या लाये? उन्होंने कहा एक तस्वीर लाये हैं, लीजिये, देखिये। हमने उसको देखा और पूछा कि कितने में मिली? स्वामीजी ने कहा इसकी कीमत बीस आना देनी पड़ी। हमने कहा बीस आने नाहक डाल दिये, अच्छी नहीं। इसको सुन कर स्वामीजी बोले आप तसवीरों के रूप परखने में अनभिज्ञ हैं, यह इतनी बढ़िया तसवीर है कि इसकी एक आंख पर बीस हजार रुपया न्योछावर कर दिया जाय तो वह भी कम है। हमने कहा हम वास्तव में इस गुण को नहीं जानते। क्या मजे की बात है, रमणियों की तसवीरें देखें, मोल खरीदें, उनकी प्रशंसा करें, इतने पर भी मूर्ति का खंडन करें यह तअज्जुब नहीं तो क्या है।

एक समय हम कानपुर आर्यसमाज के उत्सव में चले गये,

आर्यसमाज ने पिण्डाल अच्छा सजाया था। उस पिण्डाल में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, स्वामी दयानन्द, लेखराम, मुंशीराम, नित्यानन्द, दर्शनानंदादि की मूर्तियां भी खम्भों पर सजी हुई थीं, दैवयोग से उस समय व्याख्यानदाता मूर्तिपूजा का ही खंडन कर रहा था। हमने अपने एक मित्र आर्यसमाजी से कहा कि मूर्तिपूजा का खंडन हो रहा है ? उसने कहा हां पंडितजी। फिर हमने उससे कहा कि तो ये जो तस्वीरें सजाई गई हैं जिनके ऊपर फूलों के गजरे लटकते हैं इनको उतार कर फैंको। उसने जवाब दिया कि ये तस्वीरें तो ऐसे महानुभावों की हैं जो सर्वदा हमारी भलाई का विचार करते रहे हैं, इनकी तस्वीरों को तो मानना ही पड़ेगा। हमने कहा ये तुम्हारी भलाई करते रहे इस कारण इनके चित्रपटों का आपने सम्मान किया ? उसने कहा जी हां। हमने कहा ईश्वर तुम्हारी भलाई करता है या बुराई ? उसने कहा ईश्वर तो सभी की भलाई करता है। हमने कहा तो फिर उसकी तस्वीर यहां पर क्यों नहीं सजाई गई ? यह सुन कर आर्यसमाजी बोला कि बस तुमको यही आता है, जहां देखो वहां पर ही मूर्तिपूजा सूझती है, हम ईश्वर की मूर्तिपूजा नहीं मानते। कितनी मूर्खता की बात है, मनुष्यों की फोटू उतार कर और संगमरमर की मूर्ति बना कर उसका तो सन्मान करें और ईश्वर की मूर्ति के सन्मान में इज्जत ठान बैठें।

एक दिन हम अपने एक आर्यसमाजी मित्र के यहां कुछ

काम से गये, यह देवता उस समय साबुन से मुख धो रहे थे, हम बैठ गये। इन्होंने खूब साबुन लगा रगड़ रगड़ कर मुख धोया, फिर शिर के केशों में सुगन्धित तेल लगाया, बाद में मुख के ऊपर वाशलीन लगाई, वस्त्र पहिने, फिर शीशा देखने लगे। हमने इनसे कहा कि आर्यसमाजी अपने सिद्धान्त के पक्के नहीं होते, कहने के लिये तो ये कह देते हैं कि मूर्तिपूजा जाहिलों का काम है और मूर्तिपूजा से पूजक नरक को जाता है किन्तु छिप छिप कर सब मूर्तिपूजा करते हैं। आज हमने आपको ही देख लिया— आपने साबुन लगाया, तेल लगाया, मुख पर वाशलीन मला, फिर पान खाया, बाद में शीशा देखा, आपने परिश्रम से अपने चेहरे की मूर्ति को खूबसूरत और सुहावनी बना लिया अब आप ही बतलाइये कि ईश्वरपूजा में इससे अधिक हम क्या करते हैं? इसको सुन कर वह बोला हम मूर्तिपूजक कैसे हुये। हमने उत्तर दिया कि संसार में दो ही तरह के पदार्थ हैं एक मूर्त और दूसरे अमूर्त, अमूर्त को स्वरूपरहित निराकार कहते हैं और मूर्त को रूपवाला साकार कहते हैं, आपने यह तेल साबुन निराकार के तो लगाया नहीं अपने मुखरूप मूर्ति के ही लगाया है फिर आप मूर्तिपूजक क्यों नहीं? इतना सुन कर ये महानुभाव बोले कि वेद में ईश्वर की मूर्ति के पूजन का खण्डन है या मनुष्यों की भी मूर्ति के पूजन का खण्डन है, यह कौन वेद कहता है कि अपनी मूर्ति को भी मत पूजो। हमने कहा ठीक है तुम अपनी मूर्ति को तो हरदम पूजो और ईश्वर की

मूर्ति भूल कर भी पूज लो तो नरक को चले जाओ, मालूम होता है कि या तो ईश्वर कोई बुरी चीज है नहीं तो दुनियां का दुश्मन है जिसको मूर्तिपूजा से फौरन ही नर्क मिल जायगा।

श्रोतावृन्द ! ऐसा एक भी मनुष्य संसार में न मिलेगा जो मूर्ति का सन्मान न करता हो, सबके चित्त में मूर्ति का आदर रहता है, इतना रहने पर भी जो मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं उनकी बुद्धि कितनी डबल उन्नति कर गई है इसका विचार आप करें।

(१) किसी किसी महानुभाव का कथन है कि मूर्तिपूजन प्राचीन नहीं है, नवीन है, यह जैनियों से चला है और जैनियों ने अपनी मूर्खता से चलाया है।

बस आज इसी का निर्णय किया जावेगा कि वास्तव में मूर्तिपूजन जैनियों का चलाया है या जैनियों से भी प्राचीन है। हमको नहीं मालूम कि जैनियों से मूर्तिपूजन बतलाने वाले महानुभाव ने क्या विचार कर यह लिख दिया, जैनी बाइस सौ वर्ष से हैं और मूर्तिपूजन द्वापर में भी होता था, सुनिये—

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो
गजाह्वयातीर्थपदः पदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां
स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १

पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुंजे
ष्वपंकतोयेषु सरित्सरस्सु ।

अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु
चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥ २
गां पर्यटन्मेध्य विविक्तवृत्तिः
सदाप्लुतोधः शयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ ३
इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं
कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ।
तावच्छशास क्षितिमेकचक्रा
मेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥ ४
तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं
वनं यथा वेणुजवन्हिसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोच-
न्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥ ५
तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च
पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य
यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ ६
अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः
कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि
यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥ ७
श्रीमद्भा० स्कं० ३ अ० १

कौरवों के पुण्य से प्राप्त हुये वह विदुरजी हस्तिनापुर से बाहर जाकर पुण्यकर्म करना चाहिये ऐसी इच्छा से भूतल पर ब्रह्म रुद्रादि अनन्तमूर्ति धारण करने वाले भगवान् जिस जिस स्थान में रहे हैं तिन तीर्थपाद विष्णु भगवान् के पवित्र क्षेत्रों में यात्रा करने को चल दिये ॥ १ ॥ विष्णु भगवान् की मूर्तियों से शोभायमान नगर, पर्वत, कुंज (लता आदि से छाया हुआ स्थान), स्वच्छ जल की नदियें और सरोवर, तीर्थ तथा क्षेत्रों में वह विदुरजी इकले ही विचरने लगे ॥ २ ॥ इस प्रकार विचरने वाले तिन विदुरजी ने एकान्त में पवित्र अन्न भोजन करना, प्रत्येक तीर्थ में स्नान करना, पृथ्वी पर शयन करना, शरीर को दबवाना तथा तैल मलवाना आदि संस्कारों को त्यागना, वृक्षों की छाल आदि ओढ़ना, किसी को भी अपना परिचय न देना इत्यादि श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले अनेकों व्रत धारण किये ॥ ३ ॥ वह विदुरजी इस प्रकार भरत-खंड में तीर्थयात्रा करते २ कितने हो काल के अनंतर जब प्रभासक्षेत्र में जाकर पहुंचे इतने समय में ही श्रीकृष्णजी की सहायता से धर्मराज एकचक्र और एकछत्र पृथ्वी का राज्य करने लगे ॥ ४ ॥ इधर तिस प्रभासक्षेत्र में पहुंच कर विदुरजी ने बांसों के परस्पर घिसने से उत्पन्न हुई अग्नि करके जैसे वन भस्म हो जाता है तैसे परस्पर की स्पर्धा से कौरवों का नाश हो गया यह वृत्तान्त सुना । तदनन्तर वह विदुरजी कौरवों का शोक करते हुये मौन धारण करे पश्चिमवाहिनी सरस्वती

नदी की ओर को चल दिये ॥ ५ ॥ और उन्होंने तिस नदी के तट पर के त्रिततीर्थ, शुक्रतीर्थ, मनुतीर्थ, पृथुतीर्थ, अग्नितीर्थ, असिततीर्थ, वायुतीर्थ, गोतीर्थ, गुहतीर्थ, और श्राद्धदेवतीर्थ इन ग्यारह प्रसिद्ध तीर्थों का क्रम से सेवन किया ॥ ६ ॥ और तहां अन्य ऋषि तथा देवताओं के बनाए हुये जिसके शिखरों परके सुवर्ण के कलसों पर चक्रों की मूर्तियें शोभा दे रही हैं ऐसे अनेकों विष्णु भगवान् के मंदिर तिन विदुरजी ने देखे, जिन मंदिरों के शिखरों पर विराजमान चक्रों के दर्शन से दूर रहने वाले पुरुषों को भी बारम्बार श्रीकृष्ण भगवान् का स्मरण होता है ॥ ७ ॥

हमने यह द्वापर के मूर्तिपूजन का प्रमाण दिया। मूर्तिपूजन इससे भी पहिले होता था, प्रमाण सुनिये—

यत्र यत्र च यातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४२
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गंधाढ्यैः पुष्पैश्चागुरुगंधिभिः ॥ ४३

वाल्मी० रा० उ० कां० स० ३१

राक्षसों का राजा रावण जहां जहां जाता था सुवर्ण की मूर्ति साथ ले जाता था ॥ ४२ ॥ रेत की वेदी बना कर उस मूर्ति को स्थापित करता फिर उत्तम गंधवाले पुष्पादि से उस मूर्ति का पूजन करता था ॥ ४३ ॥

और भी सुनिये—

जय जय जय गिरिराज किशोरी।
जय महेशमुखचन्द्र चकोरी॥
जय गजबदन षड़ानन माता।
जगतजननि दामिनि द्युति गाता॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाव वेद नहिं जाना॥
भव भव विभव पराभव कारिणि।
विश्वविमोहनि स्ववश विहारिणि॥
पतिदेवता सुतीय महं, मातु प्रथम तव रेष।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस शारदा शेष॥
सेवत तोहिं सुलभ फल चारी।
वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी॥
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥
मोर मनोरथ जानहु नीके।
बसहु सदा उरपुर सबही के॥
कीन्हेउं प्रगट न कारण तेही।
अस कहि चरण गहे वैदेही॥
विनय प्रेमवश भई भवानी।
खसी माल मूरति मुसुकानी॥

तु० रा० बा० कां०

हे गिरिराजकन्या ! जय ! जय !! जय !!! आप की जय हो । हे महादेव के मुखचंद की चकोरी ! आपकी जय हो । हे गणपति और स्वामिकार्तिक की माता ! आप की जय हो । जिसके शरीर की दामिनि सी दमक है ऐसी हे जगज्जननी ! आप की जय हो । हे माता ! आप का आदि, मध्य, अंत कुछ भी नहीं है, आप की महिमा अपार है, जिससे वेद भी नहीं जानते । आप जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करनेवाली हो, आप जगत् को मोहित कर अपनी इच्छा से विहार कर रही हो । हे माता ! उत्तम पतिव्रता स्त्रियों के बीच आप पहिली गिनी जाती हो, आपकी महिमा अपार है अतएव हजारों शारदा (सरस्वती) और शेष भी आप की महिमा कह नहीं सकते । हे वर देनेवाली ! हे त्रिपुरारि (शिवजी) की प्यारी ! आपकी सेवा करने से चारो फल यानी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सुलभ हैं । हे देवि ! आपके चरणकमल पूज कर सब देवता मुनि और मनुष्य सुखी होते हैं । आप मेरा मनोरथ भली भांति जानती हो क्योंकि आप सदा सब के घट घट में विराजती हो, अतएव मैंने अपना मनोरथ आप के आगे प्रगट नहीं किया है, ऐसे कह कर सीता ने पार्वती के चरण धरे । पार्वतीजी सीता की विनय और प्रेम से वश हो गईं, उनके गले की माला खसी और मूर्ति मुसुकानी । और भी सुनिये—

करिहौं इहां शंभु थापना ।
मोरे हृदय परम कल्पना ॥

सुनि कपीश बहु दूत पठाये।
मुनिवर निकर बोलि लै आये॥
लिंग थापि विधिवत करि पूजा।
शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा॥
शिव द्रोही मम दास कहावै।
सो नर स्वप्नेहु मोहिं न भावै॥
शंकर विमुख भक्ति चह मोरी।
सो नर मूढ़ मंद मति थोरी॥
शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महं वास॥
जो रामेश्वर दर्शन करिहैं।
सो तनु तजि मम धाम सिधरिहैं॥
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि।
सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहिं।
भक्ति मोरि तिहि शंकर देइहिं॥

तु० रा० लं० कां०

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥२०
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः॥ २१

वा० रा० यु० कां० स० १२५

हे जानकि ! महात्मा सागर का यह सेतुबंधतीर्थ दीखता है जो त्रिलोकी में पूजित होगा, यह परम पवित्र और महा पाप का दूर करनेवाला है, पूर्वकाल में इसी तीर्थ पर (मेरे स्थापन करने से) विभु-महादेवजी ने मुझ पर कृपा की थी।

व्याकरण में भी मूर्तिपूजा का वर्णन आता है, सुनिये—

जीविकार्थं चापण्ये । ५ । ३ । ९९ ।
जीविकार्थं यद्विक्रीयमाणं तस्मिन्वाच्ये कनो लुप्स्यात् ।

जो प्रतिकृति (मूर्त्ति) जीविका के लिये हो किन्तु उसको बेच कर जीविका न की जावे वहां पर कन् प्रत्यय का लुप् हो।

उदाहरण—"शिवस्य प्रतिकृतिशिवः" अर्थात् जीविका के लिये अविक्रीयमाण जो शिव की मूर्त्ति उसको "शिवः" कहते हैं। यहां पर तद्धित कन् प्रत्यय होकर प्रत्यय का लुप् होता है।

महाभाष्ये पतंजलिः—

यास्त्वेताः सम्प्रति पूजार्थास्तास्तु भविष्यति।

जो प्रतिमा जीविकार्थ हों परन्तु वे बेची न जाती हों उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप होगा।

कैयटः—

याः परिगृह्य गृहाद्गृहमटन्ति तास्त्वित्यर्थः।

जिन मूर्तियों को लेकर घर घर घुमाते हैं उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् होता है।

इसी को कौमुदीकार लिखते हैं कि—

देवलकानां जीविकार्थासु देवप्रतिकृतिष्विदम् ।

देवलक लोगों की जीविकार्थ जो प्रतिकृति (मूर्ति) हैं उनके आगे ही कन् प्रत्यय का लुप् होगा।

तत्व बोधिनीकारः—

याः प्रतिमाः प्रतिगृह्य गृहाद्गृहं भिक्षमाणा अटन्ति ता एव मुच्यन्ते देवका अपि त एव भिक्षवोऽभिप्रेताः।

यास्त्वायतनेषु प्रतिष्ठाप्यन्ते तासूत्तरसूत्रेण लुप् तदुक्तम् ।

अर्चासु पूजनार्हासु चित्रकर्म ध्वजेषु च ।

इवे प्रतिकृतौ लोपः कनोदेव पथादिषु ॥

चित्रध्वजाभ्यां तद्गताः प्रतिकृतयो लक्ष्यन्ते ।

चित्रकर्मणि —अर्जुनः—दुर्योधनः ।

ध्वजेषु कपिः गरुड़ः ।

राज्ञां ध्वजेषु सुपर्णसिंहमकरादयो भवन्ति ॥

जिन प्रतिमाओं को लेकर भिक्षुजन घर घर फिरते हैं यह कन् प्रत्यय का लुप् उन्हीं में होता है और जो प्रतिमा द्वारा घर घर भीख मांगते हैं वही देवलक कहलाते हैं और जो मूर्तियें मंदिरों में स्थापित की जाती हैं उसमें उत्तर सूत्र "देवपथादिभ्यश्च ५। ३। १०० से लुप् होगा।

प्रतिकृति वा प्रतिमा तीन प्रकार की होती है। एक तो वह

जो सुवर्णादि धातुओं की अथवा पाषाणादि की बनी देव प्रतिमा जो मंदिरों में स्थापित कर पूजी जाती हैं इन्हीं को अर्चा कहते हैं ये ही मुख्य हैं। द्वितीय-दीवार अथवा कागज पर खिंचे चित्र व फोटू। तीसरी-ध्वजाओं पर गरुड़ादि की प्रतिमा जो कि राजाओं की पताकाओं में होती हैं। इनमें प्रथम प्रतिमा जो मंदिरों में स्थापित की गई उनको पूजना ही कहा है।

त्रेता की बात कौन कहे सृष्टि में सबसे पहिला मनुष्य मनु था और मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुये, उत्तानपाद का ज्येष्ठपुत्र ध्रुव ईश्वर की खोज के लिये घर से बाहर निकला और चलता चलता वृन्दावन में आया, वृन्दावन में आकर ध्रुव ने क्या किया, इस गाथा को भी सुनिये—

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीं।
समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥
त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः।
आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥
द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने।
तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥
तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि।
अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥
चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि।
वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥

पंचमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ।
ध्यायन्ब्रह्मपदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥
सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ।
ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ४ अ० ८

इधर ध्रुवजी ने मधुवन में आकर यमुना में स्नान किया और जिस रात्रि में वहां पहूंचे थे उसी रात्रि में देह की शुद्धि के निमित्त उपवास करके एकाग्रचित्त हो नारदजी के उपदेश के अनुसार चित्त लगा कर भगवान की पूजा करी। फिर तीन तीन दिन उपवास करके चौथे दिन शरीर के निर्वाह के योग्य कैथे और बेर खाकर इन ध्रुवजी ने श्रीहरि की आराधना करते हुये एक मास बिता दिया। तथा दूसरे महीने में छठे छठे दिन वृक्षों से गिरे हुये पत्ते तृण आदि के भक्षण से देह निर्वाह करके नित ध्रुवजी ने व्यापक प्रभु की आराधना करी। तीसरे मास में नवें नवें दिन शरीर के निर्वाह के निमित्त केवल जल ही पीकर ध्रुवजी ने समाधि के द्वारा उत्तम कीर्ति भगवान् की आराधना करी। चौथे महीने में भी उन्होंने बारहवें बारहवें दिन एक समय वायु का भक्षण करके प्रायाणाम से श्वास को वश में कर हृदय में श्रीहरि का ध्यान करते हुये शरीर को धारण करा। इस प्रकार ध्रुवजी ने हर मास में तपस्या की वृद्धि और भोजन की न्यूनता (कमी) करी। फिर पांचवां मास लगने पर वह राजकुमार ध्रुवजी प्राणवायु को जीत कर, ब्रह्म

का ध्यान करते हुये एक चरण से खम्भे के समान निश्चल खड़े हुये। फिर शब्दादि विषय और इन्द्रियें जिसमें रहती हैं ऐसे अपने मन को सकल पदार्थों से हटा कर तहां ही भगवान् के स्वरूप का (ब्रह्म का) ध्यान करने वाले तिस बालक ने ब्रह्म वस्तु से भिन्न कुछ नहीं देखा।

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥

मनु० अ० ३ श्लो० १७६

नित्य स्नान करके पवित्र हो फिर देवर्षिपितृ तर्पण करे इसके पश्चात् देवताओं का पूजन करे तत्पश्चात् समिदाधान करे।

यह श्लोक मनुस्मृति का है, मनुजी ने स्पष्ट रूप से देव पजन लिखा है इतने पर भी देवपूजन न मानना यह हठ नहीं तो क्या है।

मूर्तिपूजा का वर्णन वेदों में भी पाया जाता है, सुनिये—

यदा देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति तदा प्रायश्चित्तं भवतीदंविष्णुर्विचक्रम इति स्थालीपाकꣳहुत्वा पंचभिराहुतिभिरभिजुहोति विष्णवे स्वाहा सर्वभूताधिपतये स्वाहा चक्रपाणये स्वाहेश्वराय स्वाहा सर्वपापशमनाय स्वाहेति व्याहृतिभिर्हुत्वाथ सामगायेत ॥ षड्विंश० ब्रा०

जब देवताओं के स्थान कांपते हैं और देवताओं की प्रतिमा हंसती है या रोती है और नाचती है, चमकती है, जब प्रतिमाओं को स्वेद (पसीना) आता है या कि नेत्रों को तेजी से खोलती हैं या नेत्रों को बन्द करती हैं उस समय में प्रायश्चित्त होता है वह यह है कि 'इदं विष्णुर्विचक्रमे" इस मंत्र से हवन करके फिर पांच आहुतियों से हवन होता है (१) विष्णवे स्वाहा (२) सर्वभूताधिपतये स्वाहा (३) चक्रपाणये स्वाहा (४) ईश्वराय स्वाहा (५) सर्वपापशमनाय स्वाहा । इन पांच आहुतियों के पश्चात् ॐ भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । इन व्याहृतियों से हवन करके सामवेद का गान करे ।

इस प्रकार से प्राचीन ग्रंथों में यदि मूर्तिपूजा के प्रमाण खोजे जावें तो एक बड़ा भारी तौल में दश बारह सेर का ग्रंथ तैयार हो जावेगा । हमको नहीं मालूम यह किस बल पर लिखा गया कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली है । जब हिन्दुओं के प्रायः समस्त ग्रंथों में मूर्तिपूजा का वर्णन आता है तब मूर्तिपूजा को जैनियों की चलाई हुई बतलाना आंखों में धूल झोकना नहीं तो और क्या है । कहीं यह तो नहीं समझ लिया कि सनातनधर्मी मूर्ख होते हैं, न कोई ग्रन्थ देखेगा और न मूर्तिपूजा की प्राचीनता का भेद खुलेगा ।

इसको समझाने के लिये हम पाठकों के आगे एक दृष्टान्त रखते हैं। आठ आदमियों ने मिल कर विचार किया कि

चलो नौकरी करने के लिये कलकत्ते चलें। जब यह विचार पक्का हो गया तब आपस में सलाह करने लगे कि किसी के पास रुपया तो है नहीं जिससे टिकट लेकर रेल में बैठ जावें और पैदल भी इतनी दूर जा सकते नहीं, फिर कलकत्ते में पहुंचें तो कैसे पहुंचें। एक मनुष्य ने कहा कि एक युक्ति हम बतलाते हैं, यहां पर नावें बहुत रहती हैं, आठ नौ बजे जब केवट नावें छोड़ कर अपने घर चले जावें तब एक नाव पर सवार हो जाओ और उसको चलाना आरंभ कर दो, पांच चार दिन में कलकत्ते पहुंच जावेंगे। इस कथन को सब ने स्वीकार कर लिया और दो दिन के बाद अपने बर्तन, दाल चावल लेकर नौ बजे रात को सब दरिया के किनारे गये और नाव पर बैठ गये। एक ने पंखे चला कर नाव को चलाना आरंभ किया। जब रात्रि के बारह बजे तो उनमें से एक मनुष्य ने कहा कि अब हम कहां पर आ गये, दूसरा बोला तू अंधा है, दीखता नहीं? इतना बड़ा शहर पटना है, अबतो पटना निकल आये। पंखे चलाने वाला बदल दिया गया। कई एक सो गये, कई एक तमाखू पीते हुये बातें करते जाते हैं। अंदाजन जब दो बजे तो एक मनुष्य ने पूछा अब हम कहां आ गये? दूसरा बोला कि दहिनी तरफ देखिये यह थोड़ी दूर पर मुकामा दिखलाता है। उनमें से दो तीन और बोल उठे कि हां हां यह मुकामा है, फिर सो गये। अंदाजन जब चार बजे होंगे तब पंखे चलाने वाले ने सबको जगाया, जगा कर कहा कि हम थक गये, पंखे

चलाने को कोई दूसरा आदमी आवे। पंखे चलाने वाला बदल दिया गया और फिर विचार करने लगे कि अब हम कहां आ गये ? एक ने कहा देखो यह चार फर्लाङ्ग पर मुङ्गेर दीखता है, दो एक ने कहा हां हां मुङ्गेर है। पंखे चलाने वाला पंखे चलाता रहा और सब सो गये। जब सवा छः बजे तब पंखे वाले ने सब को जगाया और कहा कि कोई दूसरा आ जाओ, हम थक गये। एक आदमी पंखे पर चला गया और सब तमाखू पीने लगे। तमाखू पीते २ बीस पचीस मिनट गुजरे थे कि एक आदमी तीर (किनारे) पर देख पड़ा, उससे पूछा यह कौन शहर है ? उसने उत्तर दिया यह हाजीपुर है। इसको सुन कर वे लोग बोले कि बाज बाज आदमी बड़े बेवकूफ होते हैं, हम मुङ्गेर तो निकल आये और यह अभी हाजीपुर ही बतलाता है। थोड़ी देर बाद कुछ उजियाला सा हो गया, एक आदमी और दीखा, उससे भी पूछा यह कौन शहर है ? उसने भी वही उत्तर दिया कि यह हाजीपुर है। अब ये सब चौंक पड़े, देखने लगे कि यह कौन शहर है। एक मनुष्य बोला देखिये यह शहर कैसा बसा है मानो हमारा ही शहर है, दूसरा देख कर बोला उल्लू कहीं के तुम्हारा शहर यहां कहां आगया और यह शहर वैसा ही कैसे हो जावेगा, तीसरे ने कहा कि यह तो हाजीपुर है, चौथा बोला अरे सच ही हाजीपुर है हमारा तो घर दीखता है। अब सब दंग रह गये। विचार करने लगे कि नाव गंडकी नदी से चल कर गंगा में आ गई, फिर

पटना निकल गया, मुकामा निकला, मुङ्गेर पीछे रह गया, नाव आगे आगई, अब यह ससुर हाजीपुर कहां से आगया, हुआ तो क्या हुआ, नाव उलटी कैसे लौट आई। खोजते २ यह पता लगा कि नाव का रस्सा तीर के खूंटे में बँधा है उसको खोलना भूल गये वैसे ही पंखे चलाते रहे और पटना मुकामा मुङ्गेर ये सब अपने मन से ही निकल आये, नाव हाजीपुर की हाजीपुर में ही रही। जिस तरह से ये लोग खूंटे से नाव को विना खोले ही मुङ्गेर निकल आये थे। इसी प्रकार मूर्तिपूजन को जैनियों का चलाया कहा जाता है, जब मूर्तिपूजा को प्राचीन सिद्ध करने के लिये शास्त्रों के अनेक खूंटे रूप प्रमाण नाव रूप जैन प्रचलित मूर्तिपूजा को इंच भर भी नहीं चलने देते फिर कोई न्यायशील मनुष्य यह कैसे मान लेगा कि मूर्तिपूजा जैनियों ने चलाई है।

(२) कई एक सज्जनों का यह कथन है कि श्रीमद्भागवत में मूर्तिपूजा का खंडन लिखा है। ऐसा कहने वाले जिस श्लोक को आगे रक्खा करते हैं वह श्लोक यह है—

> यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
> स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
> यस्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
> ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

वात पित्त कफात्मक शरीर में जिसकी आत्मबुद्धि और कलत्र पुत्रादिक में जिसकी स्वकीयाबुद्धि तथा भूमि के पदार्थों

में जिसकी पूज्यवृद्धि एवं जल में जिसकी तीर्थबुद्धि है और अभिज्ञ विद्वान्‌जनों में जिसको पूज्यबुद्धि नहीं है वह बैल और गधा है।

क्या मजे की बात है। एक पण्डित किसी वैश्य के यहां महाभारत बांचता था, धीरे धीरे अंतिम पूजन का दिन आया, इस दिन को जान कर पंडित बड़े मग्न हुये, मन ही मन में विचार कर रहे थे कि जिसके घर में हम कथा बांचते है वह चालिस लाख का मालिक है, यह यदि कथा पर कम भी चढ़ावेगा तो हजार रुपये से क्या कम चढ़ावेगा। हजार को याद करते हुये पण्डितजी का चेहरा खिल रहा था। पूजन का समय आया, सेठजी चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, लेकर पूजन करने आये। चंदन चढ़ाया, अक्षत चढ़ाये, फूल चढ़ाये, और नैवेद्य भी चढ़ा दिया, किन्तु पैसे का दर्शन नहीं, पूजन हो चुका। पण्डित ने समझा कि पुस्तक पर न चढ़ाया तो क्या हुआ चलते वक्त देगा। दूसरे दिन पण्डितजी चलने लगे, पण्डितजी ने कई बार सेठजी से कहा कि अब हम जाते हैं। सेठजी बोले, अच्छा महाराज जाइये हमारे ऊपर कृपा बनाए रखिये, इतना सुन कर पण्डितजी चल दिये और अपने मन में विचार करने लगे कि रुपया हमको नहीं दिया तो कोई हर्ज नहीं वह अपने आदमी के हाथ हमारे घर पर भेजेंगे। पंडितजी घर पहुंच गये। ब्राह्मणी ने पूछा क्या लाये ? पंडितजी ने उत्तर दिया कि लाये तो कुछ नहीं, कुछ दिन में सेठजी घर पर ही रुपये भेज

देंगे। आशा करते २ एक महीना हो गया, सेठजी का कोई आदमी भी नही आया, लाचार तृष्णा के दबाये हुये पंडितजी फिर सेठजी के यहां गये, दो रोज ठहरे, तीसरे दिन सेठजी से कहा कि अब हम जाते हैं, सेठजी बोले अच्छा महाराज जाओ, ब्राह्मण ने विचार किया कि ये तो अब भी कुछ नहीं देना चाहते यह बात क्या है। विचार कर पंडित जी बोले सेठजी ! हमने आपको समस्त महाभारत सुनाया उसमें आप क्या समझे ? सेठ जी बोले हमतो यह समझे कि—

सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव।

विना युद्ध के मैं सुई की नोक भी नही दे सकता।

पंडितजी ने अपने मन में समझा यह ठीक रहा। वहां से उठ कर सेठानी के पास गये, सेठानी से पूछा सेठानीजी ! तुमने समस्त महाभारत सुना, सुन कर उससे क्या शिक्षा ली ? सेठानीजी बोलीं मैं तो यह समझी कि द्रोपदी के पांच पति थे जिस दिन से आप चले गये, सेठजी से भिन्न हमने चार पति और कर लिये। पंडितजी खूब हंसे। फिर सेठजी के लड़के के पास गये, उससे पूछा कि तुमने समस्त महाभारत सुना है तुम क्या समझे ? लड़का बोला महाराज ! हम तो—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

इस जीव को शस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता, पानी गला नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकता, यह

जीव अमर है मरता है नहीं अतएव मारनेवाले को पाप नहीं लगता। हमारा पिता बड़ा मालदार है हमको पैसा नहीं देता इसको मार डालें, यह समझे। पंडितजी हँसते हुये सेठजी की पुत्रवधू के पास गये, उससे पूछा कि तुमने सब महाभारत सुना तुम क्या समझीं? वह बोली मैंने महाभारत में सुना कि कृष्ण की बहिन सुभद्रा अर्जुन के साथ भाग गई, सेठजी के लड़के के साथ मेरा मन नहीं भरता, मैं दो चार दिन में किसी के साथ भागनेवाली हूं। पंडितजी हँस कर बोले तुम बहुत ठीक समझीं। महाभारत में दान का कितना महत्व निकला, सैकड़ों दानियों की कथा सुनी, हरिश्चन्द्र और कर्ण प्रभृति दानवीरों की भी कथा सुनी किन्तु सेठजी इनको न समझ कर यही समझे कि विना लड़ाई के तो हम सुई की नोक न देंगे। इसी प्रकार महाभारत में सैकड़ों पतिव्रताओं के इतिहास आये उनमें अलौकिक महत्व दिखलाया, गांधारी की भी कथा सुनी किन्तु सेठानीजी उनको न समझ कर द्रौपदी के पांच पति समझीं। महाभारत में मनुष्यवध को पाप बतलाया, हत्यारा करार दिया, प्रायश्चित्त भी कठिन बतलाया किन्तु सेठजी का लड़का उन कथाओं को न समझ कर जीव को अजरामर समझा। इसी प्रकार स्त्रियों के पवित्र धर्मों का महाभारत में विस्तृत वर्णन आया किन्तु सेठजी की पुत्रवधू ने सुभद्रा का भागना ही समझा, अपने अपने मतलब की बात सबने समझ ली।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में सैकड़ों जगह मूर्तिपूजन आया—तपस्वियों द्वारा ईश्वर का पूजन, विराट का ध्यान और पूजन, लड़कपन से उद्धव के द्वारा ईश्वर का पूजन, विदुर के द्वारा किया हुआ पूजन, चोरों के द्वारा दुर्गा का पूजन और जड़ भरत की भेट चढ़ाने की चोरों की इच्छा, अजामील चित्रकेतु द्वारा ईश्वर का पूजन, प्रह्लाद द्वारा ईश्वर का पूजन तथा प्रह्लाद की रक्षा के लिये खभे से ईश्वर का निकलना, गज द्वारा ईश्वर को पुष्प अर्पण होना, अम्बरीष द्वारा ईश्वर पूजन, गोवर्धन पर्वत का पूजन, ब्रह्मा और इन्द्र द्वारा कृष्ण का पूजन, भगवान् कृष्ण द्वारा द्वारका में ईश्वर का पूजन, एकादश में पुजापद्धति का वर्णन, इन सबको न समझ कर समझा तो यह समझा कि जो मूर्ति पूजते हैं वे बैल और गधे होते हैं। क्या ही अच्छा समझा, सिवाय मतलब के और एक अक्षर न समझा।

श्लोक का अर्थ समझाने के लिये हमारी इच्छा है कि हम एक दृष्टान्त दे दें, उस छोटे से दृष्टान्त से श्लोक का अर्थ उत्तम रीति से समझ में आ जावेगा। दृष्टान्त यह है कि काशी में एक त्र्यम्बकराव नाम वाले पंडित थे, उनके दो लड़के थे, एक का नाम त्रिविक्रमराव और दूसरे का नाम वैंकटेश्वरराव था। ये दोनों ही पुत्र पाठशालाओं में अध्यापक थे। वैंकटेश्वरराव पाठशाला भी पढ़ाते थे और २०) रुपये माहवारी का ट्यूशन भी करते थे किंतु त्रिविक्रमराव के पास ट्यूशन आता था वह करते नहीं थे। त्र्यम्बकराव ट्यूशन करने वाले लड़के से

प्रसन्न और जो ट्यूशन नहीं करता था उससे नाराज रहते थे। एक दिन तीनो ही कमरे में बैठे थे बाप बोला कि जो पाठशाला में तो पढ़ाता है और समय पड़ने पर ट्यूशन नहीं करता वह पंडित क्या है एक प्रकार का गधा है, उक्त पंडितजी के इस कथन से वही गधा हुआ जो ट्यूशन नहीं करता। ट्यूशन न करने वाला गधा कैसे हो जायगा यह हमारी समझ में नहीं आता। आजकल के लोग अपनी चालाकी से ट्यूशन न करने वाले को गधा सिद्ध करना चाहते हैं। श्लोक में साफ २ लिखा है कि जो शरीर में आत्मबुद्धि और कलत्रादिकों में स्वकीया बुद्धि, भूमि के पदार्थों में इज्यबुद्धि, जलमें तीर्थबुद्धि तो करता है और विद्वानों में पूज्यबुद्धि नही करता वह बैल और गधा है किन्तु समस्त सनातनधर्मी विद्वानों में पूज्यबुद्धि रखते हैं फिर इस श्लोक से वे बैल गधा कैसे हो जावेंगे। तथा इसी श्लोक से मूर्तिपूजा का खंडन कैसे होगा? श्लोक का अभिप्राय तो यह है कि विद्वानों में पूज्यबुद्धि रखना चाहिये। आजकल के लोग यूरोपीय हवा में पड़ कर आर्यसमाजी बन जाते हैं फिर वे अपने को धुरंधर विद्वान् समझ कर बड़े २ विद्वानों का अपमान करते हैं, श्लोक की दृष्टि में वे ही बैल और गधे है तथा विद्वानों का आदर करने वाले बैल गधे कैसे हो जावेंगे।

(३) कोई कोई सज्जन यह भी कह उठाता है कि पुराणों में तो मूर्तिपूजन लिखा है जो पुराणों में मूर्तिपूजा का खंडन बतलाते है वे हठधर्मी करते हैं। हां यह बात सही है कि वेदों

में मूर्तिपूजा का घोर खंडन किया गया है, वेदों में मूर्तिपूजा का खंडन बतलाने के लिये एक प्रमाण भी हमारे आगे रक्खा जाता है, वह यह है—

अन्धन्तमः प्रविसन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इवते तमोय उ संभूत्याꣳरताः॥

यजु० ४०।९

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण को ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर को उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं।

इस प्रमाण में बड़ी सफाई खेली गई है, मंत्र तो लिखा गया है वेद का और अर्थ लिखा गया है अपने मन का। यदि वेद मंत्र का ही अर्थ लिखते तब तो यह मंत्र मूर्तिपूजा का खंडन ही न करता किन्तु मंत्र का बहाना लेकर के अपने दिल में समाई हुई बात अर्थ में लिख दी है, इस रीति से यहां पर मूर्तिपूजा का खंडन किया गया है।

कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा।
भानमती ने कुनबा जोड़ा॥

या यों समझिये कि—

टाट की अंगिया मूज की तनी।
कहो मेरे बलमा कैसी बनी॥

कोई भी विचारशील मनुष्य धर्मविवेक में इस प्रकार का अनौचित्य व्यवहार नहीं करता, तो भी यहां पर न्याय का गला घोट कर 'मूर्तिपूजन से नरक होता है' इस बनावटी अर्थ को इस कारण बना डाला कि संसार वेद का अर्थ तो जान ही न सकेगा और हमारी बनाई हुई चाल काम कर जावेगी।

संसार में बड़ी २ चालें बना कर दूसरों को नीचा दिखलाया जाता है किन्तु दूसरे की चाल में समस्त मनुष्य नहीं आते उनमें से कोई २ ऐसा भी निकल आता है जो चाल बनाने वाले को भी नीचा दिखला देता है।

इसके ऊपर हमको एक छोटा सा दृष्टान्त याद आ गया। एक मनुष्य का लड़का कूबरा था उसकी कमर में भारी कूब था। प्रतिष्ठित होने के कारण एक नाई सगाई के लिये उस लड़के को देखने आया, लड़के के पिता ने सोचा कि यदि हमने लड़के को दिखला दिया तो यह नाई सगाई नहीं करेगा और हमारा लड़का कूबरा प्रसिद्ध हो जावेगा फिर अन्यत्र भी इसकी सगाई न होगी, यह सोच कर इसके बदले दूसरा लड़का दिखला दिया गया। उसको देख कर नाई प्रसन्न हो गया और लड़की वाले से जाकर कह दिया कि लड़का बहुत ही अच्छा है। फलदान हो गया, विवाह आ गया। लड़के के पिता ने सोचा अब क्या

करें व्याह तो इसी के साथ करना होगा, एक युक्ति खेली गई, लड़के की कमर में नीचे की तरफ और कपड़ा बांधा गया, कपड़ा इस नाप से बांधा कि कूबर और नीचे बंधा कपड़ा दोनों एक लाइन में आ गये, अब वह कूब दीखना बंद होगया, किसी ने यह भी न परखा कि इस लड़के के कूब है। जब विवाह का कृत्य समाप्त हुआ मंडप से उठने को ही थे इतने में लड़के की तरफ का नाई बोल उठा कि—

भली भई भई भली भई।
मड़वा नीचे कूबर गई॥

इसके कहने का मतलब था कि यह बहुत अच्छा हुआ कूबरा लड़का मंडप के नीचे चला गया और इसका विवाह हो गया। नाई के इस कथन को लोगों ने नही समझा किन्तु लड़की को तरफ का नाई समझ गया, समझ कर उसने भी उत्तर दिया कि--

यह मत जानो हमी सयाने।
लड़की का टेंट देखियो भ्याने॥

लड़की की तरफ का नाई कहता है तुम अपने मन में यह मत समझो कि संसार में हम ही होशियार पैदा हुये, तुम्हें ज्ञान तब होगा जब प्रातःकाल लड़की को देखोगे। उसकी आंख में बड़ा भारी टेंट जब तुमको दृष्टिगोचर होगा तब तुमको समझना पड़ेगा कि संसार में दूसरा भी कोई होशियार है। जब संसार के बड़े २ चालाकों की चालाकियां खुल जाती हैं तो

एक वेद के मंत्र में की हुई चालाकी खुलना कौन बड़ी भारी बात है। ठीक ठीक अर्थ देखिये—

जो असंभूति शरीर की उपासना करते हैं, जिनका यह सिद्धान्त है कि शरीर से भिन्न अन्य कोई आत्मा ही नहीं वे नरक को जाते हैं, जो शुष्क आत्मज्ञान में रत हैं "अहं ब्रह्मास्मि" यह कहते हुये कर्मकाण्ड को छोड़ देते हैं वे उससे अधिकतर अज्ञान लक्षणतम में प्रवेश करते है।

मंत्र के पूर्वार्द्ध में नास्तिकों का खंडन, उत्तरार्द्ध में कर्मकाण्ड के त्याग का खंडन, यह वेद मंत्र का अभिप्राय था, उसको तो छोड़ दिया और अपने मन में धँसा हुआ मूर्तिपूजा का खण्डन वेदमंत्र के अर्थ के बहाने से पबलिक के आगे रख दिया, इस चाल से वेद में मूर्तिपुजा का खण्डन सिद्ध किया गया है।

यह मंत्र यजुर्वेद का है और यजुर्वेद पर संस्कृत के दो भाष्य हैं एक उव्वट और एक महीधर। दोनों ने ही यह अर्थ किया है जो मैंने आप को सुनाया है जिसको सन्देह हो वह उव्वट तथा महीधर भाष्य पढ़ ले।

तीसरा प्रमाण इस विषय में हम वेदमंत्र का दिखलाते हैं—

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥

यजु० अ० ४० मं० ११

जो योगी- आत्माविनाशी शरीर इन दोनों को मिले हुये

जानता है वह शरीर से मृत्यु को जीत कर आत्मा में मोक्ष को पाता है।

यहां पर 'सम्भूति' शब्द से वेद ने 'आत्मा' लिया है और 'विनाश' शब्द से 'शरीर' लिया है जब 'सम्भूति' शब्द का अर्थ वेद ने 'आत्मा' लिखा है तो फिर 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति' इस मंत्र के अर्थ में 'सम्भूति' शब्द का अर्थ 'जड़ प्रकृति' कैसे हो जावेगा, बनावटी अर्थ को वेद ही उड़ा देता है फिर बनावटी चालबाजियों से वेद में मूर्तिपूजा का खंडन दिखलाना कितनी कामयाबी हासिल करेगा। जो लोग वेद में मूर्तिपूजा का खंडन बतलाते हैं वे मनुष्यों की आंखों में धूल झोंकते हैं। सुनिये वेद—

भवाशर्वौ मृडतं माभियातं
भूतपती पशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा विस्राष्टं
मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः॥ १
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो
गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि
ते विघसे मा विदन्त॥ २
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य॥ ३

पुरस्तात्ते नमः कृण्मः उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७
स नो भवः परिवृणक्तु विश्वत
आप इवाग्निः परिवृणक्तु नो भवः ।
मानोभि मास्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय
दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पंचपशवो विभक्ता
गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौ-
स्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
वेदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणत्पृथिवीमनु ॥ १०
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं
यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो
अभिमाः श्वानः परोयन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं
सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेति-
स्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १२
यो‌ऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनुप्रयुङ्क्ते तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३
भवारुद्रौ सयुजा संविदाना
वुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४
नमस्तेस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६

अथ० कां० ११ अ० १ सू० २

हे भव ! हे शर्व ! मुझको सुखी करो, हे भूतों के पतियो ! मेरे पास रक्षार्थ सब ओर से आओ, हे पशुओं के पतियो ! आप दोनों को नमस्कार है, तुम दोनों धनुषों में धरे और विस्तृत वाण को मेरे ऊपर मत छोड़ो, आप हमारे द्विपद मनुष्यों को तथा चतुष्पद पशुओं को मत मारो ॥ १ ॥ हे पशुपते ! हमारे शरीरों को कुत्तों और गीदड़ों के लिये मत करो अर्थात् आप की कृपा से वावले कुत्ते और गीदड़ हमको न काटें तथा मरणान्तर हमारे शरीरों को गीदड़ और कुत्ते न

खावें किन्तु हमारी सत्क्रिया हो जावे और आमिष की इच्छा करने वाले जो कृष्ण काक एवं मक्खी हैं वे अपने भोजन के लिये हमें न पावें ॥ २ ॥ हे भव ! तुम्हारे शब्द को तथा प्राण को नमस्कार है और जो तुम्हारी मोहन करने वाली मूर्तियें हैं उन सबको हम नमस्कार करते हैं, हे अमर रुद्र ! सहस्राक्ष जो आप हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥ हे रुद्र ! तुमको पूर्व से और उत्तर दक्षिण से भी हम नमस्कार करते हैं या पूर्व दक्षिण और उत्तर सब ओर तुम हो इस लिये सब ओर रहने वाले आप को प्रणाम है, अधर शब्द नीचे का भी वाचक है इस कारण नीचे से और सब को अवकाश देने वाला जो आकाश है उसके भी ऊपर जो आप सूर्य रूप से या व्यापक रूप से स्थित हैं ऐसे आप को नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे पशुओं के पति शंकर ! तुम्हारे मुख को नमस्कार है, हे भव ! तुम्हारे जो चक्षु हैं उनको भी नमस्कार है, तुम्हारी त्वचा, तुम्हारे रूप और सम्यग्दर्शी तथा प्रत्यग्दर्शी एवं सर्वव्यापक जो आप हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ हे पशुपते ! आपके अंगों को नमस्कार है । आपके उदर, आपकी जिह्वा, आपके मुख, आपके दांत तथा नासिका को भी नमस्कार है ॥ ६ ॥ जो अस्त्र चलाने वाले और नीलशिखण्ड वाले सहस्राक्ष तथा अश्व वाले एवं आघाघात करने वाले रुद्र हैं उनके साथ हम विरोध न करें ॥७॥ वह भव हम को सब ओर से दुश्चरितों से रोकें किन्तु हमारा हनन न करें इस लिये हमारा उस भव को नमस्कार होवे ॥८॥

भव नामक शिव को चार वार और आठ वार नमस्कार हो, हे पशुपते ! आपको दशवार नमस्कार हो, तुम्हारे गाय घोड़े पुरुष बकरी भेड़ ये पांच पशु विभक्त हैं ॥ ९ ॥ हे उग्र ! चारों दिशा आपकी हैं स्वर्ग आपका, पृथ्वी आपकी, बड़ा विस्तीर्ण आकाश आपका, और क्या कहूँ इस पृथ्वी पर जो कुछ प्राणवाले और शरीर वाले हैं वे सब आपके ही हैं ॥ १० ॥ हे पशुओं के पति शंकर ! जिस ब्रह्माण्ड कटाह के अन्दर ये सब भुवन है और जिसमें पाप पुण्य का खजाना स्थित है वह समस्त ब्रह्माण्ड आपका है सो आप जो सब से उत्कृष्ट है आपको नमस्कार है, आप हमको सुखी करो और शृगाल तथा मांस खाने वाले कुत्ते, रोने वाली और खुले केशवाली पिशाचनी हमसे दूर जावें, यह हमारी प्रार्थना है॥ ११ ॥ हे शिखंड रखने वाले रुद्र ! तुम हजारों को जखमी करने वाले और सैकड़ों को मारने वाले सुवर्णमय हरित धनुष को धारण करते हो तथा हमारा तो उस दिशा को भी नमस्कार है जिस दिशा में रुद्र का बाण और रुद्र की शक्ति घूमती होवे ॥ १२ ॥ हे रुद्र ! जो पुरुष लड़ने की इच्छा से आपके पास आता है और प्रहार करके भगाना चाहता है उसके प्रहार करने के बाद आप प्रहार करते हो फिर उस शस्त्रहत को आप के पाद प्राप्त करते हैं अर्थात् वह शस्त्रहत होकर आपके चरणों में गिरता है ॥ १३ ॥ भव और रुद्र दोनों ही उग्र और मिले हुये तथा सम्यग् ज्ञाता है जिस दिशा में वे पराक्रम करते हुये विद्यमान हैं उन दोनों को नम-

स्कार है ॥ १४ ॥ हे रुद्र ! आते हुये तुमको जाते हुये तुमको तथा खड़े और बैठे हुये तुमको नमस्कार होवै ॥ १५ ॥ हे रुद्र ! तुमको सायंकाल, प्रभातकाल, रात्रि और दिन में भी नमस्कार है, मैं भवदेव तथा शर्वदेव दोनों को नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥

इस अनुवाक् में साकार रुद्र का वर्णन है, रुद्र के अंगों को प्रणाम, चलते बैठे रुद्र को प्रणाम, क्रम से पूर्व पश्चिमादि किसी एक दिशा से आते हुये रुद्र को प्रणाम किया गया है इस अनुवाक् में साकार जगदीश्वर रुद्र का पूजन लिखा है। जो लोग अवतार का निषेध करते हैं वे या तो वज्र मूर्ख हैं या ईसाई धर्म के एजंट हैं। इस अनुवाक् से अधिक प्रमाण भी वेदों में मौजूद हैं समयाभाव से आज मैं उन प्रमाणों को श्रोताओं के आगे नहीं रख सकूंगा।

अर्चा।

(४) कई एक सज्जनों का यह भी कथन है कि वेद में मूर्तिपूजा करना नहीं लिखा।

जो लोग वेद नहीं पढ़े वे अपने मन से जो चाहे सो कह सकते हैं किन्तु वेद में देवमूर्तियों के पूजने की साक्षात् आज्ञा है। सुनिये—

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत्पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

मनुष्यो ! ईश्वर का अर्चन करो, स्तुति विशेष से पूजन करो, प्रियमेधा संबंधी तुम ईश्वर का पूजन करो, हे पुत्रो ! तुम ईश्वर को पूजो, जैसे धर्षणशीलपुरुष को पूजते हैं उसी प्रकार ईश्वर का पूजन करो।

इससे बढ़िया श्रुति ईश्वरपूजन में और क्या हो सकती है, ईश्वर की प्राप्ति जब हुई है तब मूर्तिपूजकों को ही हुई है, पूजन से इनकार करने वाले पुरुष को कभी भी ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हुआ। इसके लिये संस्कृत साहित्य प्रमाण है मूर्तिपूजकों को ईश्वर का साक्षात्कार होता है इसके ऊपर एक कथा देकर आज के व्याख्यान को समाप्त करेंगे।

एक दिन नंद के यहां एक ब्राह्मण आया, उसका पाद्यार्घ किया, पश्चात् प्रार्थना की कि महाराज ! भोजन बनाओ, पण्डितजी ने खीर बनाई, खीर बना कर थाली में परोस कर ठाकुरजी का भोग लगाने लगे। आंख मींच कर ईश्वर से प्रार्थना की कि भगवन् ! आइये, भोजन पाइये। ये आंख मीचे हो रहे यशोदा के बालक भगवान् कृष्ण जो उस समय तीन वर्ष के थे चौके में कूद पड़े और गफ्फा लगाने लगे, जो ब्राह्मण की आंख खुली बालक को देख कर ब्राह्मण चिल्लाया, यशोदे ! यशोदे ! दौड़िये तेरे बालक ने भोजन बिगाड़ डाला, यशोदा आई ओर ब्राह्मण के चरणों में गिर पड़ी कि नाथ ! यह अबोध बालक है इसको कुछ खबर नहीं अपराध को क्षमा करें, दूसरे चौके में फिर से भोजन बनावें, घरमें किसी चीज की कमी

नहीं। ब्राह्मण इतनी प्रार्थना पर चौके से निकल आया, स्नान किया, फिर खीर बनाने लगा। जब खीर बन कर तैयार हो गई थाली में परोसी, परोस कर फिर भोग लगाने लगे। भगवन्! आज भोजन एक बालक ने बिगाड़ डाला इस कारण देर हो गई, आइये, भोग लगाइये। इतना कह कर हाथ जोड़ ब्राह्मण ने आंख बन्द की, इतने में ही भगवान् कृष्ण आ गये और लगे गफ्फा पर गफ्फा लगाने। जब तक ब्राह्मण आंखें खोलें तब तक आधी थाली का सफाया कर दिया, जो ब्राह्मण ने आंख खोली और बच्चे को देखा मारे क्रोध के लाल हो गया तथा लगा यशोदा को पुकारने। यशोदा आई, घबरा गई और कृष्ण को पकड़ कर उसके दो तीन थप्पड़ मारे। ब्राह्मण के चरणों में गिर के फिर प्रार्थना की कि महाराज! अपराध को क्षमा करो अबके इस बच्चे को कोठरी में बंद किये देती हूँ, आप भोजन बना लें। आपको बड़ा कष्ट हुआ, आपका दिन भोजन बनाने में ही गया किन्तु भोजन का एक भी ग्रास मुख में नहीं गया। अनेक प्रार्थना करने पर ब्राह्मण भोजन बनाने पर तैयार हुआ। फिर खीर बनाई, थाली में परोस कर पुनः भगवान् से निवेदन किया। प्रभो! आज इस बालक ने नाक में दम कर दिया, आपको इतना काल हो गया, अभी आपने भोजन नहीं खाया, आइये भोजन कीजिये। इतनी प्रार्थना करके ब्राह्मण ने हाथ जोड़ कर आंख बन्द की कि फौरन कोठरी से निकल कर भगवान् कृष्ण आ गये और लगे गफ्फा पर गफ्फा लगाने। जब

तक ब्राह्मण आंख खोले तब तक कृष्ण ने थाली भर खीर उड़ा डाली। आंख खोलते ही ब्राह्मण फिर चिल्लाया। यशोदा दौड़ी, लकड़ी उठा कर लगी कृष्ण को पीटने, रोते हुये कृष्ण कहते हैं कि—

मैया! मोहि जिन दोष लगावै।
बार बार यह मोहिं बुलावे॥
हाथ जोड़ कर कहे प्रभु अइयो।
खीर खांड को भोजन खइयो॥
तब मैं रह न सकूं उठ धाऊं।
याको दीन्हों भोजन पाऊं॥

भगवान् के इन वाक्यों को सुन कर ब्राह्मण अचंभे में पड़ गया और कृष्ण के मुख से निकले हुये अक्षरों को मनन किया। फल यह हुआ कि—

सुनत गूढ़ मृदु हरि के बयना।
खुल गये विप्रहृदय के नयना॥

हरिः ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

मूर्तिपूजावाद
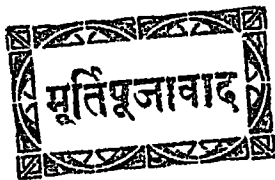
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौमहासायकचारुचापं
नमामिरामंरघुवंशनाथम् ॥ १

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परमसनेही॥

आजकल के मनुष्यों के अन्तःकरण में यह समा गया है कि दलीलों के आगे मूर्तिपूजा ठहर नहीं सकती। इस प्रकार का विचार प्रायः उन्हीं लोगों का है जिन्होंने न दलीलों को जाना है और न मूर्तिपूजा की फिलास्फी को समझा है। आज के व्याख्यान में हम दलीलबाजों की दलीलों को क्रम से सुनाते हुये उत्तर देंगे। हमें आशा है कि श्रोतावृन्द बड़ी सावधानी से सुनेंगे—

(१) हिन्दू लोग पाषाण पूजते हैं।

उत्तर—क्या यह इनका कथन सत्य है, क्या सच ही हिन्दू पाषाणपूजक हैं। आओ आज हम और आप इसका विचार

करें। प्रथम यहाँ पर हम इन्हीं से पूछते हैं कि जिनको तुम पाषाणपूजक बतलाते हो वे पूजन के समय कैसा पूजन और कैसी स्तुति करते हैं और क्या माँगते हैं। इसका उत्तर यही हो सकता है कि ये लोग "पाद्यं समर्पयामि विष्णवे नमः" "अर्घं समर्पयामि ब्रह्मणे नमः" "स्नानं समर्पयामि विष्णवे नमः" इत्यादि बोल बोल कर पूजन करते है और स्तुति के समय—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥ १ ॥

इत्यादि अनेक श्लोक पढ़ते है और मांगने के समय कभी कभी कहते है कि नाथ मैं अपराधी हूं आप की शरण आया हूं।

ना विद्या ना बाहुबल, ना खर्चन को दाम।
मुझसे पतित गरीब की, तुम पति राखो राम ॥

इत्यादि अनेक वर मांगते है। यह इनको लाचारी से कहना पड़ता है, ये लोग प्रथम तो इसके बतलाने में हम क्या जाने क्या स्तुति करते हैं क्या मांगते है किसको याद करते हैं इत्यादि बातें कह कर साफ निकलना चाहते हैं और यदि कोई पूछने वाला चालाकियों में इनका भी उस्ताद मिल जावे और वह इन प्रश्नों के उत्तर के लिये आग्रह कर बैठे, सतुवा बांध कर इनके पीछे पड़ जावे, तो फिर ये लाचार होकर झुँझला कर ऊपर लिखा उत्तर देते हैं।

12.208

इन्होंने जो पूजन बतलाया क्या "पाद्यं समर्पयामि, ब्रह्मणे नमः" इत्यादि पूजन क्या किसी पाषण का है और स्तुति का श्लोक बतलाया कि "त्वमेव माता" इत्यादि क्या यह स्तुति किसी पाषाण को है। क्या कोई ऐसा पहाड़ या पत्थर है कि जो वही पिता और वही भाई और वही मित्र और द्रव्य और विद्या आदि मनुष्य का सर्वस्व वही हो और देवों का भी देव हो। संसार में ऐसा तो कोई पहाड़ नहीं और न कोई ऐसा पहाड़ का समूह ही है, पहाड़ पत्थर तो क्या ऐसा तो संसार में कोई मनुष्य भी नहीं, अतएव यह स्तुति पहाड़ पत्थर की नहीं है। यदि आप थोड़ी देर ध्यान से देखें तो साफ मालूम हो जावेगा कि यह स्तुति तो जगदाधार ईश्वर की ही है। यह तो स्तुति की कथा रही अब प्रार्थना का हाल देखिये-पहाड़ को नाथ (स्वामी) कहना या स्वामी जिसको कहा जावे उसको पहाड़ बतलाना, पहाड़ से लाज बचाने की प्रार्थना करना यह अर्थ तो वही समझेगा कि जिसके ऊपर स्वामी दयानन्द की लकड़ी फिरी हो। आज जितने भी मज़हब संसार में हैं उन सबमें लाज बचाना आदि प्रार्थना ईश्वर से ही होती है.अतएव यह प्रार्थना ईश्वर की ही सिद्ध होती है, रहा याद (स्मरण) करना ये खुद कहते हैं कि हिमालय या विन्ध्याचल को याद नहीं करते किंतु रामचन्द्र या महादेव को याद करते हैं, रहो यह कि प्रभु रामचन्द्र या महादेव कौन हैं यह "अवतार" नामक पुस्तक में वेद से सिद्ध होगया कि प्रभु रामचन्द्र निराकर परमेश्वर का अवतार

हैं और उसी का अवतार शिव हैं अब स्तुति प्रार्थना स्मरण आदि से सिद्ध हुआ कि हिन्दू ईश्वर को स्तुति करते हैं और उसी की प्रार्थना और स्मरणादि करते हैं। जब कि हिन्दू स्तुति प्रार्थना आदि सब पूजन परमात्मा के करते हैं तब उनको पाषाणपूजक वही कह सकता है कि जो अक्ल के पीछे लाठी लिये फिरता हो। हां अलबत्ते उस समय ये कह सकते थे जब कि हम स्तुति पाषाण को करते अर्थात् पाषाण के आगे बैठ कर यह कहते कि हे पाषाण देव तुम जयपुर के पहाड़ से लुढ़काये या गिरगिड़ाये गये और नीचे लाकर तुमको छेनियों से ठोंक ठोंक छील छील कर ठीक किया तुम सुन्दर बन कर इस शहर में बिकने को आये, बाबू भूपालसिंह चौधरी ने खरीद कर तुमको इस मंदिर में स्थापित किया। तुम डेढ़ हाथ ऊंचे या गोल गोल मोटे ताजे हम को बर दो। इस प्रार्थना पर तो पाषाण-पूजन की शंका हो सकती थी किन्तु "त्वमेव माता" इत्यादि स्तुतियों से तो शंका भी नहीं होती, यह स्तुति ईश्वर की है इसको जान कर भी जो महात्मा झूठी शंका उठाते हैं उनको क्या कहें, यही कहा जा सकता है कि वे बुद्धिहीन विचारशून्य हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हे विश्वम्भर ! हे दयालो ! इनके अपराधों को क्षमा करो और अब इनको "ऋतम्भरा" बुद्धि दो ताकि यह लोग आगे को फिर कभी ऐसा धोखा न खावें। सज्जनों! अब ये इस तर्क में अपनी हार देखते हैं या कमजोर दलील के

कहने से लज्जा खाते हैं तब दूसरी दलील पर दौड़ लगाते हैं, गिरते पड़ते तर्क को पकड़ कर कह बैठते हैं कि—

(२) वाह! वाह!! वाह!!! सामने मूर्ति तो रक्खें पाषाण की और स्तुति करें परमेश्वर की। वह पाषाण ईश्वर की मूर्ति कैसे, क्या ईश्वर उस पाषाण में घुँस पड़े हैं जो पाषाण ईश्वर की मूर्ति हो गई?

उत्तर—एक बंगाली बाबू एक वक्त किसी पुरवा (छोटे से गांव) में पहुंच गया उसके पास उस समय न तो रुपया रहा और न पैसा। हां, साथ में जितना द्रव्य था सब नोट थे। इसने उस बस्ती के किसी मालदार काश्तकार को बुलाया। जब काश्तकार आया तब इसने एक हजार रुपये का एक किता नोट निकाल कर उसके आगे रक्खा और कहा कि इसके रुपये हमको ला दो। वह काश्तकार रुपये वाला तो जरूर था किन्तु मूर्ख भी दर्जे अव्वल का ही था। उसने सोचा कि यह क्या मामला है जब हम किसी शहर में जाकर एक पैसे के कागज मांगते हैं, तो पंसारी एक पैसे के लम्बे चौड़े चार ताव (तख्ते) देता है और यह बंगाली एक बिलस्त लम्बे और ६ अंगुल चौड़े कागज के एक हजार रुपये मांगता है। काश्तकार अपने मन में विचार करता है कि इस बाबू ने अपने मन में यह समझा है कि यह एक छोटा सा पुरवा है और इसमें सभी मनुष्य मूर्ख बसते हैं अतएव यहां से कुछ माल मारो यह खबर नहीं कि यहां पर घसीटू भी रहता है जो किसी के

भी जाल में कभी नहीं फँस सकता। यह विचार कर उसने कहा कि बाबूजी इस पुरवा में रुपया कहां यहां पर तो गरीब काश्तकार भूखों मरते है, मेरे पास भी तो रुपया नहीं। बार बार समझाने पर भी इस काश्तकार ने रुपया देना स्वीकार न किया। लाचार यह बंगाली बाबू समीप के किसी शहर में गया और वहां पर किसी सराफ को नोट देकर कहा कि यह नोट तो ले लो और इसके हजार रुपये हमको दे दो। सराफ ने नोट को ले लिया और एक हजार रुपया दे दिया। अब इनसे पूछिये कि क्या एक हजार रुपये उस नोट में धँस गये थे जो सराफ ने जरा से कागज के एक हज़ार रुपये दे दिये। इसका उत्तर यह है कि यह कागज़ सर्कार के हुक्म से जारी हुआ है, सर्कारी हुक्म से यह एक ही हजार का है यहां पर कागज का मूल्य एक हजार नहीं किन्तु गवर्नमेंट के हुक्म से वह एक हजार का हो गया, बस यही उत्तर आप मूर्ति में समझें। जिस प्रकार जरा सा कागज सर्कारी हुक्म से एक हजार का हो गया उसी प्रकार संसार के सर्कार ईश्वर की आज्ञा वेद से वह पाषाण पूजने के योग्य हो गया। जब कि वेद की आज्ञा से जिसकी मूर्ति बना कर प्रतिष्ठा कराई है जैसे नोट का न लेने वाला सर्कारी मुजरिम है इसी प्रकार मूर्ति के पूजन से इनकार करने वाला ईश्वर की आज्ञा को तोड़ने वाला ईश्वर के सन्मुख मुजरिम (अपराधी) है। जैसे गॅवार (मूर्ख) मनुष्य नोट की कदर नहीं जानता और सराफ आदि विद्वान् जानते हैं उसी

प्रकार मूर्ख मनुष्य मुर्तिपूजन की कद्र नहीं जान सकता और विद्वान् जान लेते है। आप नोट के एक हजार रुपये क्यों देते हैं, क्या एक हजार रुपये उस नोट में धँस बैठे हैं। जब कि आप उस नोट से कभी शिर नहीं हिलाते कि जिसके भीतर रुपये धँसे नहीं, जब कि आप विना भीतर रुपये धँसे नोट को एक हजार का मान रहे है तो फिर आप का वह कौन हक़ (स्वत्व) है कि जिसको लेकर मूर्ति में ईश्वर के धँसने का प्रश्न उठाते हैं। ज़रा दूसरे प्रकार से भी समझ लीजिये और ज़रा फोटू का भी दृष्टान्त सुनिये—फोटू को तो आप भली भाँति जानते हैं क्योंकि आपने कई एक बार फोटू उतराया होगा। आहा! जिस समय किसी को फोटू उतरवाना होता है उसको एक दिन पहले से ही सोच पड़ती है कि कल फोटू उतरवाना है। अनेक बन्दोवस्त होने लगते हैं। झगड़ू नौकर को बुला कर समझाया जाता है कि नाई को सुबह साढ़े चार बजे ही बुला लाना ताकि वह पांच बजे से पेश्तर ही हजामत बना दे। क्यों रे झगड़ू क्या हमारे डेस्क में कोई काला कोट है। झगड़ू उत्तर देता है कि बाबूजी आपने ही तो नीलाम कर डाला था। बाबूजी बोले अच्छा नही हो तो फिर मास्टर रघुवरदयाल का ही कोट माँग ला। क्योंकि विना काले, कपड़ों से फोटू साफ आवेगा नहीं। इस प्रकार के अनेक बन्दोवस्त करके रात को सोते है और प्रातःकाल के चार भी नही बजने पाते कि फिर फोटू का भूत सवार है।

अरे झगड़ू दौड़ दौड़ जल्दी से नाई को बुला, दिन निकल आया। झगड़ू बेचारे की आफत, नींद पूरी नहीं हुई, घण्टा भर सोने नहीं पाया, फिर आफत सवार हो गई। झगड़ू जैसे कैसे उठा और आँख मलता हुआ नाई के दरवाजे पर पहुंचा। नाई को सैकड़ों आवाजें लगा रहा है। खवास—अरे घदलू उठ बाबूजी बुलाते हैं। सैकड़ों आवाजें देने पर भी नाई करवट नहीं बदलता। इधर बाबूजी नाई के आने में देर समझ कर उसको बुलाने के लिये मनुष्य पर मनुष्य भेज रहे हैं। धीरे धीरे ४५ मिनट में नाई के दरवाजे पर आधा दर्जन नौकर जा डटे। यदि नाई एक घण्टा और न उठे तो कोई आश्चर्य नहीं है कि बाबूजी खुद ही नाई के किवाड़ खटखटावें। कारण यह है कि इन को तो यह फोटू का भूत पूरी तौर से चिपट बैठा है। खैर, चिल्लाते चिल्लाते कहीं नाई ने भी करवट बदली। नाई को खबर पड़ी कि दर्वाजे पर बहुत से मनुष्य जमा हो गये हैं, अपने मन में विचारता है कि इसका कारण क्या है। नाई ने अपने मन में समझा कि हो न हो घर में आग लग गई है अन्यथा इतने मनुष्यों का दरवाजे पर काम ही क्या था यह विचार कर नाई खटिया से उठ रोते हुए बाहर को आया। बाहर आकर क्या देखता है कि बाबू बी० बी० एल० वर्मन के नौकर दर्वाजे पर डटे हैं नाई का नीचे का सांस नीचे और ऊपर का ऊपर रह गया और इधर झगड़ू रोते हुए नाई को देख कर समझा

कि इसके घर में कोई मृत्यु हो गई, यह समझ कर फौरन बोल उठा कि वाहरे फोटू, फोटू क्या है प्लेग का भतीजा है। फोटू ने तो अपने आने से पहले ही भोग लगाना शुरू कर दिया। ६-७ नौकरों को देख कर नाई ने कहा कि आज क्या है, तुम क्यों आये हो? नौकरों ने कहा कि तुम को बाबूजी बुलाते हैं। नाई बोला कि खैर तो है, आज माजरा क्या है कि पांच बजने से पहले ही बाबू बुला रहे हैं। बाबूजी तो हमेशा आठ बज कर ५६ मिनट पर उठा करते थे। सुन कर झगड़ू बोल उठा कि भाई साहब आज बाबूजी का फोटू उतरेगा अपनी पेटी लेकर जल्दी चल। अस्तु, पेटी लेकर नाई आया और उधर पानी गर्म हो गया। बाबूजी हजामत बनवाने लगे ही थे कि इतने में ही फोटूग्राफर भी आ गया। बाबू हाथ में शीशा (दर्पण) लेकर बड़े गौर से देख रहे हैं कि कहीं खूंटी न रह जावे। बाल बनवाने के बाद बाबूजी ने तेल लगा कर स्नान किया, कपड़े पहिन कर कुर्सी पर बैठे। अब फोटूग्राफर ने अपना केमरा लगाया, केमरे में बाबूजी को देख कर कुर्सी के पास आया और बाबूजी से कहने लगा कि बाबूजी क्या वाहियात बैठक बैठे हो, फोटू बिगड़ जावेगा, हाथ ऐसे करो। इतना कह कर फोटूग्राफर ने फिर जाकर केमरा में देखा। केमरे में बाबूजी को देख कर फिर बाबूजी के पास आया और पैरों को दो झटके देकर बोला कि पैरों को ऐसे रक्खो जी, मालूम होता है कि कभी आपने फोटू नहीं उतराया।

अब बेचारे बाबूजी सुकड़े बैठे हैं कि कहीं फोटू न बिगड़ जावे इस भय से हाथ पैर कुछ नहीं हिलाते। उस समय में यदि नाक पर मक्खी बैठ जावे और उसके उड़ाने के लिये अंगुली उठाई जावे तो फोटू को देख कर मारे हँसी के पेट फूल जावेगा और जो कहीं फोटू उतरने के समय में आंख की पलक नीचे गिर गई तब तो फोटू न बाबूजी का रहा और न स्वामी तुलसीराम का, यह फोटू तो सूरदास का ही जावेगा ईश्वर न करे कि फोटू के समय में कहीं बाबूजी के वर्रं (भिरड़) या ततैया काट खावे। यदि ऐसा हो गया तो उछल कूद नाच गबड्डी का मज़ा आ जावै। अस्तु, बाबूजी का फोटू उतरा। फोटूग्राफर ने तीन कापी तैयार कर बाबूजी के हवाले कीं। बाबूजी ने एक फोटू अपने बाहर के दरवाजे पर लगा दिया। एक मनुष्य गङ्गा स्नान किये आता था उस फोटू को देख कर इसका मन प्रसन्न हो गया और चित्त में आया कि इस पर कुछ चढ़ाना चाहिये। आप जानते ही हैं कि हिन्दू पुजारीपन में फस्ट क्लास की डिगरी पाये हुये हैं, ये ३३ करोड़ देवता अपने पूज लें और मुसलमानों के गाज़ी मदार तक को बिना पूजे न छोड़ें। सच बात तो यह है कि संसार में समदृष्टि से देखनेवाली, सब जगह ब्रह्म को माननेवाली यदि कोई जाति है तो वह हिन्दू जाति है जो शत्रु को भी ब्रह्म की दृष्टि से देखती है। अपने प्राकृतिक स्वभाव से इस मनुष्य ने उस फोटू के ऊपर ज़रा

सा चन्दन लगा दिया और बहुत बढ़िया एक दो पैसे का फूल का गजरा (माला) चढ़ा दिया। इतना कर वह मनुष्य तो अपने घर को चला गया। अब पौने नौ बजे बाबूजी उठे, बाहर निकले, फोटू की तरफ दृष्टि पड़ते ही बाबूजी का मन बाग बाग हो गया। कोठी के अन्दर जाकर मुनीम लोगों से ज़िक्र किया कि आज कोई ऐसा सज्जन पुरुष आया कि हमारी फोटू पर बहुत बढ़िया गजरा चढ़ा गया, गजरा पहिने हुये फोटू बहुत ही सुहावनी (खुशनुमा) मालूम होती है। मुनीम लोग भी देख देख कर खुश होते हैं और बाबूजी तो आज इतने खुश हैं कि खुशी के मारे फूले नहीं समाते। यह तो पहले दिन का समाचार है अब दूसरे दिन की कथा सुनिये—दूसरे दिन कोई हमारे जैसा दुष्ट चला आया और चाकू से उस फोटू के आंखों के नीचे के हिस्से को रगड़ गया। प्रातःकाल उठ कर फिर बाबूजी फोटू के पास पहुंचे। पास पहुंचते ही जो फोटू देखा कि मारे क्रोध के बाबूजी आपे में न रहे और लगे हजारों गालियां देने। गालियां देते हुए कोठी के अन्दर पहुंचे। बाबूजी की गालियों को सुन कर मुनीम लोग आ गये और कई एक मनुष्य बाहर से भी चले आये। बाबूजी से पूछा कि क्या है, मामला क्या है, इतना क्रोध क्यों आया? बाबूजी बोल उठे कि क्रोध क्यों आया, क्रोध आने का कारण ही है, कोई बेवकूफ ऐसा आया कि फोटू का ही सत्यानाश कर गया। मुनीम पूछते हैं कि क्या कर गया कुछ कहो भी

तो। बाबूजो बोले अजी क्या कहें, कहें तो तब जब कहने की बात हो, जरा जाकर बाहर तो देखो। बड़े मुनीमजी फोटू के पास पहुंचे तो जाकर क्या देखा कि कोई दुष्ट फोटू की नाक काट गया।

सारांश यह है कि जब कोई इनकी फोटू का पूजन करे उस पर माला चढ़ा दे तो ये खुश होते हैं ये फूले नहीं समाते और यदि कोई मनुष्य इनकी फोटू का अङ्ग भङ्ग कर दे तो यह नाराज़ होते हैं और नाजायज हरकत करनेवाले को गालियां देते हैं अब इनसे पूछिये कि क्या आप उस फोटू में धँस बैठे जो सत्कार से प्रसन्न और अनादर से क्रुद्ध होते है। जब उस में नहीं धंसे तो फिर ईश्वर के धँस बैठने का सवाल कैसा ? आप तो मूर्ति में धंसे भी नहीं तो भी आदर अनादर से प्रसन्न और क्रोध करते हैं और ईश्वर तो मूर्ति में व्यापक है। यदि इस मूर्ति में ईश्वर नहीं तो फिर आपही बतलावें कि वह रहता कहाँ हैं। जैसे कड़े में सुवर्ण ताना और बाना हो गया है और जैसे घट में मिट्टी ताना और बाना हो गई है, जैसे कपड़े में सूत ताना और बाना हो गया है इसी प्रकार—

"स ओत प्रोतश्च विभुः प्रजासु"

इसी मन्त्र का अनुवाद गोस्वामी तुलसीदास जी इस प्रकार लिखते हैं कि—

तुलसी मूरति राम की, यों घट रही समाय।
ज्यों मेहदी के पात में, लाली लखी न जाय॥ १॥

दिल के आईने में है तसवीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

वह कौन जगह है कि जहां वह नहीं, संसार के जर्रे ज़र्रे में धँसा बैठा है। क्या कोई मनुष्य संसार में ऐसा है कि जो ईश्वर को मानता हो, ईश्वर की सत्ता का कायल हो और फिर यह कह उठावे कि इस मूर्ति में ईश्वर नहीं है। समाजी भले ही कह दें किन्तु इनको छोड़ कर दूसरे धर्म वाला कोई नहीं कह सकता। इनकी तो लीला ही अजब है यह कहने सुनने में अकल से बाहर रहते हैं। जो अकल से काम ही नही लेता ऐसा और आफ सेन्स सब कुछ कह सकता है। जब ये इस तर्क पर भी चारों खाने चित्त गिरते हैं तब यह कह बैठते हैं कि—

(३) मूर्ति तो कारीगर की बनाई है।

उत्तर—क्या सच ही मूर्ति कारीगर की बनाई है? इन सज्जनों से पूछिये कि उस मूर्ति में कारीगर ने क्या क्या बना दिया, शायद जिस पाषाण से यह मूर्ति बनी है वह कारीगर ने बनाया हो। अजी भाई साहब ज़रा कुछ सोच विचार कर कहो। कारीगर ने उस मूर्ति में कुछ नहीं बनाया केवल मूर्ति के ऊपर का फ़िजूल अंश उतारा है कि फौरन भीतर से बनी बनाई दिव्य मूर्ति निकल आई। क्या ऊपर के फिजूल अंश उतारने वाले को बनाने वाला कहाजावेगा। ऐसा न कहिये नहीं तो लाखों रुपयों की जायदाद पर पानी फिर

जावेगा। हल जोतने वाला काश्तकार जमींदार को नोटिस दे देगा कि मैं मालगुजारी नहीं दूंगा क्योंकि जो खेत मैं जोतता हूं वह मैंने पैदा किया है। वाक़ई में जिस प्रकार कारीगर ने फिजूल अंश मूर्ति के ऊपर से उतारा है उसी प्रकार इस काश्तकार ने भी झाड़ घास आदि अंश को अपने हल से दूर किया है। एक काश्तकार ही खेत का बनाने वाला नहीं होगा किन्तु मकान में झाड़ू लगाने वाला, मकान का बनाने वाला, और बर्तन मांजने वाला, बर्तन बनाने वाला, और शिर के बाल बनाने वाला नाई शिर बनाने वाला हो जावेगा, यदि यह सब मिल कर दावा कर दें तो इस नये समाजी कानून के मुताबिक हाथ से खेत निकल जावे, मकान पर झाड़ू देने वालों को कब्जा मिल जावे और जितने मनुष्य बाल बनवाते हैं उनके शिरों के मालिक नाई हो जावेंगे। अब शिरों का स्वत्त्व (हक) नाइयों को होगा चाहे जो कुछ करें ठोकें पीटें सुधारें बेच डालें अच्छा कानून चलाया संसार भर को रुण्ड बना कर छोड़ा। क्यों न हो समाजियों की ही तो तर्क है ये लोग तो तर्क उठाने में वीर हैं फिर तर्क उलटी पड़े चाहे सीधी इस बात का विचार करना यह इनका काम नहीं है। आओ अब इसका विचार करें कि मूर्ति किस की बनाई है, मूर्ति किस चीज़ की बनी है। जिन लोगों ने साइन्स पढ़ा है वह इस विषय को अच्छी तरह जानते है कि जमीन ही कुछ मुद्दत के बाद पत्थर बन जाती है। अच्छा, पृथिवी किस चीज

से बनती है जल से, और जल बनता है अग्नि से, अग्नि को पैदा-यश है वायु से और वायु आकाश से बनता है अर्थात् आकाश से वायु बनता है। वायु से अग्नि और अग्नि से जल और जल से पृथिवी, जो पृथिवी है वही पाषाण है। इन पांच तत्वों में से आकाश और वायु ये दो अमूर्त हैं और अग्नि जल पृथिवी यह तीन मूर्तिमान हैं।

अब इन्हीं से पूछिये कि पृथिवी किस कारीगर ने बनाई। इनको मानना पड़ेगा कि किसी समाजी कारीगर ने नहीं बनाई किन्तु यह उस कारीगर ने बनाई है कि जिसने सूर्य चन्द्र तारे आदि समस्त ब्रह्माण्ड को बनाया है किन्तु जिसके रचे ब्रह्माण्डों के जानने की हम में शक्ति भी नहीं। यदि समाजी बृहदा-रण्य में कही भूतोत्पत्ति को जानते तो कभी यह प्रश्न ही न उठाते कि मूर्ति तो कारीगर की बनाई है। क्या कोई समाजी इस जमीन पर ऐसा है जो यह साबित करदे कि मूर्ति कारीगर की बनाई है, हम को आशा नहीं कि कोई ऐसा हो। मुझे इसका बड़ा सन्देह है कि यह मूर्ख समुदाय (दयानन्द पार्टी) विद्वानों के साथ क्यों उलझता है।

(४) प्रश्न यह है कि मूर्ति के पूजन से ईश्वर प्रसन्न कैसे होगा अर्थात् दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष कैसे ?

उत्तर—आप लोग अपने मन को स्थिर करके देखें कि यह किस दुष्ट भाव से भरा प्रश्न है "दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष कैसे" अर्थात् इनके चित्त में इस प्रकार के भाव भरे हैं कि

हम खाँय तो हमारे नाना का पेट भरै कैसे, हम कपड़ा पहिनें तो हमारे बाप का शरीर कैसे ढका जावै। हम औषधि लगावें तो हमारी नानी का फोड़ा कैसे अच्छा हो। ठीक है देश उद्धारको ठीक, तुम्हारे भिन्न भिन्न संदेह पर भिन्न भिन्न दोष हैं यदि आप ज़रा भी सोचें, तनक भी सोच समझ कर बुद्धि से काम लें तो एक भी दोष न रह जावेगा।

इस प्रश्न से जान पड़ता है कि प्रश्नकर्त्ताओं ने ईश्वर को जगत् से भिन्न समझ रक्खा है परन्तु क्या गम्भीर बुद्धिवाला पुरुष इसको स्वीकार कर लेगा कि ईश्वर से जगत् भिन्न है। जब हम लोग एक छोटे से कुन्द के फूल की सुन्दरता को देखते हैं तो उसमें भी एक वस्तु माधुरी ऐसी अपूर्व पाते हैं कि उस पर काली पीली चितकवरी सैकड़ों तितलियाँ मण्डरा रही हैं, मकरन्द चूसने के लिये सैकड़ों भौंरे गुञ्जार कर परिक्रमा दे रहे हैं, जिसने पाया मस्तक पर रक्खा, इस फूल में यह गुण कहां से आ गया। पक्षियों के पक्ष में भिन्न भिन्न प्रकार की सुन्दरता कहाँ से आ गई, चन्द्र और ताराओं में ठीक ठीक अपनी कक्षा में स्थित रखने की ताकत किस के घर से आई, पृथिवी में आकर्षण शक्ति सूर्य में तेज शक्ति, क्या किसी महल में से पहुंच गई। यदि ऐसा है तो ईश्वर में तो एक भी शक्ति नहीं फिर वह सर्वशक्तिमान् कैसा और ऐसे के मानने से क्या लाभ ? जब कि संसार के समस्त पदार्थों में शक्तियों का आगमन ईश्वरशक्ति से है फिर ईश्वर से संसार

में भेद कैसा ? संसारी पदार्थों में जितनी मनोहरता है वह उसी
परमात्मा की मनोहरता तो दिखाई दे रही है और जितनी
शक्ति है सब उसी की तो है सिवाय उसके कुछ भिन्न वस्तता
नहीं, समस्त संसार ईश्वर का ही तो रूप है फिर भेद कैसा ?

यदि मान भी लिया जावे कि ईश्वर और जगत् में भेद है
और दोनों भिन्न भिन्न हैं । मान भी लिया जावे कि हम पूजन
मूर्ति का करते हैं और ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं तो फिर
यह कौन तर्क से असम्भव है । इस सौभाग्य को अधिक दिन
भी नहीं हुए कि देहली में दरबार हुआ था । जिस रोज देहली
दरबार में प्रभु पंचम जार्ज सिंहासनारूढ़ हुए उस दिन बम्बई के
समुद्र से लेकर हिमालय की चोटी तक और कलकत्ते के
समुद्र से लेकर काबुल तक भारतवर्ष के नगर नगर ग्राम ग्राम
में दरबार का उत्सव मनाया गया है । बड़े बड़े मण्डप बनाये
गये, अनेक प्रकार के दीपक झाड़ फानूस गैस आदि सजाये
गये और उन मण्डपों में महाराजाधिराज के फोटू लटकाये
गये । उन फोटुओं पर उत्तम उत्तम फूलों की माला पहनाई गई ।
एक राज का प्रधानाधिकारी सिंहासन पर बैठा, उसके आगे बड़े
बड़े कवियों ने कविता सुनाई, बड़े बड़े जमींदारों ने नज़राने
रक्खे, झुक कर दण्डवतें कीं, अनेक प्रकार के बाजे बजाये,
बन्दूकों और तोपों से सलामी हुई, आतिशबाजी छुड़ाई । यह
क्यों, इस शताब्दी में इतना क्यों । क्या इन दीपकों का उजियाला
महाराजाधिराज पञ्चम जार्ज के कैम्प तक पहुंचा था । यदि

ऐसा हुआ तब तो आपने महाराज को कष्ट पहुंचाया, क्या इन बन्दूकों और तोपों की आवाज़ महाराज के कान तक पहुंची, यदि ऐसा हुआ तब तो आपने दरबार नहीं, महाराज के कान फोड़ने का सामान किया। ऐसा क्यों किया इसका मतलब क्या। यदि कहो कि हमने अपने शहंशाह की प्रसन्नता के लिये किया तब यदि भक्त परमात्मा के लिये ऐसा करें तो फिर चिढ़ो क्यों। क्या उस स्थान पर महाराज उपस्थित थे जो आपने उनको प्रसन्न किया? यदि कहो कि वहां तो महाराज उपस्थित नहीं थे किन्तु जब कभी यह बात वे सुनेंगे तो प्रसन्न अवश्य होंगे। भला फिर जो परमात्मा सब स्थानों में स्थित होकर भक्त को पूजा को देख रहा हो उसकी प्रसन्नता पर हुज्जत-कैसी? यदि कहो कि पंडितजी महाराज आप राज के कानून को नहीं जानते यह ऐसा ही होता है तो फिर ईश्वर के कानून से विरोध क्यों? यदि कहो कि यह कुछ नहीं यह तो राजभक्त प्रजा का कर्त्तव्य है तो ईश्वरभक्त प्रजा के कर्त्तव्य में शंका कैसी? यदि कहो कि राजभक्त अपनी भक्ति के उद्गार को रोक नहीं सकते तो फिर ईश्वरभक्त के उद्गार को रोकनेवाले तुम कौन? जब कि तुम सब काम अपने आप करते हो, जब कि दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष तुम खुद मानते हो फिर शङ्का कैसी, विवाद क्यों? जब कि दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष तुम्हीं ने माना तब इस पर महाभारत का युद्ध कैसा? जब कि सारा संसार दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष मान रहा है फिर ईश्वर-

भक्त के ऊपर शङ्काओं की बौछार क्यों ? जब दूसरे के पूजन से दूसरा प्रसन्न होता है तब तो यही कहना पड़ता है कि शंका करने वालों में न समझने की बुद्धि है और न शङ्का करने का विचार।

(५) एक यह भी शंका है कि निराकार ईश्वर साकार होगा कैसे, उसकी मूर्ति बनेगी किस प्रकार ?

उत्तर—एक समय सेठ मोतीलाल के यहां से सेठ गोवर्धन लाल रुपये सैकड़े के ब्याज पर ५००) रुपये कर्ज ले गया। ६ महीने के बाद सेठ मोतीलाल ने अपने मुनीम से पूछा कि गोवर्धनलाल जो रुपये ले गया था क्या वह रुपये आगये ? मुनीम ने कहा कि जी हां जिस दिन ४ महीने पूरे हुये उस दिन ५२० रुपये गोवर्धनलाल के आ गये। सेठ मोतीलाल ने कहा कि उसका खाता तो दिखलाओ। सेठजी की आज्ञानुसार मुनीम खाता उठा लाया। सेठजी ने देखकर कहा कि मुनीम जी इसके खाते में तो अभी बाकी है उसको लिख दो कि जो कुछ और बकाया है इसको भी भेज दो ताकि खाता बेबाक कर दिया जावे। मुनीमजी ने कहा कि इसमें तो कुछ भी बाकी नहीं। सेठजी बोले कि यह गोल गोल क्या है क्या कम दिखाई देता है। मुनीम बोला कि यह खाते के नीचे गोल शून्य (ज़ीरो) है। सेठजी बोले कि इसी के लिए तो कह रहा हूँ उसको लिख दो कि यह ज़ीरो जल्दी भेज दे वरना इसका ब्याज लिया जावेगा। मुनीम बोला सेठजी यह कोई रुपया पैसा नहीं है

यह तो कुछ नहीं का निशान है। सज्जनों! सोचो तो कि जो कुछ नहीं उसके लिये तो गोल गोल लड्डू कैसी मूर्ति बने और जो सब कुछ है यदि उसकी मूर्ति बन जावे तो पेट में दर्द क्यों उठे। यदि निराकार की मूर्ति नहीं बनती तो फिर संसार में कलम दवात स्याही का काम ही क्या। छापेखाने बन्द क्यों नहीं कर दिये जाते। वेद और सत्यार्थप्रकाश क्यों खरीदा और बेचा जाता है। क्या इसमें कुछ और है। और कुछ नहीं केवल निराकार शब्द की मूर्ति (अक्षर) हैं। जब ये लोग निराकार की मूर्ति खुद बना रहे हैं फिर शंका कैसी? आश्चर्य की बात है कि आप ही तो निराकार की मूर्ति बनावें और आपही शङ्का करें।

(६) एक यह भी शङ्का हुआ करती है कि मूर्ति के टूटने पर ईश्वर की मृत्यु हो जावेगी।

उत्तर—ऐसी ऐसी तुच्छ शंकाओं का उत्तर देना केवल समय का व्यर्थ खराब करना है और इन शंका करने वाले महात्माओं को तो क्या कहें। यह शंका कितनी नास्तिकता से भरी हुई है इसका विचार पाठक स्वतः करलें। यदि ऐसा ही है, व्यापक मूर्ति के टूटने पर ईश्वर का नाश हो जाता है तो शरीर की मृत्यु होने पर जीव भी मर जावेगा। मूली के खाने से ईश्वर भी खाया गया क्योंकि उसमें भी तो ईश्वर व्यापक है। इसी प्रकार कपड़े के फटने पर ईश्वर फट जावेगा। लकड़ी के जलने पर ईश्वर जल जावेगा। पकाये अन्न के सड़ने पर

ईश्वर सड़ जावेगा। चने के चवाने से भी ईश्वर चवा लिया गया। जब आप इन स्थानों पर एक भी शङ्का नहीं करते तो फिर मूर्ति पर शङ्का करने का स्वत्व आप को कहां से मिल गया ? जिस समय छोटा सा लड़का पाठशाला में जाता है उस समय उसको न तो साइन्स पढ़ाई जाती है और न ग्रामर (व्याकरण), उस समय उस नन्हें से बच्चे को अ० आ० इ० ई० या अलिफ० बे० पे० या ए० बी० सी० डी० आदि आदि प्रारम्भिक अक्षर सिखलाये जाते हैं लड़के को अक्षर लिख कर बतलाते हैं। जब वह इनको पहचानने लगता है तब उसको इनका लिखना सिखलाया जाता है। वह लड़का इन अक्षरों को पाटी (तख्ती) पर लिख कर गुरुजी को बतलाता है, गुरुजी उन्हें देख कर आज्ञा करते है कि पाटी धो कर घोट कर फिर इन्हीं को लिखो। इसी प्रकार प्रत्येक लड़का दिन भर में चार चार या बाज बाज लड़का आठ आठ बार (अक्षरों को लिख फिर मिटा, फिर लिख फिर मिटा) इसी काम को करता है और यह काम न आज से है और न परसों से किन्तु जिस दिन से संसार में अक्षर लिखने की परिपाटी का आरम्भ हुआ उस दिन से आज तक पढ़ने वाले लड़के ऐसा ही करते आते है फिर आप यहां पर यह शंका क्यों नहीं करते। शब्द की जिस शब्द की मूर्ति ये अक्षर हैं वह भी तो निराकार है और उसके आकार (उसकी मूर्ति) जो ये अक्षर हैं ये कल्पित किये गये हैं ये फ़र्ज़ी हैं। इसी कारण से भिन्न भिन्न देशों में अक्षरों के

आकार भिन्न भिन्न प्रकार के देखने और लिखने में आते है, किसी ने किसी प्रकार का आकार कल्पित कर लिया और किसी ने किसी प्रकार का। वास्तव में अक्षर आकारशून्य हैं। जिस समय लड़का मद्रसे में पढ़ने जाता है यदि उस समय कोई इन शंका करने वालों में से जाकर लड़के को समझा दे कि अक्षरों के आकार स्वरूप नहीं हैं अक्षर तो निराकार हैं और इसी बात को वह लड़का अपने मन में रख ले तो फल यह होगा कि लड़का मूर्खानन्द सरस्वती हो जावेगा। यदि ईश्वर की मूर्ति अक्षरों की भांति सोलह आने झूठी भी हो तथापि मूर्ति बनाने से ईश्वर की उपासना तो होती है क्योंकि मूर्ति के विना उपासना ही नहीं हो सकती। उपासना का अर्थ यह है कि 'उप' नाम समीप में आसन लगा कर बैठना। यदि ईश्वर की मूर्ति बना कर पास नहीं बैठोगे तो उपासना ही नहीं बनेगी किन्तु आप सब शंका ईश्वर की मूर्ति पर ही करते हैं। यदि मूर्ति के टूटने से ईश्वर का नाश हो जाता है तो पाटी के अक्षरों के मिटने से भी असली अ० आ इ० ई० का नाश हो जावेगा किन्तु यहां तो आपको शंका भी नहीं होती।

(७) मूर्ति रूप नकली है, क्या नकली से भी कभी असली का ज्ञान होता है?

उत्तर—संसार में प्रायः सभी ज्ञान नकलों के द्वारा होते हैं ज़रा मन को एकाग्र करके सुनिये। प्रथम दृष्टान्त यह है—

इतिहास के जानने वालों में यह दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि एकलव्य नामक कोई भिल्ल किसी समय धनुर्विद्या सीखने के लिये द्रोणाचार्य के समीप गया और प्रणाम कर बोला कि हे प्रभो ! मैं धनुर्विद्या सीखने आया हूँ सो कृपा कर सिखलाइये। द्रोणाचार्य ने कहा कि तुम जङ्गली भील हो तुम्हारे लिये इतना ही तीर चलाना आवश्यक है कि कोई बाघ भालू मिले तो मार लो। तुम इतना जानते ही हो, इसको और गहरी विद्या सीख कर क्या करोगे। यह विद्या क्षत्रियों के लिये है जो धनुर्वाण से प्रजा का पालन करते हैं। कितना ही भील ने कहा पर द्रोणाचार्य ने स्वीकार न किया और अर्जुनादि की भी यही सम्मति हुई तब बेचारा भील अपना सा मुंह ले कर चला आया।

पर उस भील को धनुर्विद्या सीखने की ऐसी चाह लगी थी कि उस से फिर भी न रहा गया और यह भी उसके जी में जमा था कि बिना गुरू कोई काम ठीक नहीं होता है। तब उस ने मिट्टी की द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाई और उसी को प्रणाम कर उसके आगे धनुर्वाण रख आपही आप निशाना लगाना सीखने लगा। जब भूले तब आपही अपने कान ऐंठने लगे और फिर द्रोणाचार्य्य को प्रणाम कर अभ्यास करे। यों करते करते कुछ दिनों में इसे एक प्रकार की अच्छी बाणविद्या आ गई।

एक दिन अर्जुन वन में टहल रहे थे इतने में देखा कि

एक जन्तु भागा चला जाता है और उसके मुंह में बाणों का लक्षाच्छा भरा हुआ है जिससे वह बोल नहीं सकता। अर्जुन को आश्चर्य हुआ कि, इस रीति से किसने बाण मारे कि यह मरा भी नहीं और बोलना बन्द हो गया। अर्जुन यों सोचता विचारता उसी ओर खोजने लगा तब तक देखा कि एक भील धनुर्बाण लिए टहल रहा है।

अर्जुन ने पूछा कि क्या इस पशु के मुंह में तुमने तीर मारे हैं। भील बोला हां, वह बड़ा कोलाहल करता था तब हमने तीर से उसका मुंह बंद कर दिया। अर्जुन ने कहा वाह ! तुमने अपूर्व और दुर्घट काम किया। उसने कहा गुरू की कृपा से कोई काम दुर्घट नहीं रहता। अर्जुन ने पूछा तुम किसके शिष्य हो। वह बोला द्रोणाचार्य्य का शिष्य हूं। यह सुन अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ कि द्रोणाचार्य्य ने इस भील को वह विद्या सिखलाई जो हमको भी न सिखलाई।

अर्जुन ने चट द्रोणाचार्य्य के समीप जा आक्षेप पूर्वक कहा कि क्या आपने चोर और लुटेरों को भी धनुर्विद्या सिखलाना आरम्भ किया और उनको वे हथकण्डे सिखलाए कि जिनका हम लोगों ने नाम भी नहीं सुना। सुनते ही द्रोणाचार्य्य चौंक उठे और बोले कि सर्वथा मिथ्या है ! तुम्हारे ऐसे क्षत्रिय-कुल-भूषणों के रहते हमें क्या पड़ी थी कि भीलों को शिष्य बनावें।

अर्जुन ने कहा हमारे साथ चलिए और मुकाबला कीजिए। यों अर्जुन द्रोणाचार्य्य को साथ ले जङ्गल में उसी भील के पास

पहुंचे। भील ने देखते ही द्रोणाचार्य्य को गुरू गुरू कह के प्रणाम किया। द्रोणाचार्य्य का क्रोध और भी दूना हुआ और उसने भील से पूछा कि कह मूर्ख मैंने तुझे कब बाणविद्या सिखलाई? भील प्रणाम कर बोला कि प्रभो! इस मूर्ति से तो आपने नहीं सिखलाई पर दूसरी मूर्ति से सिखलाई है, इधर आइये तो दिखला दूं।

तब अर्जुन और द्रोणाचार्य्य ने आगे बढ़ के देखा कि उसने द्रोणाचार्य्य की मिट्टी की एक मूर्ति बना रक्खी है और उसी के आगे धनुर्बाण रख छोड़े हैं। तब द्रोणाचार्य्य का क्रोध उतरा और दोनों द्रोणार्जुन बहुत चकित हुए।

देखिये द्रोणाचार्य्य को विदित भी न था पर भील को नकली मूर्ति के विश्वास पूर्वक आराधन का कैसा फल हुआ।

किसी बादशाह ने वज़ीर से कहा कि "आप हिन्दू लोग जानते है कि वह अल्लाहताला मिट्टी पत्थरों का नहीं है फिर भी उसके नाम से आप लोग इन दुनियवी चीजों को पूजते हैं तो वह खुश होगा या नाराज़" वज़ीर ने कहा जहांपनाह ६ महीने की मोहलत मिले तो मैं इसका जवाब सोचूं। बादशाह ने मंज़ूर किया।

उसी बादशाह को राजधानी में एक वेश्या आई और जिस पथ से रोज सांझ को बादशाह की सवारी निकलती थी ठीक उसी सड़क पर एक कमरे में उसने अपना जमावड़ा जमाया और एक बादशाह साहब की बड़ी तस्वीर बना के ऊंची

चौकी पर रख दी और उसी के सामने हाथ जोड़ बैठने लगी (कौन जाने वज़ीर साहब का भी इसमें कुछ इशारा हो) बादशाह की सवारी जभी उस राह से निकले तभी उनकी आंखें उस पर पड़ती थीं और उन्हें कौतुक सा होता था कि मेरी तस्वीर पर यह क्यों क़ुर्बान होती है । दर्याफ्त करने से बादशाह को मालूम हुआ कि वह उसी तस्वीर के सामने कभी फूलों के गुच्छे रखती है, कभी इत्र और कभी पान रखती है और कभी उसी तस्वीर को माला पहनाती और कभी उसी की मिन्नत कर हाथ बांध उसी के सामने खड़ी होती है। यह सुन बादशाह साहब और भी उधर झुके और जभी उस ओर जाते तभी उसे देखते और गाड़ी धीमी कर लेते, दूसरी ओर जाना होता तो भी फेर से उसी ओर आ पड़ते और उसे उसी तरह हाथ जोड़े देख और भी खुश होते।

आखिर एक रोज बादशाह से न रहा गया और चुपचाप घोड़े पर चढ़ दौड़े और उसके कमरे में जा उस से पूंछा कि तू हर वक्त मेरी तस्वीर के आगे सिजदा किया करती है इस से तेरी क्या मनशा है । उसने शिर झुका पैर चूम कहा कि जहांपनाह न तो मुझे ऐसा कोई इल्म है और न ऐसी बुलन्द किस्मत ही की उम्मीद रखती हूं कि कभी हुजूर की कदमबोसी कर सकूं तब क्या करूं हुजूर की तस्वीर ही के आगे अपने दिल का गुबार निकालती हूं। यह सुन उस की विचित्र प्रीति देख बादशाह साहब की आंखों से आंसू आगये और उससे कहा कि

"मैं तेरे अजीब वो गरीब इश्क से खुश हुआ अब मेरे साथ चल"।

बादशाह साहब उसे पालकी पर चढ़वा ले गये और बेगमों में दाखिल किया और खुद बखुद वज़ीर से कहने लगे कि "अब मूर्तिपूजा पर जवाब दरकार नहीं"। यहां पर नकली मूर्ति से ही असली बादशाह मिल गये हैं।

कृपा कर ज़रा मद्रसे में भी चलें। मद्रसे में मास्टर लड़के को समझाता है कि रेखा उसको कहते हैं कि जिसमें लम्बाई तो हो किन्तु मोटाई या चौड़ाई न हो। जब लड़का इस बात को समझ जाता है तब प्रोफेसर साहिब बोर्ड पर खड़ी (खरी) से एक लकीर खींचता है जो एक बिलस्त लम्बी और अंगुल भर चौड़ी होती है। उस रेखा को खींच कर लड़कों को बतलाता है कि देखो यह रेखा है यदि उस समय कोई लड़का यह बहस कर बैठे कि यह तो रेखा नहीं क्योंकि इसमें अंगुल भर चौड़ाई है आप ठीक रेखा खींचें जैसा कि आपने रेखा का लक्षण किया है। कैसा भी प्रवीण मास्टर हो किन्तु असली रेखा (जिस में चौड़ाई मोटाई न हो) कभी खींच ही नहीं सकता यह तो नकली रेखा है। अब जरा बिन्दु की भी कथा सुनलें। प्रोफेसर लड़कों को बतलाता है कि बिन्दु उसको कहते हैं जिस के टुकड़े न हो सकें। जब मास्टर बोर्ड पर खड़ी से एक गोल गोल निशान बना कर लड़कों को कहता है कि यह बिन्दु है। क्या सच ही वह बिन्दु है, एक दो की कौन कहे इसके तो

सौ दो सौ टुकड़े हो जावेंगे। प्रोफेसर असली विन्दु क्यों नहीं बनाता। मास्टर चाहे जितनी कोशिश करें सुई की नोक से भी काम क्यों न लें किन्तु असली विन्दु बन ही नहीं सकता। रेखा और विन्दु दोनों निराकार हैं और यह बोर्ड पर जो रेखा विन्दु बने हैं यह तो असली रेखा विन्दु की नकली मूर्ति हैं। यह रेखा विन्दु कैसे नकली किन्तु फल कैसा असली। इस नकली रेखा विन्दु के ऊपर से रेखागणित (तहरीर उक्लेदश) बना और उसी रेखागणित के जरिये से जमीन पर रेलगाड़ियां दौड़ गईं जिनके जरिये से महीनों का रास्ता एकही दिन में तै हो जाता है। इसी नकली रेखा विन्दु के जरिये से टेलीग्राफ तार दौड़ गया जिसके जरिये से हजारों मील के फासले पर मिनटों ही में खबर पहुंच जाती है। रेखा विन्दु कैसा नकली, फल कैसा असली, विलकुल सत्य, कहिये यहां पर नकली ही रेखा विन्दु से असली का ज्ञान हुआ या नहीं। जब कि संसार में रेखा विन्दु आदि अनेक ज्ञान नकली से हो रहे हैं फिर शंका कैसी। बहस का क्या काम। और भी लीजिये। जिस समय देहाती मदरसों में डिप्टी इन्सपेक्टर मदारिस मदरसे में आता है तो परीक्षा के वक्त (समय) वह विद्यार्थी को पूछता है कि हिमालय पहाड़ कितना ऊंचा है? तब लड़का इसका उत्तर देता है कि पैंतालीस मील ऊंचा है। फिर डिप्टी साहब प्रश्न करते है बतलाओ कहां पर है? यह सुन कर लड़का उस तरफ को जाता है कि जिधर दीवार पर एक लम्बा चोड़ा कागज़ लटक रहा

है। लड़का उस कागज पर लकड़ी रख कर कहता है कि हजूर यह है हिमालय, डिप्टी साहिब कहते हैं कि आलराइट।

यदि इस समय में कोई हुज्जतबाज यह हुज्जत कर बैठे कि हिमालय पहाड़ ४५ मील ऊंचा है और मदरसा २२ फुट ऊंचा है तो क्या २२ फुट ऊंचे मकान के अन्दर ४५ मील ऊंची वस्तु आ सकती है। क्या इसको कोई मान लेगा? हां अलबत्ते यह हो सकता है कि "हिमालय पहाड़ पर मदरसा"। यदि शिक्षा विभाग सब छोड़ कर इसी हुज्जत को मिटाने के लिये चिपट जावे तो भी मदरसे में हिमालय पहाड़ का आना सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि वास्तव में यहां पर हिमालय पहाड़ नहीं किन्तु नकशे में उसकी नकली मूर्ति बनी है। फिर डिप्टी इंस-पेक्टर पूंछता है कि गङ्गा हिमालय से निकल कर कहां गई? लड़का उत्तर देता है कि हरद्वार, सोरों, फर्रुखाबाद, कानपुर, इलाहाबाद, काशी आदि आदि शहरों के नीचे को बहती हुई समुद्र में गिरी है। डिप्टी इन्सपेक्टर कहता है कि यह ठीक कहता है। अब आप ही बतलावें कि नकशे में गंगा नकली है कि असली ईश्वर न करे कि असली गंगा मदरसे में आ जावें, यदि ऐसा हो गया तो फिर लड़कों की तो कौन कहे मास्टर और डिप्टी साहिब का भी पता न लगे कि किधर को चले गये। एक वर्ष जराही सोरों की तरफ बढ़ गयी थी इतने में हाहाकार मच गया था इस कारण यह तो वहां ही रहे तो अच्छा है। अब देखिये कि इस नकली हिमालय और नकली गंगा से लड़के को

असली का ज्ञान हो जाता है कि नहीं। इससे आप समझ गये होंगे कि नकली से असली का ज्ञान होता है।

जैसे ये शंका करते हैं ऐसे ही हमारी भी इच्छा है कि एक शंका हम भी करें। हमारी शंका को भी कोई हल कर सकता है? हमारा कथन है कि रामधन अपने पिता की औलाद नहीं है इस पर आप क्या सबूत देंगे कि पिता की ही सन्तान है, यदि कहें कि मुहल्ले वाले कहते हैं तो सबूत तो मुहल्ले वाले भी नहीं दे सकते। क्या सबूत दें अब कोई सबूत नहीं दे सकता। यदि रामधन को अपना पिता पूछना है तो फिर अपनी माता की शरण में जाना होगा, इसी प्रकार यदि अपने परमपिता परमेश्वर का पता पूछना है तो बहस को छोड़ कर संस्कृत मैया की शरण चले जाओ यह बतला देगी कि तुम्हारा पिता परमात्मा कैसा है और उसकी मूर्ति बनती है या नहीं।

(८) कोई कोई यह भी कहते हैं कि ईश्वर तो परिपूर्ण है उनको पूजा की क्या जरूरत, और वह किसी की पूजा नहीं लेने।

इसका उत्तर यह है कि एक तअल्लुकेदार हैं उनके यहां उस समय के महाराज पहुंचे। तअल्लुकेदार उठा, महाराज को कुर्सी पर बिठाया और एक थाल अशर्फियों का भर कर महाराज के सामने रक्खा। महाराजने छू दिया, तअल्लुकेदार अपने मन में बड़ा मग्न हुआ और अशर्फियों को उठा कर ले गया, बाद में महाराज चले गये। मनुष्य पूछते हैं कहिये आपने भेंट दी थी, तअल्लुकेदार कहता है कि दी थी। एक मनुष्य कहता

है कि क्या महाराज को अशर्फियों की कमी थी जो आपने भेंट दी। वह उत्तर देता है कि उनके यहां तो कमी नहीं थी पर हमारा तो फ़र्ज़ था कि हम उनको भेंट करें क्योंकि हम उनकी प्रजा हैं बस यों हीं समझ लीजिये कि ईश्वर को तो किसी चीज की कमी नहीं परन्तु हम उनकी प्रजा हैं उनको अपनी तरफ से देना यह हमारा फ़र्ज़ है और देते समय भी हम यही कहते हैं कि हे ईश्वर ! आप परिपूर्ण हैं और जितनी वस्तुयें संसार में मौजूद हैं वह आप की ही हैं परन्तु हम आपकी ही वस्तु आप को देते हैं। "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"।

प्रच्छक कहता है बादशाह ने भेंट नहीं ली वह तो तुम ही ले आये। तअल्लुकेदार जवाब देता है कि तुम तो बेवकूफ हो उन्होंने ले तो ली परन्तु फिर अपने प्रसाद में हम को दे दी। इसी प्रकार हम सब चीजें ईश्वर को अर्पण कर के तब फिर प्रसाद रूप से ग्रहण करते हैं और हम समझते हैं कि हमारी तरफ से दे दी गई। हमारा तो फ़र्ज अदा हो गया। ईश्वर को इसी प्रकार से दिया जाता है और ईश्वर के हाथ में हम को नहीं मालूम किस मज़हब में दिया जाता है।

(९) अब कोई कोई सज्जन इस शंका पर उतारू हुए हैं कि अखण्ड ईश्वर के खण्ड कैसे होंगे।

ये लोग मूर्तिपूजन से ईश्वर के खण्ड हो जाना मानते हैं इस शंका के उत्तर को रोक कर मैं इन सज्जनों से यह पूछता हूँ कि इनको यह भी मालूम है कि यदि मूर्तिपूजन

उठ गए तो फिर उस परमात्मा का ध्यान भी उड़ जावेगा क्योंकि ध्यान जब होता है तब साकार वस्तु का ही होता है। निराकार का ध्यान तो मन कर ही नहीं सकता।

भला आपही विचारिये कि जो मन रात दिन साकार संसार में दौड़ रहा है, जो मन प्रति दिन साकार कामिनी काञ्चन में लिप्त हो रहा है, जो मन २३ घंटा ४५ मिनट साकार माया मोह में विह्वल हो रहा है उसे १५ मिनट में तुम खींच कर कैसे निराकार में लगा सकते हो। ऐसे तुम कहां के वीर हो जो वायु से भी प्रबल चञ्चल मन को आंख मूंदते खींच लोगे। अच्छा यह भी मान लेते हैं कि तुमने खींच ही लिया तो अब बैठाओगे कहां? निराकार तो कोई रूपवान् स्थान ही नहीं। तुमने यदि कभी खींच कर देखा होता तो जान जाते कि मन कितना चपल है और इसको स्थिर करने के लिए सर्वोत्तम साधन सौन्दर्य है और भगवान् श्यामसुंदर की मूर्ति का सौन्दर्य अनुपमेय है। उसमें अर्थात् साकार मूर्ति में जितनी जल्दी मन स्थिर हो सकता है वह बात निराकार में नहीं।

मन को संसार से खींच कर तथा साकार संसार से अलग कर के भी तुम मन को किस आश्रय में ठहराओगे, निराकार में सर्वथा असम्भव है। निराकार एक ऐसी शून्य दशा अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था है उसको थाह पाना संसारी मनुष्य के मन के लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं क्योंकि मन भौतिक स्थूल

पदार्थ है । भौतिक मन को अभौतिक निराकार में, स्थूल मन को अति सूक्ष्म निराकार में, एकदेशी मन को सर्वव्यापक निराकार में, अल्पज्ञ मन को सर्वज्ञ निराकार में, शान्त मन को अनन्त निराकार में तुम सात जन्म, नहीं नहीं सात लाख जन्मों में भी स्थिर नहीं कर सकते हो । तुम्हारी वही दशा होगी जो पहले पहल बौद्धों की हुई थी । जैसे उन लोगों ने वैराग्य योग द्वारा मन को विषयों से खींच तो लिया पर साकार न मानने से जब निराकार में मन नहीं ठहर सका तो निराकार को छोड़ कर कह दिया कि ईश्वर तो कोई चीज ही नहीं । आर्यसमाजी भी कुछ दिन निराकार में भटकेंगे फिर उसे भी असम्भव कह कर साकार निराकार दोनों से हाथ धो कर निरीश्वरवादी बनेंगे । पहले तो विषयों से मन को खींचना ही अति कठिन है, फिर उस बेचारे को निराकार समुद्र में गोते देना उससे भी अधिक कठिन, नितान्त कठिन "एक तो बाघ ऊपर बन्दूक बांधे है" ऐसे कठिन कार्य में समाजी भाइयों का ठहरना कब सम्भव है जिनका मन परम रम्य मूर्ति-पूजन कार्य में ही उकता जाता है ।

एक साहब आफिस से लौट कर घर में चाह मांगने लगे, बीबी ने कहा ज़रा ठहरिये अभी तैयार करती हूँ, बस साहब का मिज़ाज बिगड़ गया—धैर्य छूट गया—लगे बीवी को फटकारने कि नामाकूल हमतो सारा दिन माथा पच्ची करके लौटे तेने अभी चाह भी नहीं बनाई । अब क्रोधान्ध साहब पर वैराग्यता

का भूत चढ़ गया। तुरन्त एक साधू से जाकर बोले बाबा ! घर संसार सब मिथ्या मतलबी है आप ऐसा मन्त्र बतलाइये कि मैं बात को बात में सब भूल जाऊं। साधू बोला बेटा ! यह मन बहुत काल अभ्यास वैराग्य करते करते कहीं वश होता है परन्तु साहब ने न माना । कहा गुरूजी हमारे मन से संसार भुला ही दीजिये । तब साधू बोले अच्छा तू अभी जिसे देख कर आता है पहले उस गधे को भूल जा तो मैं फिर समस्त माया जाल भुला दूं। साहब गधे को भूलने लगे। आंखें मीच कर मन को एकान्त कर बड़ा यत्न करने लगे कि गधा भूल जाय, गधा भूल जाय, परन्तु ज्यों ज्यों भुलाते थे त्यों त्यों गधा और साहब पर सवारी बांधता जाता था । बेचारे रात भर "गधा भूल जा, गधा भूल जा" मन्त्र की माला फेरते रहे पर दुर्बल मन साहिब न भूल सके। साधू ने कहा—बच्चा ! जब क्षण भर का देखा पदार्थ नहीं भूलता तो लाखों जन्मों का साथी यह घर कुटुम्ब क्षण भर में कैसे भूल सकता है। चलो हट जा घर बैठ संसार भूल कर निराकार में गोता लगाना कहीं कढ़ी भात का खाना नहीं है इस निर्गुण निराकार के मनमोदक से भूख बुताती होती तो सभी दुनियां कब की मोक्ष पा गई होती।

इस दृष्टान्त को सुना कर हम जानना चाहते हैं कि आप निराकार का ध्यान कैसे करते हैं। लो आंख मूंद लो ध्यान करो। हां क्या ध्यान करें । यदि प्रकाशरूप कहो तो प्रकाश तो

साकार है, यदि ज्योतिः स्वरूप कहो तो ज्योति भी साकार है, तुम बतलाओ तो सही ध्यान में क्या करते हो ? किसका ध्यान करते हो ? बिना किसी आकृति (शकल) के निराकार का ध्यान कैसे करते हो ? यदि कहो आंख मींचने पर भीतर कुछ श्यामता भासित होती है तो फिर हमारे श्यामसुन्दर "नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्ग" भगवान का ही ध्यान क्यों नहीं धरते । एक मनुष्य बैठा हुआ मन को इधर उधर भटकाता है पर मन को लगाने का कोई आश्रय नहीं पाता । दूसरा भक्त आसन पर आते ही आंख मूंद कर तुरन्त इष्टदेव की मूर्ति को सामने कर मन को स्थिर कर देता है । इन दोनों में कौन कृतकार्य्य होगा । यही साकारवादी । क्योंकि इसका मन मूर्ति के सहारे काबू हो जायगा पर निराकारवादी का मन शून्य में हैरान होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायगा । इस भांति विचार करने से सिद्ध हुआ कि सर्व साधारण के पक्ष में निराकार का ध्यान ही असम्भव है । अब कोई कोई समाजी यह भी समझाते हैं कि आंख मूंद कर "ओं गायत्री दयामय न्यायकारी आदि ब्रह्म के नामों का स्मरण करना, अर्थ का चिन्तन करते रहना ही निराकार का ध्यान है"। यह युक्ति भी ठीक नहीं, कारण कि शब्द तो आकाश भूत का गुण है। ओरम् आदि नाम शब्दों के सहारे मन स्थिर किया गया तो फिर तेज भूत के गुण रूप मूर्ति के सहारे भी ध्यान क्यों न होगा अब दया न्याय आदि तो गुण हैं इनका ध्यान तो गुणों का ध्यान हुआ । हम पूछते हैं ऐसे

अनन्त गुण जिस ब्रह्म में हैं उस गुणी का ध्यान तुम कैसे करते हो। यदि दयामय न्यायकारी आदि शब्दों का ही चिन्तन करना है तो साकार ब्रह्म में ही गुण रह सकते हैं बिना साकार के ध्यान भी नहीं बन सकता और यदि ध्यान ही उड़ गया तो उपासना विधायक योगशास्त्र भी उड़ जावेगा ऐसी हालत में नास्तिकों में और हम में क्या फर्क है, इसका भी उत्तर है या कोरा खण्डन ही खण्डन जानते हो। अब सुनिये अखण्ड के खण्ड का उत्तर। इन्होंने यह समझा है कि उसके अवतार धारण करने से या उसकी मूर्ति बनाने पर उस परमात्मा के खण्ड हो जाते है इस विचार में इन्हों ने बड़ी ही गलती खाई है। इनको विचारना चाहिये था कि आकाश भी तो अखण्ड है परन्तु वही अखण्ड आकाश मठ में आया तो मठाकाश कहलाया और वही आकाश जब घट में आया तो घटाकाश कहलाया और जो भण्डार का हिस्सा रहा वह महाकाश कहलाया। क्या आकाश के खण्ड हो गये? हर्गिज़ नहीं। जब आकाश के ही खण्ड नहीं हुए तो फिर ईश्वर के खण्ड किस युक्ति से होंगे। दूसरा उदाहरण देखिये—जैसे ईश्वर अखण्ड है उसी प्रकार काल (समय, टाइम) भी अखण्ड है। फिर उस काल के टुकड़े की तरफ भी दृष्टि डालिये वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, घंटा, मिनट। जर्मन आदि देशों के विद्वानों ने टाइम के यहां तक विभाग किये कि सेकंड को भी सुई लगा कर छोड़ा। फिर क्या टाइम के

टुकड़े हो गये ? हरगिज़ नहीं। जब कि समय की हज़ारों मूर्तियें बन गईं, काल सरकार बन कर मनुष्यों की जेबों में कूद पड़ा, आलों में स्थापित हो गया, दिवारों पर लटक गया और इतने पर भी अखण्ड काल (टाइम) के खण्ड न हुए तो ईश्वर की मूर्ति बनते या अवतार लेने से अखण्ड ईश्वर के खण्ड होंगे कैसे, ज़रा इसका भी तो पता लगाना चाहिये। इसके आगे यह कहने लगे हैं कि—

(१०) सनातनधर्मी तो मूर्ति में ईश्वर की भावना मानते हैं और भावना सच्ची नहीं होती।

मैं कहता हूं कि यदि यही मान लिया जावे कि भावना करते हैं तो फिर भावना को झूठ कर कौन सकता है। श्रीकृष्ण भगवान् अपने श्रीमुख से कहते हैं कि—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्।

अर्थ— जो जिस प्रकार मेरी शरण आता है मैं वैसी ही उसकी रक्षा करता हूं।

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखो तिन तैसी॥

इस भावना के ऊपर हमको एक दृष्टान्त याद आ गया, ज़रा उसको भी सुन लें। एक समय गोस्वामी तुलसीदासजी वृन्दावन में गये, वहां पर जाकर इन्होंने क्या देखा कि चारों ओर से "राधाकृष्ण" "राधाकृष्ण" की आवाज आ रही

है, रामजी का कहीं पता ही नहीं। यह देख तुलसीदास को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सब मनुष्य कृष्ण के ही भक्त हैं प्रभु रामचन्द्र का एक भी नहीं, इन्हों ने इसको देख स्नान करते समय यमुनाजी के घाट पर एक दोहा कहा कि—

राधा राधा रटत हैं, आक ढाक और कैर।
तुलसी या बृजभूमि में, कहा राम से बैर॥

एक परशुराम नामक ब्राह्मण किसी मन्दिर के पुजारी थे वह भी यमुना पर स्नान कर रहे थे स्नान करके वह मन्दिर में आये और दर्वाजे पर बैठ गये। इसी समय गोस्वामी तुलसीदास जी भी स्नान कर उसी मंदिर में दर्शन के लिये चले। जब तुलसीदास श्रीकृष्ण की मूर्ति के दर्शन को मन्दिर में धसे तो उस समय परशुराम ने यह दोहा पढ़ा कि—

अपने अपने इष्ट को, नमन करै सब कोय।
परशुराम बिन इष्ट के, नमे सो मूरख होय॥

यह आवाज़ तुलसीदास के कान तक पहुंची। तुलसीदास जी मूर्ति के सन्मुख पहुंचे और मूर्ति को देख कर बोले कि—

काह कहूं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवे, धनुष बाण हो हाथ॥

इस दोहे को पढ़ने ही अपने आप पर्दा गिरा और ५ मिनट तक पर्दा गिरा रहा। इसके पश्चात् अपने आप पर्दा उठा। मूर्ति को देख तुलसीदास जमीन में गिर गये। बार बार प्रणाम

करते हैं और मूर्ति के दर्शन कर रहे हैं। अब यह मूर्ति वंशीवाले की नहीं है अब राघवकुलकमलदिवाकर प्रभु रामचन्द्रजी की हो गई। प्रणाम करने के अनन्तर तुलसीदासजी ने फिर एक दोहा पढ़ा, वह यह है—

तुलसी रुचि लखि भक्त की, नाथ भये रघुनाथ।
मुरली मुकुट दुराय के, धनुषबाण लिये हाथ॥

कहिए भावना सच्ची है या झूंठी ?

और भी भावना देखिये—एक स्त्री है वह स्त्री राधाकृष्ण की पुत्री है, मोहनलाल की पत्नी है और गिरधारीलाल की माता है। जिस समय इसको राधाकृष्ण देखता है अन्तःकरण एकदम मोह से विह्वल हो जाता है। क्यों, कारण यह है कि यह उसको पुत्री की भावना से देखता है। और जिस समय इसको मोहनलाल देखता है एकदम अन्तःकरण में काम का संचार हो जाता है। कारण यह है कि यह उसको पत्नी की भावना से देख रहा है। और जिस समय गिरधारीलाल देखता है तो उसके हृदय में एकदम प्रेम उमड़ उठता है। कारण यह है कि वह इसको माता की भावना से देख रहा है। धर्म को पुष्ट करने के लिए भावना सर्वोत्तम सहायक है। संसार में जितने काम हैं सब भावना पर ही स्थित रहते हैं फिर भावना को झूंठी कहता कौन है। भावना को झूंठ समझने वाले एक बार फिर विचार करें। उनका यह मन्तव्य निर्मूल है कि भावना सच्ची नहीं होती।

(११) मूर्तिपूजन से हम को तो कुछ प्रत्यक्ष फल दिखाई नहीं देता।

उत्तर—प्रथम तो पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से आज प्रायः मनुष्यों के अन्तःकरण में यह भाव भर गया है कि ईश्वर की सत्ता (हस्ती) का मानना ही मूर्खों का काम है। फिर यदि कोई ईश्वर भी मानते हैं तो वह कोरा चालीस सेरा निराकार कह कर उपासना से दिल चुराते हैं। और यदि कोई साकार मान कर पूजा भी करें तो एक अद्भुत प्रकार की पूजा करते हैं। रोज़ रोज़ आस्तिकता से पूजन करने वाले बहुत ही न्यून संख्या रखते हैं। हां, अलबत्ते जिस दिन सत्यनारायण की कथा हो उस दिन पूजन करना पड़ता है, एक दिन प्रथम ही नौकर को हुक्म दिया जाता है कि जाओ एक पैसे के पूजा के पान लेते आओ और एक पैसा यह और भी लेते जाओ इसकी पूजा की सुपारी लेते आना। यह नौकर तम्बोली के यहां पहुंचा। तम्बोली ने पैसा तो ले लिया और सड़े गले छोटे छोटे पान हाथ में दिये। क्यों साहिब पूजा में इतनी ही प्रीति है या कि अधिक। जब आप को पान खाने हों तो बढ़िया से बढ़िया आवें और प्रभु के लिये सड़े गले। अस्तु, अब नौकर साहब पंसारी के यहां गया, उसने भी पैसा ले लिया और राजा युधिष्ठिर के ज़माने की यह सुपारी दी कि जिसमें हजारहां बार कीड़े पड़ कर मर गये हों। अस्तु, अब पूजा का ढंग्गा लगा। आचार्य ने कहा कि

"वस्त्रं समर्पयामि श्रीविष्णवेनमः" यजमान बोलता है कि वस्त्र तो नहीं आया, आचार्य बोला कि अच्छा "वस्त्र स्थाने अक्षतान्समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः" फिर आचार्य ने कहा कि "यज्ञोपवीतं समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः" इसको सुन कर यजमान बोल उठा कि पण्डितजी जनेऊ तो नहीं लाए, पण्डितजी ने फिर पढ़ दिया कि "यज्ञोपवीत स्थाने अक्षता-न्समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः"। अब आया समय गोल गोल का "दक्षिणां समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः"। अब यदि यजमान कह दे कि महाराज आचार्यजी दक्षिणा तो है नहीं बस इतना सुन कर आचार्य क्रोधित हो जावेगा और कह उठेगा कि नहीं साहिब यह न चलेगी दक्षिणा स्थाने अक्षतान् हरगिज़ न कहा जावेगा किन्तु दक्षिणा स्थाने दक्षिणा ही होगी। बस इसी पूजन पर फल चाहते हो। जब कि यजमान तो चाहता है कि घर का टका न लगे और आचार्य चाहता है कि पूजा चाहे हो या न हो किन्तु अपने टकों में फर्क न आवे इसी पर प्रत्यक्ष फल चाहते होंगे। आप सच्चे दिल से प्रीति के साथ पूजन करिये। रावण, ध्रुव, मार्कण्डेय आदि आदि की भांति प्रत्यक्ष फल अवश्य मिलेगा। विष्णु नित्य प्रति शंकर का पूजन किया करते थे और नित्य ही एक सहस्र कमल भी चढ़ाया करते थे एक दिन पूजा-करते समय कमल संभाले गये तो एक सहस्र के स्थान में ९९९ ही निकले, उस समय विष्णु को फिकर हुई कि मेरा संकल्प तो एक हजार का है और ये नौ सौ निन्यानवे

ही है अब क्या किया जावे, चारों तरफ देखा तो भी कमल का पता न चला, अन्त में विष्णु ने विचारा कि हम कमलनेत्र कहलाते हैं हमारा नेत्र भी कमल के सदृश है यह समझ कर समस्त कमल चढ़ाने के पश्चात् एक कमल पूर्ति के लियें अपना नेत्र उतार कर शिव के ऊपर रक्खा कि उसी समय शंकर प्रकट हो गये।

हरिस्ते साहस्रं कमल बलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निज मुद हरन्नेत्र कमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणति मसौ चक्र वपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुर हर जागर्ति जगताम्॥

हरिः ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

भक्ति

यदि गमनमधस्तात्कालपाशानुबद्धो
यदि च कुलविहीने जायते पक्षिकीटे।
कृमिशतमपि गत्वा जायते चान्तरात्मा
मम भवतु हृदिस्थे केशवे भक्तिरेका ॥ १
तुलसी कौशल के पास में चला आ... चितवे चहुं ओर।
सीताराम जुआरी के पास जहां स्थित ... चकोर ॥ २

आज हम ...पूछे, ...से आ...ने करेंगे कि मनुष्यजीवन धारण करने का फल क्या है। इस विषय में साधारण जनता के अनेक विवेचन हैं। किसी २ का कथन तो यह है कि संसार में खाना पीना, मजा उड़ाना और सुखी रहना यह मनुष्यजन्म का सार है। निःसन्देह जिन्होंने सृष्टिभेद, जीव ईश्वर के स्वरूप को नहीं जाना वे इसी को मुख्य मानते हैं, यह सिद्धान्त अज्ञ पाश्चात्य लोगों का है ज्ञानी भारतवर्ष का नहीं है। भारतवर्ष ने सृष्टिरचना, तत्वोत्पत्ति, जीव ईश्वर का भेद और दोनों के स्वरूप को जान कर यह बतलाया है कि जन्म जन्मान्तर से कर्मबन्धनों में जकड़े हुये जीव को कर्मबन्धनों से छुड़ा कर

अत्यन्त सुख मोक्ष में ले जाना यह मनुष्यजन्म धारण करने का फल है। इसको शास्त्र ने मोक्ष, अपवर्ग, आत्यन्तिक सुख आदि अनेक नामों से याद किया है और इसकी प्राप्ति का साधन प्रेम बतलाया है। स्वाती नक्षत्र में बरसा हुआ पानी स्थानभेद से अनेक रूप को बनाता है जैसे यदि स्वाती का पानी केले के गर्भ में गिरेगा तो कपूर बन जावेगा, यदि स्वाती का पानी सर्प के मुख में चला जावे तो हलाहल जहर बने, यही पानी सीप में गिरे तो मोती बन जाय। जैसे स्थानभेद से स्वाती का पानी अने[illegible] रूप धारण करता है इसी प्रकार मनुष्य का मन जिस स्थान ति मस [illegible]गा वैसे ही रूप को उत्पन्न कर देगा, मनुष्य का म र जागति होता है उसी को प्रेम कहते हैं वह प्रेम पात्रभेद न्तिः मन अनेक रूप बना लेता है। मन की स्थिति का नाम प्रेम है। यदि मनुष्य का प्रेम किसी बच्चे पर चला जावे तो संसार कहेगा कि इस बच्चे पर इस मनुष्य की बड़ी दया है, यही मन यदि बराबर वाले में चला जाय तो फिर इसका नाम मित्रता होगा, यह मन जब अपने पूज्य, गुरु, आचार्य, माता पिता प्रभृति मान्यपुरुषों में जाता है तब इसका नाम श्रद्धा होता है, कारुणिक प्रभु जगदीश्वर की जब इस जीव के ऊपर दया होती है तब यह मन ईश्वर को तरफ चला जाता है और इसी का नाम भक्ति होता है। यह हजरत मन गिरगिट की भांति अनेक रंग बदलता है। इस विषय में एक महात्मा लिखते हैं कि—

जो मन नारि की ओर निहारत,
तो मन होत है नारि को रूपा।
जो मन काहू से क्रोध करै,
तब क्रोधमयी ह्वै जाय तद्रूपा॥
जो मन माया ही माया रटै नित,
तो मन बूड़त माया के कूपा।
'सुन्दर' जो मन ब्रह्म विचारत,
तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

जैसे अफीमची के पास बैठ कर अफीमची, भंगड़ के पास बैठ कर भंगड़, जुआरी के पास बैठ कर जुएबाज, व्यभिचारी के पास बैठ कर व्यभिचारी, शराबी के पास बैठ कर शराबी बन जाता है इसी प्रकार ब्रह्म में प्रेम और ध्यान लगाने से यह जीव अपने स्वरूप को छोड़ कर साक्षात् ब्रह्म बन जाता है इसमें किसी प्रकार की भी चीं चपट, क्यों, गैरमुमकिन, प्रभृति शब्दों को स्थान नहीं मिलता।

भक्ति किसको कहते हैं, इस विषय में भक्ति का लक्षण करते हुये प्रभु रामचन्द्रजी उपदेश देते हैं कि—

जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धन भवन सुहृदपरिवारा॥
सब की ममता ताग बटोरी।
मम पद उरहि बांध मन डोरी॥

माता, पिता, भाई, पुत्र, कलत्र, स्वशरीर, धन, मकान, मित्र, कुटुम्ब इन स्थानों में प्रत्येक मनुष्य के प्रेम के सूक्ष्म तन्तु लगे हुये हैं, इन सूक्ष्म तागों को बटोरो और सब को मिला कर एक मोटी रस्सी बना लो उस रस्सी को लेकर हमारे चरणों को बांध डोरी का दुसरा छोर अपने अन्तःकरण में रक्खो इसी का नाम भक्ति है। सिद्ध हो गया कि ईश्वर के चरणों में प्रेम लगाने को ही भक्ति कहते हैं।

संसारसागर से पार होने के लिये सभी को भक्ति की आवश्यकता है, भक्ति के विना वैदिक कर्मकाण्ड भी बन्धन का हेतु हो जाता है, भक्ति को छोड़ कर जो विज्ञानी बनते हैं वे अपने आत्म विज्ञान से उन्नति अवश्य कर जाते हैं किन्तु उन्नति करके भी फिर औंधे मुंह इसी संसार में गिर जाते हैं इसके विषय में शास्त्रों में अनेक लेख मिलते हैं।

श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो !
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

श्री० भा०

व्यापक कल्याण करनेवाली जो आप की भक्ति है उस भक्ति को तिलांजलि देकर जो लोग योग और ब्रह्मविद्या में परिश्रम-रूपी क्लेश उठाते हैं वह क्लेश ही उनके हाथ पड़ता है, भला कभी धान के मोटे छिलके करनेवालों को भी चावल मिलते हैं।

इसी प्रकार अनेक पुराण और वेद मुक्तकंठ से यह उपदेश रहे हैं कि भक्ति के बिना कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड मोक्ष नहीं सकते, संसार में जितने भी आस्तिक मजहब तथा जितने भी मनुष्य हैं वे समझे हुये हैं कि ईश्वरप्रेम के बिना हमारा दुःख दूर न होगा और इसी ड्यूटी को पूरा करने के लिये हमको मनुष्यशरीर मिला है, इतना जान कर भी प्रवृत्ति में फंसे हुये हजरत मनीराम को ईश्वर के चरणारविन्द में नहीं ले जा सकते, यह हजरत ऐसा अड़ियल टट्टू है कि इसको पूर्व दिशा में ले जाना चाहें तो यह फिर चार कदम पश्चिम दिशा में ही हट जावेगा। इसको वेद पढ़ाओ, उपनिषदें सुनाओ, १८ पुराणों की कथा सुना दो, इसके कानों में महाभारत की कथा ठूंस दो किन्तु यह जब चलेगा तब संसार की चमक दमक पर ही चलेगा, तुमको तो ईश्वरप्रेम का भूत सवार है और इस हजरत को—

ये मेरे देश वलायत हैं गज,
ये मेरे मन्दिर ये मेरी थाती।
ये मेरे मात पिता पुनि बांधव,
ये मेरे पूत सो ये मेरे नाती॥
ये मेरी कामिनी केलि करै नित,
ये मेरे सेवक हैं दिनराती।
'सुन्दर' वैसेहि छांड़ि गयो सब,
तेल जर्यो सो बुझी जब बाती॥

मनोराम का तो यह हाल है और जगदीश्वर भी धन, यौवन, विद्या, चातुरी, प्रतिष्ठा, अनुभव प्रभृति किसी भी गुण से प्रसन्न नहीं होते, वे जब प्रसन्न होते हैं तब भक्ति से। इस विषय में एक कवि लिखता है कि—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का।
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्।
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं
भक्त्या तुष्यति केवलं न तु गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

भला सोचिये तो सही व्याध में क्या आचरण था, नित्य प्रति जीवों को मारता था किन्तु ईश्वर का अनन्यभक्त था, इस भक्ति के प्रताप से भगवान् इतने प्रसन्न हुये कि व्याध के विज्ञान रूपी नेत्र खुल गए, उसने 'व्याध गीता' लिखी जिसके समझने में आज पण्डित लोग भी बगलें झांका करते हैं फिर हम कैसे मान लें कि भगवान् शिष्टाचार से प्रसन्न होते हैं। जगदीश्वर आयु से भी प्रसन्न नहीं होते यदि आयु से प्रसन्न होते तब तो सभी बूढ़े ईश्वर के कृपापात्र बन जाते। आप प्रसन्न हुये तो छोटे से बच्चे ध्रुव पर हो गये। क्षत्रियों की वीरता के गीत गाने वाले सुधारकों को किसी दिन ईश्वर के परम भक्त ध्रुव की कथा पढ़नी चाहिये, इस कथा से यह ज्ञान हो जाता है कि संसार में बली वही है, ज्ञानी वही है, यशस्वी वही है, पूज्य वही है जिसके मन की धारा अविच्छिन्न रूप में भगवच्चरणारविन्द में लग गई है। जगदीश्वर किसी की विद्या

से भी प्रसन्न नहीं होता। क्या कोई विद्वान् ईश्वर के ज्ञान को पहुंच सकता है, नहीं पहुंचता तो फिर संसार की अधूरी विद्या पूर्ण विद्वान् प्रभु को कैसे प्रसन्न करेगी। क्या हाथी ने वेद पढ़ा था या वह हाफिज हो गया था, यह कुछ नहीं पूर्वजन्म के अभ्यास से इसका मन ईश्वर में चला गया था इसी संबंध से कष्ट से छूट कर संसारबंधन तोड़ मोक्ष को चला गया। आपने कभी कुब्जा का नाम सुना है, वह तीन जगह से टेढ़ी थी, उस पर भगवान् प्रसन्न हो गये, क्या वह खूबसूरत थी या उसका नाम बढ़िया था, यह कुछ नहीं ईश्वर में प्रेम था। भगवान् धन से भी प्रसन्न नहीं होते, यदि धन से प्रसन्न होते तो बड़ी बड़ी तोंदवाले बनियों पर या कुबेर पर प्रसन्न होते, इस बेचारे सुदामा पर क्यों प्रसन्न हुये, जिसके घर में आटा न तवा, थाली न बटलोई, इसके घर में यदि भूल से चूहे आ जावें तो उनको रात दिन के रोजे आरंभ करने पड़ें, ऐसे निर्धन पर क्यों प्रसन्न हुये, प्रेम के कारण। विभु, उत्तम वंश में पैदा होने से भी प्रसन्न नहीं होते, यदि ऐसा होता तब तो विदुर से कभी प्रसन्न हो नहीं होते। जगदीश्वर न पाण्डु से प्रसन्न हुये न धृतराष्ट्र से, प्रसन्न हुये तो विदुर से, क्योंकि इसका भगवान् में अटूट प्रेम था। भगवान् किसी के पौरुष से भी प्रसन्न नहीं होते, पौरुषी कंस को पछार डाला और पौरुषहीन उग्रसेन को राज्य दे दिया। इन उदाहरणों के देखने से यह सिद्ध होता है कि भगवान् को प्रेम प्यारा है।

इसी विषय में और भी अनेक कविताएं अनुभवसिद्ध ईश्वर-प्रेमियों की मिलती है, उन अनेक कविताओं में से दो कविताएं हम श्रोताओं को सुनाते हैं, पहिली कविता यह है कि—

तीन टूक कौपीन के, औ भाजी बिन लौन।
'तुलसी' रघुवर उर बसैं, तो इन्द्र बापुरो कौन॥

लंगोटी फटी हो और खाने के लिये बिना नमक का शाक मिलता हो किन्तु मन में निरंतर भगवान् बसते हों उसके आगे लखपती, राजा, जमींदार, विद्वान्—साइंटिस्ट कुछ भी हैसियत नहीं रखते, यह लंगोटीबाज भवबन्धनों को तोड़ कर ब्रह्म बनेगा और ये सेठ साहूकार, राजा रईस, विद्यासागर-साइंटिस्ट यमराज के नरककुंडरूपी वेटिंग रूमों में पहुंच कर हाहाकार मचावेंगे, ये भले आदमी आप तो दुःखसागर में डूबेंगे ही किन्तु हाहाकार मचा कर पड़ोसियों को भी न सोने देंगे। सच बात तो यह है कि संसार में जितने अच्छे काम किये हैं वे सब लंगोटीबाजों ने किये है। लंगोटीबाज शंकर ने बौध मजहब को गिरा दिया, लंगोटीबाज रामानुज ने भक्ति की भागीरथी बहा दी, लंगोटीबाज रामानन्द ने हिन्दुओं के प्रत्येक घर में और हिन्दुओं के अन्तःकरण में राम नाम की छाप लगा दी, हमको तो यही कहना पड़ेगा कि "कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः" संसार में यदि कोई भाग्यवान् है तो वह कौपीन-वाला ही है।

दूसरी कविता यह है—

झूमत द्वार अनेक मतंग, जंजीर जड़े मद अम्बु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगत चंचल, पौन के गौनहु ते बढ़ जाते॥
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकत, बाहर भूप खुरे न समाते।
ऐसे भये तो कहा 'तुलसी' जो पै जानकीनाथ के रंग न राते॥

इस कविता का भी अभिप्राय यही है कि जिसने भगवान् में प्रीति नहीं लगाई उसकी उन्नति पर धूर है। संस्कृत के कवि ने जो 'व्याधस्याचरणं०' इस श्लोक में भक्तों के नाम लिखे है उससे यही न समझ लेना कि इतने ही भक्त संसारबंधन तोड़ कर मोक्ष को गए हैं। एक हिन्दी का कवि लिखता है कि—

देव दृगतारे तोहिं गावें वेद चारे,
तारे पतित अनेक जेते नभ में न तारे हैं।
रतनारे नैनन ते नेकहू निहारे नाथ,
कोटि २ दीनन के दारिद विदारे हैं॥
श्रीपति पुकारे कहैं नीरद बरनवारे,
राधा जू के प्राण प्यारे यशुदा के वारे हैं।
नन्द के दुलारे धराधर के धरनहारे,
मोरपंखवारे सो हमारे रखवारे हैं।

आज हजार बार समझाने पर भी लोगों के चित्त में ईश्वर-प्रेम नहीं आता वरन् ईश्वरप्रेम का उपदेश करने वालों को कूपमंडूक और बेवकूफ समझा जाता है। ये लोग अपने मन में समझते हैं कि हम वीर हैं, हिन्दू लीडर हैं, हम जाति का

सुधार करके छोड़ेंगे। जो लोग कर्तव्यहीन बेवकूफ हैं वे ईश्वर ही ईश्वर चिल्लाया करते हैं। ठीक है अभिमान के नशे में मनुष्य क्या नहीं कर सकता, जितने अनर्थ कर डाले वे सब थोड़े हैं। बेवकूफ लीडर हैं या ईश्वरभक्त हैं इस विषय में हम एक दृष्टान्त आप लोगों के आगे रखते हैं।

एक राजा ने एक दिन अपने मंत्री से कहा कि हमको एक ऐसे मनुष्य की आवश्यकता है जो संसार में फर्स्ट क्लास का बेवकूफ हो, तुम जाओ और घूम कर ऐसे मनुष्य को तलाश कर लाओ, आज्ञा पा कर दीवान चल दिया। कई एक देश देशान्तरों में भ्रमण किया किन्तु कोई बेवकूफ न मिला, अन्त में निराश हो गया, घर को लौट रहा था रास्ते में क्या देखा कि एक मनुष्य नीम की डाल काट रहा है और जिस तरफ से वह कट कर जमीन पर गिरेगी उसी तरफ बैठा है, इसको देख कर दीवान ने समझा कि काम तो हो गया, बेवकूफ मिल गया, किसी प्रकार इसको राजा के पास ले चलना चाहिये। अपने मन में यह इरादा करके दीवान ने उस मनुष्य से वार्तालाप आरंभ करदी। सब से प्रथम यही पूछा कि जिधर की डाल कट कर जमीन पर गिरेगी तुम उधर ही बैठे इसको काटते हो जब यह गिरेगी इसके साथ में तुम भी गिर जाओगे क्या तुमको यह ज्ञान नहीं है ? इस प्रश्न को सुन कर, वह मनुष्य बोला कि क्या संसार में तुम ही बुद्धि के पहाड़ पैदा हुये हो और हम निरे मूर्ख हैं, जब यह डाल कटती कटती

कमजोर हो जावेगी तब हम दूसरी तरफ न बैठ जावेंगे। इसको सुन कर दीवान समझ गया कि यह भी सोलह आने मूर्ख नहीं है घोड़ा आगे बढ़ा दिया। आगे क्या देखा कि चार आदमी यात्रा की तैयारी कर रहे हैं, उनका इरादा है कि रात के आठ बजे से चलो, दीवान ने घोड़ा बांध दिया और इरादा किया कि यहां पर कुछ घोड़े को दाना खिला लें तथा हम भी भोजन खा लें, रात को इनके साथ चल दें। ऐसा ही किया, रात के आठ बजे से चारो मनुष्य चले, दीवान ने भी पीछे पीछे घोड़ा लगा लिया। चलते चलते जब बारह बज गए उन चार में एक अंधा आदमी था वह बोला कि ठहरो आगे मत चलो, हमको मालूम देता है कि सामने से बदमाश आ रहे हैं। ये चारो खड़े हो गए, उनमें से एक दूसरा आदमी बोला जो बहरा था कि हां कुछ बात ठीक मालूम होती है खड़बड़ खड़बड़ का शब्द आ रहा है, आगे बदमाश जरूर हैं। इसको सुन कर उन चार में जो लंगड़ा था वह बोला तो फिर भाग चलो। एक आदमी उनके साथ नंगा था, जिसके पास इंच भर भी कपड़ा नहीं था वह बोला तुम भागोगे न भगाओगे अंधेरी रात में कपड़े उतरवा लोगे। दीवान ने समझा कि यह है आला दर्जे का बेवकूफ जो बिलकुल नंगा खड़ा है और कपड़े उतर जाने का स्वप्न देख रहा है। दीवान ने उससे बातचीत की, पहिनने को कपड़े दिये और अपने साथ लिवा लाये। राजा के यहां खबर करदी कि मैं बेवकूफ को लिवा लाया। दरबार लगा, दरबार में

बेवकूफ पेश हुआ, राजा ने परीक्षा करनी चाही। परीक्षा करते समय राजा ने बेवकूफ की तरफ एक अंगुली उठाई, बेवकूफ ने राजा की तरफ को घूंसा उठाया। राजा ने अपनी नाक बन्द की, गवांर ने समझा कि यह नाक काटने को कहता है गवांर ने अपनी जीभ पकड़ ली कि जो तू नाक काटेगा तो मैं जीभ पकड़ के खींच लूंगा। राजा समझ गया कि यह पूरा गवांर है उससे कहा कि हमने तुम्हारी परीक्षा करली हम जैसा आदमी चाहते थे तू वैसा ही है आज से हम तुझको नौकर रखते हैं रुपया रोज देंगे और यह लकड़ी देते हैं इसमें तीन लाख के जवाहिरात जड़े हैं तुम इसको लेकर घूमो, घूमते घूमते तुमको जो बेवकूफ मिल जावे यह लकड़ी उसको दे दो और हमसे आकर इत्तला करो, हम तुमको दश लाख रुपया इनाम देंगे। इसको सुन कर बेवकूफ सलाम करके घर को चल दिया। प्रत्येक महीने में आवे, अपनी तनख्वाह ले जावे और नित्यप्रति बेवकूफ की खोज में लगा रहे। घूमते घूमते बीस वर्ष बीत गए किन्तु कोई बेवकूफ न मिला। दैवयोग से राजा मरने लगे राज का काम युवराज के सपुर्द कर दिया और दीवान को सब समझा दिया। दीवान ने पूछा कि कहिये कुछ और मन की अभिलाषा तो बाकी नहीं रही? राजा ने कहा कि हां अभी एक अभिलाषा बाकी है, उस लकड़ी वाले गवांर को बुलाओ। दीवान ने सवार भेज कर गवांर को बुलाया और राजा के सामने पेश कर दिया। गवांर ने राजा को झुक कर प्रणाम

किया और पूछा कि कैसी तबियत है ? राजा ने कहा तबियत का हाल क्या पूछते हो अब तो हम चलते हैं। गवांर बोला कितनी दूर जाओगे ? राजा ने कहा कि इसका क्या पता। गवांर ने कहा तो अच्छा यह बतलाइये आप लौट कर कब आवेंगे ? राजा ने कहा जहां हम जाते हैं वहां गया हुआ कोई मनुष्य आज तक लौट कर नहीं आया। गवांर बोला अच्छा तो फिर यह बतलाओ कि आपके साथ राजकुमार, रानी, दीवान और पल्टनें ये सब जांयगी ? राजा ने कहा नहीं, ये कोई साथ न जांयगे। गवांर ने पूछा तो फिर सवारी क्या क्या तैयार की ? राजा ने कहा कि यह तो मगज चाट जायगा इसको कुछ कह भी नहीं सकते, गवांर सो गवांर, हार कर जवाब दिया कि सवारी भी साथ नहीं जायगी। यह सुन कर हजरत गवांर बोले तो फिर यह बतलाइये रास्ते के लिये कलेऊ क्या क्या बना ? राजा ने कहा कलेऊ भी साथ नहीं जाता। इतना सुन कर गवांर बोला कि यह लकड़ी लीजिये और दश लाख रुपये इनाम दीजिये। राजा बोले यह क्या ? गवांर बोला कि हमे जब दश कोश बाहर जाते हैं तो आध सेर की तो पूरी ले जाते हैं और १५) रुपये की एक घोड़ी ले रक्खी है उस पर चढ़ कर जाते हैं तथा साथ में एक नौकर ले जाते हैं नहीं मालूम तुम कितनी दुर जाते हो साथ में न कोई घर का आदमी, न नौकर, न सवारी, न कलेऊ, न कपड़ा, न रुपया पैसा तुम अकेले ही नागा बाबा बन कर खाली हाथ जाते हो,

तुमसे ज्यादह बेवकूफ दुनियां में कौन होगा, लीजिये अपनी लकड़ी और लाइये दश लाख रुपया। राजा पैरों में गिर पड़ा और हाथ जोड़ कर बोला कि तू गवांर नहीं है बड़ा बुद्धिमान् है, तू मेरा गुरु है, किन्तु मैं अब क्या करूं मेरा तो समय आ गया। इतना कह कर राजा साहब के पश्चात्ताप करते ही करते प्राण पखेरू उड़ गये, जिसको गवांर समझा था वह बुद्धिमान् निकला और जो अपने को बुद्धि का ठेकेदार समझे था वह गवांर निकला। आज सुधारक भक्तों को भले ही गवांर कहें किन्तु जिस दिन यह संसार छूटेगा उस दिन निर्णय होगा कि कौन गवांर है और कौन बुद्धिमान्, भक्तों पर आनेवाली आपत्तियों को ईश्वरप्रेम एकदम फूंक डालेगा किन्तु लीडरों पर आनेवाली आपत्तियों को सोडावाटर, बिसकुट, डबलरोटी, होटल का मांस, विलायती बराण्डी, डासन का बूट, विलायती कोट, हैट, नकटाई, आंख का चश्मा, जेब की घड़ी, हाथ की फैंसी छड़ी और साथ साथ चलनेवाला-मुंह से मुंह लगाने वाला विलायती टीपू तथा योरुप की मेम, इनका परम मित्र व्यभिचार और देश की तरक्की के बहाने से गरीब लोगों का चन्दे में लिया हुआ रुपया इनकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकेगा, अन्त में इनका मुंह काला होगा, और नहीं मालूम कितनी दफा इनको कालकोठरी की सजा भोग कर दुःखी हो कर मरना पड़ेगा। विचारशील मनुष्य अब बतलावें कि भक्ति का उपदेश करने वाले बेवकूफ हैं या हिन्दू लीडर।

कई एक मनचले लीडर अभिमान के जोश में भर कर यह भी कह देते हैं कि ईश्वर क्या है फर्स्ट क्लास का रिश्वतखोरा है, जो उसकी भक्ति करेगा उसी का संसारबंधन टूटेगा बाकी के सब नरक में ढकेल दिये जावेंगे।

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कृष्णद्वैपायन श्रीमद्भागवत में लिखते हैं कि भक्ति के द्वारा मोक्ष देने से ईश्वर रिश्वत-खोरा नहीं बनता किन्तु दयालु बनता है।

ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिदं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

भगवान् का कथन है कि जो स्त्री, मकान, पुत्र, प्राण, इत्यादि सुख साधनों पर लात मार कर मेरी शरण आये हैं बतलाइये तो सही मैं उनको कैसे छोड़ दूं और यदि मैं छोड़ दूं तो वे फिर कहां के रहें।

संसार में आज भी देखने में आता है कि जो जिसकी शरण जाता है वह उसकी रक्षा करता है और इस प्रकार से रक्षा करने वाले को कोई भी रिश्वतखोरा नहीं कहता फिर भगवान् किस प्रकार रिश्वतखोरा हो जावेंगे।

आजकल संसार ईश्वर और ईश्वरप्रेम पर लात मार कर स्वतंत्रता के चक्कर में पड़ा है। प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि मैं स्वतंत्र हो जाऊं, स्वतंत्रता के भूखे बुद्धि को नीलाम करके स्वतंत्रता के पीछे पड़ गये हैं; इनसे यह तो पूछो कि कभी कर्मबंधन में बंधा हुआ जीव भी स्वतंत्र होता है। ये कुल-

कलंक तो क्या स्वतंत्र होंगे किन्तु भक्त शिरोमणि प्रह्लाद ने जब नृसिंह से स्वतंत्र होने की प्रार्थना की तब भगवान् नृसिंह ने भी प्रह्लाद को तत्काल ही स्वतंत्र नहीं कर दिया किन्तु स्वतंत्र होने का मार्ग बतलाया, वह श्लोक यह है—

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं
कलेवरं कालजवेन हित्वा ।
कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां
विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः ॥

भगवान् नृसिंह कहते हैं कि तुम्हारे जो पवित्र कर्म हैं उनको तो भोग करके नाश करो और पापकर्मों को पवित्र कर्म ईश्वराराधन से क्षय करो तथा शरीर को कालवेग से छोड़ दो देवता जिसका गान करेंगे ऐसी पवित्र कीर्ति को विस्तार करके तुम मुझको प्राप्त होगे।

जब पवित्र भक्त को भी स्वतंत्रता के लिये ईश्वर की शरण जाना पड़ता है और भक्त को ईश्वर के देने से ही स्वतंत्रता की प्राप्ति होती है तो फिर हमको नहीं मालूम स्वार्थी, लोलुप सुधारक स्वतंत्रता की प्राप्ति ईश्वर की शरण जाये बिना स्वतः कैसे कर लेंगे। ईश्वर की कृपा के बिना जब स्वतंत्रता मिलती है नहीं तो फिर स्वतंत्रता के लोभ से खूंरवार लीडरों के पंजे में पड़ जाना यह हिन्दुओं की बेवकूफी नहीं तो और क्या है।

सर्वथा स्वतंत्र तो जगदीश्वर भी नहीं है, जगदीश्वर का कथन है कि सारा जगत मेरे आधीन है किन्तु मैं भी अपने आधीन नहीं हूँ।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विजः।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तौ भक्तजनप्रियः॥

पिंजड़े में फँसे हुये पक्षी की भांति मैं परतंत्र हूं, मैं तो भक्तों के आधीन हूं, भक्त मुझे जैसी प्रेरणा करेंगे मुझे वैसा ही करना पड़ेगा, श्रेष्ठभक्तों से मेरा हृदय पकड़ लिया गया है, मुझे संसार में भक्त ही प्यारे हैं और मैं उन्ही के आधीन हूं।

भगवान् का यह कथन सर्वांश में सत्य है—उधर गज ने पुकारा कि फौरन आ गये, द्रौपदी चिल्लाई कि सभा में कूद पड़े, प्रल्हाद ने पुकारा पुकारते ही खम्भे से निकल बैठे। ऐसे अवसरों पर भगवान् को प्रेमबंधन में बंध कर कूदना पड़ता है। कहां गई स्वतंत्रता, स्वतंत्रता तो जब जान पड़ती कि गज चिल्लाता रहता और ये हजरत नींद के घर्राटे लेते, द्रौपदी आंसुओं की माला से स्मरण करती और ये भोजन खाते रहते, प्रल्हाद पुकारा ही करता और ये निराकार बने ही रहते, ज्यों ही भक्त ने पुकारा कि फौरन दौड़े, फिर स्वतंत्रता कैसी? ईश्वर को भी अपने वश में करने वाली संसार में कोई वस्तु है तो वह भक्ति है, आजकल सभ्यता के ठेकेदार जिस भक्ति को पोपों का ढकोसला कहा करते हैं, ईश्वर अप्रमेय है, अविज्ञेय है, अनिर्वचनीय है, अजित है, इतना होने पर भी यह भक्तों के

वश में है; इस विषय में वेद के प्रकट करने वाले ब्रह्मा ब्रह्मस्तुति में कहते हैं कि—

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजितजितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम्॥

भगवन्! आपको श्रुति स्मृति अजित कहती हैं किन्तु जो लोग ज्ञान के परिश्रम को छोड़ कर सज्जनों से सुनी हुई आपको कल्याणकारक कथाओं को मन में रख काय, मन, वाणी से प्रतिक्षण आपको नमन करते रहते हैं इस त्रिलोकी में ऐसे पुरुषों ने आप को जीत लिया है, आप ऐसे अनन्यभक्तों के हाथके खिलौना हो जाते हैं।

यद्यपि संसार में असंख्य भक्त हो गये हैं और उन भक्तों के प्रेम में आकर विभु ने असंख्यवार भारतवर्ष को अपने चरण से पवित्र किया है इतने पर भी कृष्णावतार के समय जो भक्ति की छटा व्रज में दिखलाई पड़ी है उस छटा का वर्णन अन्य अवसर पर कहीं पर भी नहीं लिखा गया, इस अनोखी छटा को देख कर एक भक्त कहता है कि—

धन वृन्दावन धाम है, धन वृन्दावन नाम।
धन वृन्दावन रसिकजन, सुमिरत राधेश्याम॥
हम न भये व्रज में कछू, यही रही मन आस।
नितप्रति निरखत युगलछवि, कर वृन्दावन वास॥

वृन्दावन जे वास कर, साग पात नित खात।
तिनके भागन को निरखि, ब्रह्मादिक ललचात ॥

जिस वृन्दावन को छवि पर ब्रह्मादिक देवता मोहित हो गये उसको छटा वर्णन करने के लिये किस कवि की लेखनी में शक्ति हो सकती है। वृन्दावन की प्रेमधारा को देख कर मुसलमान कवियों ने प्रेमभागीरथी में स्नान किया और कृष्ण के गुणों का गान करते हुये संसारबंधन तोड़ कर अपवर्ग की प्राप्ति कर गये किन्तु आजकल के होटलभोजी, पत्थरहृदय, हिन्दू लीडर भक्ति को ढकोसला और श्रीमद्भागवत की प्रेममयी कथा को पोपलीला के नाम से याद करते हैं, कारण इसका यही है कि इन्होंने कभी संस्कृत साहित्य तो देखा नहीं पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से ये लोग अपने को योरूपीय संतान समझने लग गये, बृन्दावन को प्रेमभागीरथी को कथा सुन कर पत्थरहृदय मनुष्य भी गद्गद हो जाता है, इस विषय में ब्रह्मा अपने मुख से स्वयं कहते हैं कि—

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः
स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना
यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वरा ॥ १

अहो भाग्यमहो भाग्यं, नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं, पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ २

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३

एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देवरातेति न-
श्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति।
सद्वेषादिव पूतनाऽपि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥४

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ५

ओहो ! धन्य है व्रज की गौ और गोपियों को, एक वर्ष दिन तक कृष्ण ने बछड़े तथा गोप बन कर जिनके दूध को आनन्द से पिया और पी कर तृप्त हो गये, जिनको अनेक यज्ञ तृप्त नही कर सकीं उनको इन व्रज की गौ तथा गोपियों ने तृप्त कर दिया ॥ १ ॥ ओहो ! हम नन्द व्रज के गोपों के भाग्यों की क्या प्रशंसा करें, परमानन्दपूर्ण सनातनब्रह्म स्वतः जिनका मित्र बना उनके भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ॥ २ ॥ भगवन् ! मेरा जन्म इस मनुष्यलोक में हो और मनुष्यलोक में भी गोकुल में किसी कीट पतंग प्रभृति योनि में हो जावे तो मैं अपने को भूरिभाग्य कृतकृत्य मानूं क्योंकि ऐसे जन्म में किसी भी गोकुलवासी के चरण की रज मेरे ऊपर अवश्य गिरेगी उस रज से मैं पूर्णमनोरथ हो जाऊंगा। गोकुल-

निवासियों का जीवन साधारण जीवन नहीं है किन्तु प्रबल भाग्यशाली जीवन है क्योंकि जिनका सर्वस्व जीवन सर्वाधार आप भगवान्मुकुन्द हैं, आप भी मामूली नही है आपके चरणरज को श्रुति आज तक ढूंढती ही फिरती है पाती नहीं, ऐसे अलभ्य आप गोकुलनिवासियों का जीवन है अतएव गोकुलवासियों की धूलि से मैं अवश्य पूर्णमनोरथ हो जाऊंगा ॥ ३ ॥ देव ! इन ब्रजवासियों को आप क्या देंगे ? इस विषय में हमारा चित्त घबरा जाता है, अधिक से अधिक मोक्ष दे देंगे तब भी आप इनके ऋणी ही रहेंगे, पूतना बनावटी सद्वेष से आई थी मोक्ष तो आपने उसी को दे दी तो क्या इन ब्रजवासियों का पूतना के तुल्य ही आप में प्रेम है ? यदि आप यह कहें कि हम इनके परिवार को भी मोक्ष दे देंगे किन्तु वह तो अघासुर बकासुर प्रभृति पूतना के परिवार को भी दे दिया है फिर आप इनके ऋण को कैसे चुकावेंगे, पूतना तो थोड़ी देर के लिए बनावटी प्रेम से आपके आगे आई थी और गोकुलनिवासियों का गृह, द्रव्य, मित्र, प्रिय आत्मा, पुत्र, प्राण और देह सब आपके लिये ही हो गया है फिर आप इनके ऋणी क्यों न रहेंगे ॥ ४ ॥ तभी तक ये रागादिक चोर रहते हैं और तभी तक यह घर जेलखाना है तथा तभी तक मोहरूपी बेड़ियां पड़ी रहती हैं जब तक कि हे भगवान् कृष्ण ! यह मनुष्य तेरा नहीं होता ॥ ५ ॥

गोकुल की गौ और गोपियों के प्रेम को आप देख चुके अब एक दृष्टि यशोदा के प्रेम पर डालने की कृपा करें । एक

दिन यशोदा की दासियां जब अनेक कामों में लग गईं तब यशोदा की इच्छा हुई कि आज दही हम ही मथ लें, यह समझ कर दही मथने लगीं, इतने में ही रोते हुये भगवान् कृष्ण आये, अपने शरीर के चिन्हों से माता को प्रेम में मोहित करते हुए दूध पीने की इच्छा प्रकट करने लगे, यशोदा ने दही का मथना छोड़ दिया और भगवान् कृष्ण को गोदी में लेकर अपना दूध पिलाने लगीं। थोड़ा ही दूध पिया था कि इतने में चूल्हे पर धरा हुआ दूध, तेज आंच से उफन कर नीचे गिरने लगा, इसको देख यशोदा ने भगवान् कृष्ण को नीचे विठला दिया और आप दूध उतारने चली गईं। कृष्ण ने कहा कि ओहो! इसको दूध हमसे भी प्यारा है जो हमें नीचे विठला गई और आप दूध उतारने चली गई। रोप में आकर एक पत्थर उठाया उस पत्थर को जोर से दही के वर्तन पर पटक दिया, वर्तन फूट गया, दही बिखर गया और समीप में जो मक्खन की हांडी रक्खी थी उसको उठा कर चंपत हुये। जब यशोदा दूध उतार कर आई तब उसने यह दधिलीला देखी, देखने से मालूम हुआ कि मक्खन की हांड़ी सर्वथा ही गायब है, इसको भी क्रोध आया, कृष्ण को ढूंढने निकली, क्या देखा कि एक ओखली पर खड़े हैं और मक्खन की हांड़ी में से मक्खन निकाल कर बन्दरों को दे रहे हैं, आती हुई यशोदा को इन्होंने भी देखा कि आज हाथ में लकड़ी लिए आ रही है कुछ न कुछ दुर्दशा अवश्य करेगी, यह समझ ओखल से कूद ये भी भागे,

आगे २ कृष्ण और पीछे २ यशोदा, कृष्ण चाहते हैं कि हम रफूचक्कर हो जायं और यशोदा चाहती है कि मैं इनको जल्दी पकड़ लूं। व्यासजी लिखते हैं कि—

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-
स्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत्।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां
क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः॥

जिसने हाथ में लकड़ी ली है ऐसी आनेवाली उस माता को देख कर शीघ्रता से ये श्रीकृष्णजी तिस ओखली पर से नीचे उतर कर डरे हुये से भागने लगे उस समय एकाग्रता से तदाकार हुये और प्रवेश करने को समर्थ हुए योगियों के मन को भी जिसकी प्राप्ति नहीं होती है ऐसे कृष्ण के पकड़ने को यशोदा उनके पीछे २ दौड़ने लगी।

यशोदा का शरीर स्थूल है चलती २ थक गई, शरीर में पसीना आगया, केशबंधन खुलगये, हांफने लगी। इस दशा को देख कर भगवान् को दया आई आप खड़े होगए। यशोदा ने देखा कि कृष्ण बहुत डर गए, घबरा गए, यह समझ कर लकड़ी फेंकदी समझा कि लकड़ी से डरते हैं, लकड़ी डाल कर कृष्ण के दोनों हाथ पकड़े और इरादा किया कि इसको ओखली में बांध दूं।

न चान्तर्न बहिर्यस्य, न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥ १

तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ २
तद्दामबध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ।
द्व्यंगुलोनमभूत्तेन सन्दधेऽन्यच्च गोपिका ॥ ३
यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि सन्दधे ।
तदपि द्व्यङ्गुलंन्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥ ४
एवं स्वगेहदामानि यशोदा सन्दधत्यपि ।
गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताऽभवत् ॥ ५
स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकवरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्वबन्धने ॥ ६
एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ ७
नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ ८
नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ ९

जिस ब्रह्म के भीतर और बाहर तथा जिसके पूर्व और पर नहीं है और जो जगत् के पूर्व है और पर है, जो जगत् से बाहर है और जगत के भीतर है उस अधोक्षज अदृश्य मनुष्यशरीर धारण किये ब्रह्म को गोपी अपना पुत्र समझ कर रस्सी में जैसे लौकिक बालकों को बांधा करते हैं उसी प्रकार ओखली

से बांधने लगी ॥ १ ॥ २ ॥ दही की मटकी फोड़ने का अपराध किया है जिसने ऐसे बच्चे कृष्ण को जब गोपी बांधने लगी तब बांधने की रस्सी दो अंगुल कम हो गई ॥ ३ ॥ यशोदा ने दूसरी रस्सी मंगवा कर इस रस्सी में जोड़ दी फिर कृष्ण को लगी बांधने, वह रस्सी भी दो अंगुल छोटी हो गई, फिर तीसरी रस्सी मंगवाई गई उसको जोड़ कर जब बांधने लगी तब भी दो ही अंगुल रस्सी छोटी हुई, जितनी रस्सियां उसमें बांधी गईं उतनी ही बार बंधी हुई रस्सी दो अंगुल छोटी हुई ॥ ४ ॥ इस प्रकार घर की सब रस्सियां बांध दी गईं तब भी बँधी हुई समस्त रस्सियाँ दो ही अंगुल छोटी हुईं। तब तो मुस्कराती हुई गोपी आश्चर्य में पड़ गई कि देखो यह छोटा सा लड़का दही मक्खन खा के कितना मुटाना है ॥ ५ ॥ भगवान् कृष्ण ने देखा कि माता तो हैरान हो गई, इसको पसीना आगया और शिर के केशों में से फूल गिरने लग गये इस घोर परिश्रम को देख कर भगवान् पहिली ही रस्सी से बंधगए ॥ ६ ॥ परीक्षित! इस प्रकार से भगवान् ने भृत्यवश्यता दिखलाई, जिस कृष्ण के वश में रुद्रादिक ईश हैं वे कृष्ण भक्त के प्रेम में फंस कर आज उखली में बंधे पड़े हैं ॥ ७ ॥ ईश्वर की यह प्रसन्नता ब्रह्मा ने नहीं पाई और न महादेव ने ही इस प्रसन्नता की उपलब्धि की, अंग में रहने वाली लक्ष्मी भी इस प्रसन्नता से वंचित रही जो प्रसन्नता जगन्नियन्ता मोक्षदाता भगवान् से गोपी को मिली है ॥ ८ ॥ इस प्रकार से ब्रह्म भूत देहधारी

ज्ञानियों को जगदीश्वर सुखपूर्वक प्राप्त कभी भी नहीं होते जैसे वे भक्त लोगों को विना आयास मिलते हैं ॥ ९ ॥

अब थोड़ी सी कथा उन गोपियों की सुनाते हैं जो देवांगना शरीर और स्वर्ग को छोड़ कर भगवान् की भक्ति के लिये गोपीशरीर धारण कर मर्त्यलोक में आई हैं उनकी भक्ति को देख कर मौन रह जाना पड़ता है, उनके विषय में भगवान् कृष्ण स्वयं कहते हैं कि—

न मां जानन्ति मुनयो योगिनश्च परन्तपाः ।
न च रुद्रादयो देवा यथा गोप्यो विदन्ति माम् ॥

हे परन्तप ! मुझको उस प्रकार से मुनि नहीं जानते और न योगी जानते हैं तथा न रुद्रादिक देवता ही जानते हैं जिस प्रकार मुझको गोपियां जानती हैं ।

जब भगवान् व्रज छोड़ कर मथुरा चले आये तब भगवान् कृष्ण उद्धव से कई बार बोल उठे कि भक्ति तो गोपियों में है। उद्धव इसको सुन कर बड़े हैरान थे कि गांव की रहने वाली बिना लिखी पढ़ी गवांर गोपियां भक्ति को क्या जानें । समय आया और भगवान् कृष्ण ने उद्धव को व्रज में भेजा, उद्धव के व्रज में पहुंचने से नंदादिक गोप गोपियों को बड़ा आनन्द हुआ, सब उद्धव के पास आ गये और कृष्ण का कुशल क्षेम पूछने लगे। यशोदा ने कहा कि कृष्ण ने हमारे लिये भी कुछ कहा है ? उद्धव ने कहा कि लीजिये यह पत्र दिया है, उस पत्र में लिखा था कि—

कामरी लकुट मोहिं भूलत न एक पल,
घुंघुची ना बिसारों जाकी माल उर धारे हैं।
जा दिन ते छाकैं छूट गई ग्वाल बालन की,
ता दिन ते भोजन न पावत सकारे हैं॥
भनै यदुवंश जो पै नेह नन्दवंश हू सों,
वंसी ना बिसारों जो पै वंश हू बिसार हैं।
ऊधो ब्रज जैयो मेरी लैयो चौगान गेंद,
मैया ते कहियो हम ऋणियां तिहारे हैं॥ १
कौन विधि पावे यह कर्म बलवान उदय,
छाछ छछिया को ब्रज भामिनी की भात है।
मुक्ति हू पदारथ सो दे चुके बकी को अब,
देहुं जननी को कहा याते पछतात है।
विधि जो बनाई आहि कौन विधि मेटे ताहि,
ऐसे कर सोचत रहत दिन रात है।
ऊधो ब्रज जैयो मेरी कहियो समुझाय मैयो,
जापै ऋन बाढ़े सो विदेश चल्यो जात है॥ २

गोपियों ने कहा कि प्रभु ने माताजी के लिये तो पत्र लिखा है यह तो बतलाओ हमारे लिये भी कुछ कहा है? उद्धव ने उत्तर दिया कि तुम्हारे लिये भी एक पत्र दिया है, इतना कह कर उद्धव ने गोपियों को पत्र दिया, उसमें लिखा था कि—

जैसे तुम दीन्हों तन मन धन प्राण मोहिं,
तैसे ही समाधि साध ध्यान धरवाओगी।

अलख अनाथ घट घट को निवास मोहिं,
जान अविनाशी जोग जुगत जगाओगी।
आसन कै प्राणायाम साधि ध्यान धारणा ते,
ब्रह्म को प्रकाश रस रास दर्शाओगी।
ऐसे चित लाओगी तो सुख में समाओगी,
औ मुक्तिपद पओगी हमारे पास आओगी॥१

उद्धव के चलते समय गोपियों ने कृष्ण को भेजने के लिये अपना संदेशा दिया, वह यह है—

पूरण ब्रह्म सबहिं थल व्यापक,
हैं हमहूं यह जानती हैं।
नन्दलाल बिना पै विहाल सबै,
हरिचन्द न ज्ञानहिं ठानती हैं।
तुम ऊधो यही कहियो उनसे,
हम और कछू नहिं जानती हैं।
प्रियप्यारे तिहारे निहारे विना,
अँखियां दुखियां नहिं मानती हैं। १
श्याम तन श्याम मन श्यामही हमारो धन,
आठो याम ऊधो हमें श्याम ही सों काम है।
श्याम हीये श्याम जीये श्याम विन नाहिं तीये,
आंधे की सी लाकड़ी अधार श्याम नाम है॥

श्याम गति श्याम मति श्यामही है प्राणपति,
श्याम सुखदाई सों भलाई शोभाधाम है।
ऊधो तुम भये बौरे पाती लै आये दौरे,
योग कहां राखें यहां रोम रोम श्याम है॥ २

गोपियों की यह दशा देख कर उद्धव दंग रह गये और ब्रह्मज्ञान का सारा अभिमान खोकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

हे परमात्मन्! मेरी इच्छा है कि आगे को जो मुझे जन्म मिले तो मैं इस बृन्दावन में गुल्मलता ओषधि अर्थात् यातो छोटा सा झाड़ वन जाऊं या कोई बेल बूटी वन जाऊं जिसके वनने से गोपियों का चरणरेणु मेरे ऊपर पड़े तो मैं कृतार्थ हो जाऊं।

जिस वात को उद्धव ने कहा था उसी बात को रसखान कह रहा है—

मानस हों तो वही रसखान,
बसौं व्रज गोकुल गोप गवांरन।
जो पशु हों तो कहा वश मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को,
जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन।

जो खग हों तो बसेरो करौं,
वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥

इस इतिहास से सिद्ध है कि "धन वृन्दावन धाम है धन वृन्दावन नाम" किसी कवि का यह कहना बहुत ही ठीक है, इसमें न तो मिथ्यात्व दोष है और न हुज्जतबाजी ही का काम है, जब तक जीव भक्ति के पंजे में नहीं पड़ेगा तब तक जन्म मरण रूपी बंधन से छुटकारा न होगा, भक्ति ही मनुष्य-जन्म का सार है अतएव लीडर प्लीडर प्रिंटर और पबलिशर प्रभृति समस्त मनुष्यों का यह धर्म है कि संसारी काम करते हुये धीरे २ ईश्वर के चरणों में प्रेम लगावें यही हमारी अंतिम प्रार्थना है। हम आज के व्याख्यान को समाप्त करते हुये ईश्वर से निवेदन करते हैं कि—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥

भगवन् ! हमारी जो वाणी है वह आपके गुणों के कथन में लगे और हमारे कानों की प्रवृत्ति आपकी कथा के श्रवण में लगे, हमारे हाथ आपके श्रृङ्गारों के कार्यों में रहें, हमारा मन आपके चरणारविन्द में लग जाय और हमारा जो शिर है वह भी चरणों में झुके तथा हमारी जो दृष्टि है वह आपके शरीर के दर्शनों में लगी रहे। शुभम्। बोलिये भगवान् कृष्णचन्द्र की जय।

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

भक्ति

जयति जयति देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयति जयति कृष्णः वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयति जयति मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयति जयति पृथिवीभारनाशो मुकुन्दः ॥१

दो बातों को भूल मत, जो चाहे कल्यान।
नारायण इक मौत को, दूजे श्रीभगवान ॥ २

विद्यावन्त स्वरूप गुण, सुत दारा सुखभोग।
नारायण हरिभक्ति बिन, ये सबही हैं रोग ॥ ३

महर्षि धौम्य का कथन है कि—

सुदुर्लभं भारतवर्षे जन्म
मनुष्यजातौ महतां कुलेषु।
अतोऽत्र मिथ्यैव नयेद्वयो न
स्वधर्मसंराधनतत्परोऽभूत् ॥

युधिष्ठिर! भारतवर्ष में जो किसी प्राणी का जन्म होता है वह बड़े पुण्यपुंज से होता है, भारतवर्ष के बराबर पंचाशत कोटि विस्तृत ब्रह्माण्ड में दूसरा देश नहीं है फिर भारतवर्ष

देश में भी मनुष्यशरीर पाना यह और भी कठिन है, मनुष्य-जाति में भी उत्तम कुल में उत्पन्न होना यह उससे भी कठिन है। जो लोग भारतदेश, मनुष्यजाति और उत्तमकुल में जन्म पा गये हैं उनको चाहिये कि अपनी आयु को खानपानादि गृह प्रबन्धों में व्यर्थ ही न खो दें, ये सब काम करते हुये उनको धर्माराधन में तत्पर होना आवश्यकीय है, नहीं तो देश, जाति, कुल की प्राप्ति व्यर्थ ही चली जावेगी। क्या अच्छा उपदेश है और वक्ता भी कैसा स्पष्टवक्ता है। इसने राजा युधिष्ठिर से यह नहीं कहा कि तुम बड़े धार्मिक हो, तुम बड़े दानी हो, तुम बड़े ब्रह्मण्य हो, साक्षात् धर्म का अवतार हो, कहा भी तो यह कहा कि तुम धर्म का पालन करो। राजा युधिष्ठिर जो स्वतः धार्मिक है, जो प्रत्येक बात में धर्माधर्म का विवेचन करता है ऐसे धार्मिक पुरुष को भी धार्मिक बनने का उपदेश देना यह ब्राह्मणों का धर्मशिक्षा में उज्वलित उदाहरण है।

कई एक मनुष्य यह कह उठावेंगे कि अपनी २ प्रशंसा सभी करते हैं, इस श्लोक में प्रशंसा करके जिस भारतवर्ष को उच्च शिखर पर चढ़ाया है उसमें कौन गौरवता है। आज तो लिखे पढ़े मनुष्य यही चाहते हैं कि हमारा जन्म हो तो इंग्लेंड में हो या फ्रांस में हो अथवा जर्मन में हो, यदि अमेरिका में हो तो और अच्छा। आज कोई भी बुद्धिमान दूसरों के गुलाम, बेड़ियों के बंधन में बंधे हुये भारतवर्ष में जन्म नहीं चाहता। ठीक है, आज भारतवर्ष की जो दुर्दशा हो रही है वह हमारी और

आप की मूर्खता से, भोरुपन से और अदूरदर्शिता से, इसका अपराध जगदीश्वर पर नहीं लग सकता।

जगदीश्वर ने जिस समय इस पृथ्वी को बनाया सब देशों से बढ़िया २ वस्तुयें भारतवर्ष को दीं। करते जाइये मिलान। प्रभु ने सभी देशों को पर्वत दिये हैं उन पर्वतों में जो सर्वश्रेष्ठ पर्वत है वह किसी अन्य देश को न देकर भारतवर्ष को ही दिया, इसके ऊपर कवि कालिदास लिखते हैं कि—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा।
हिमालयो नाम नगाधिराजः॥

भारतवर्ष की उत्तर दिशा में देवताओं का स्थान पर्वतराज हिमालय है।

औरों को सामान्य पर्वत मिले किन्तु भारतवर्ष को सबसे उच्च पर्वतों का राजा हिमालय दिया गया। फिर नदियां बँटने लगीं, सभी देशों को नदियां मिलीं किन्तु वह नदी जिसका जल शीशी में भर कर रख दिया जावे और बारह वर्ष रक्खा रहे, न कीड़े पड़ें न दुर्गंधि हो, इसके विरुद्ध अपवित्र जल को पवित्र बना दे तथा संसार का बंधन तोड़ दे। वह पावनी गंगा भारतवर्ष को मिली, इसको नदी भी मिली तो सब से बढ़िया मिली। यद्यपि आज भारतवर्ष के मनुष्य योरूपीय शिक्षा के पंजे में पड़कर गंगा के दृश्य और अदृश्य महत्व को नहीं मानते किन्तु हमारी प्रार्थना है कि वे होश में आवें और गंगा के दृश्य महत्व

को डाक्टरों से पूछ लें तथा अदृश्य महत्व के विषय में एक मुसलमान कवि की कविता हम आपको सुनाते हैं सुनिये—

सुरधुनिमुनिकन्ये तारयेत्पुण्यवन्तं
स तरति निजपुण्यैस्तत्र ते किं महत्वम्।
यदिह यवनजातिं तारयेत्पापिनं मां
तदिह त्वन्महत्वं तन्महत्वं महत्वम्॥

गङ्गे! तू पुण्यवान् पवित्र पुरुष को संसारसागर से पार करती है वह पवित्रात्मा तो अपने पवित्र कर्मों से ही पार हो जावेगा उसके पार करने में तेरा महत्व क्या है। हां, निःसन्देह यदि यवनजाति में पैदा हुये मुझ पापी को तू पार कर दे तो तेरा महत्व है, यही तेरा महत्व महत्व कहलाने के योग्य है।

आज आप गंगा को भले ही न मानें क्योंकि आपके ऊपर यूरोपीय शिक्षा का भूत चढ़ बैठा है किन्तु एक दिन हिन्दुओं की पूज्या गंगा के चरणों में अन्य धर्मी विदेशी मुसलमान ने भी शिर झुका दिया है, क्या यह गंगा का कम गौरव है, यह विशेष गौरव रखने वाली नदी अन्य किसी देश को न दे कर भारतवर्ष को दी गई।

इसके पश्चात् भूतल के देशों में, ऋतुविभाग का बँटवारा हुआ। जगदीश्वर ने किसी देश को एक ऋतु और किसी देश को दो ऋतु तथा किसी २ को तीन ऋतु दीं, तीन से अधिक भूतल के किसी देश को भी ऋतु नहीं मिलीं किन्तु भारतवर्ष को छः ऋतु मिलीं, क्या यह भारतवर्ष का गौरव नहीं है कि

पृथ्वी के किसी भाग में भी छः ऋतु न हों और केवल भारतवर्ष में ही छः ऋतुओं का विकाश होता हो।

फिर अन्नों का बँटवारा होने लगा। भूतल के समस्त देशों को न्यूनाधिक भेद से अन्न दिये गये किन्तु जितने प्रकार के अन्न भारतवर्ष को दिये गये उतने प्रकार के अन्न भारतवर्ष को छोड़ कर अन्य समस्त विश्व को नहीं मिले, क्या अब भी भारतवर्ष का कुछ गौरव नहीं।

इसके पश्चात् पृथिवी की शक्ति का बँटवारा हुआ। समस्त देशों की पृथ्वी को न्यून शक्तियां दी गईं किन्तु पूर्ण रूप से उर्वराशक्ति भारतवर्ष की भूमि को ही मिली। इसके पश्चात् देशविभाग हुये। किसी देश की प्रकृति उष्ण और किसी देश को शीत, किन्तु भारतवर्ष को समस्त प्रकार की शक्तियां मिलीं—काश्मीर हिमालय आदि विभागों में शीत का साम्राज्य हुआ और बंगाल मद्रास में उष्णता का, फिर कौन कहता है कि भारतवर्ष का गौरव नहीं है। ब्रह्मविद्या का प्रादुर्भाव इसी देश में हुआ, अश्वमेधादिक यज्ञ, वैदिक कर्मकाण्ड इसी भूमि में अपनी छटा दिखला गये, समस्त संसार ईश्वर के दर्शनों से वंचित रहा किन्तु भारतवर्ष में जब २ आवश्यकता हुई निराकार ब्रह्म साकार बन के कूदा। कृपा करो—इसको दूसरे सड़ियल देशों से मत मिलाओ—भारतवर्ष जगदाधार का बगीचा है, ईश्वर की विहारभूमि है, इसमें सर्वदा से भक्ति की भागीरथी बहती रही है और आगे को भी बहती रहेगी, जिस

भक्ति से जीव जन्ममरणरूपी बंधनों को तोड़ कर साक्षात् ब्रह्म बनता है। भारत के विद्वानों की कथा को तो छोड़ दो यहां पर के अबोध मनुष्यों की भक्ति दूसरे देशों के विद्वानों को चकित कर देती है। एक बिना पढ़े गोप की कथा हम आपके आगे रखते हैं सुनिये—

एक दिन गौओं को चराते हुये भगवान् कृष्ण ने गोपों से कहा कि आज रात्रि को आप लोग जल्दी भोजनों से निवृत्त हो लो, हमारी इच्छा है कि रात के नौ बजे से नाव में बैठ कर जलविहार करें, क्योंकि आज यमुनाजी भयङ्कर रूप से बढ़ रही हैं, प्रस्ताव पास हो गया। रात्रि को भोजन से निवृत्त हो कर कृष्ण सहित अनेक गोप यमुना के तट पर आ गये, बड़ी घोर अँधियारी है। प्रथम तो यमुना का जल ही श्याम रंग का है, फिर कृष्णपक्ष है, रात्रि का समय है, आसमान भी घोर काली घटाओं से घिरा हुआ है, इतना अंधेरा हो गया है कि एक मनुष्य को दूसरा मनुष्य नहीं दीखता। ऐसे समय में गोप लोग एक नाव पर चढ़ गये, दूसरा एक गोप खूंटे में बंधा हुआ नाव का रस्सा खोल कर नाव में डाल आप भी सवार हो गया, पंखे भगवान् कृष्ण ने हाथ में लेकर नाव का चलाना आरंभ किया, नाव चली, नाव के वेग को रोकते रोकते धीरे धीरे यमुना की बीच धार में नाव को पहुंचा दिया। बीच धार में नाव पहुंच पाई थी कि इसी समय उसमें एक बड़ा छेद हो गया, छेद के जरिये से पानी आने लगा। बालकों ने देखा

और देख कर घबरा गये कि अब यह नाव पानी भरने पर डूब जायगी। गोपाल लगे सोच करने, सब के चेहरे उतर गये, सारी आपत्ति में पड़ कर रोने लग गये, किन्तु कृष्ण के सामने एक सुदामा नाम का गोप बैठा हुआ था उसके चेहरे पर जरा भी उदासी न आई और वह रोते हुये गोपों को हँस हँस कर बेवकूफ बनाने लगा। कृष्ण ने कहा सुदामा! हम तुम सब मृत्यु के पंजे में पड़ गये और अभी इस दारुण कष्ट में तुम हँसते हो यह बड़ी लज्जा की बात है।

इसको सुन कर सुदामा बोला कि—

जीर्णा तरी सरिदतीव गम्भीर नीरा
पक्षोऽसितोऽपि रजनी जलदेन रुद्धा।
बाला वयं सकलमित्थमनर्थहेतुः
श्रेयानयं त्वमसि सम्प्रति कर्णधारः॥

भगवन्! यह मैं भी जानता हूं कि नाव पुरानी है इसमें छेद होकर पानी आने लगा है डूबने का गोपों को सन्देह हो रहा है, मैं यह भी जानता हूं कि कृष्णपक्ष होने के कारण रात्रि अंधेरी है और इस पर भी काली काली घनघोर घटा छाई है अब कुछ भी नहीं दीखता, मैं यह भी जानता हूं कि इस नाव पर हम सब बालक हैं, आज जितनी सामग्री मिली है सब अनर्थ का हेतु है, किन्तु कहना यह है कि इस अनर्थ के साथ में कुछ कल्याण का भी हेतु है, वह यह है कि इस नाव के कर्णधार आप हैं, जिस नाव के कर्णधार जगदाधार हों कहिये तो वह

नाव कैसे डूब जावेगी। यह है एक गवांर गोप की भक्ति का उदाहरण।

बात सच है कि जिस नाव के कर्णधार जगदीश्वर बन जावें वह कभी डूब सकती है? कभी नहीं डूब सकती। इसके तो इतिहास में सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं, एक कवि लिखता है कि—

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारनीलोत्पला
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला।
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवैः रणनदी कैवर्तकः केशवः॥

भीष्म और द्रोणाचार्य ये दोनों वीर जिस नदी में दो किनारे हैं तथा जयद्रथ रूपी जल जिसमें बह रहा है, गान्धारी के पुत्र जिस नदी में कमलों की भांति खिलखिला कर हंस रहे हैं, शल्य जिसमें ग्राह हो और कृपाचार्यरूपी जिस नदी में वेग हो एवं कर्णरूपी विस्तार हो, अश्वत्थामा विकर्णादि जहां भयङ्कर मगर हों, दुर्योधनरूप जिसमें भवंर हो—ऐसी भयङ्कर रणनदी—महाभारत का संग्राम—पाण्डव पार कर गये। पार करने का कारण जानते हो? कारण यह था कि भगवान् कृष्ण मलाह थे इनके मलाह होने से ही पाण्डवों ने महाभारतरूपी रणनदी को पार किया।

एक भाषा का कवि कहता है कि यदि पाण्डवों की नाव के भगवान् कृष्ण कैवर्त न बनते तो क्या पाण्डव इस नदी को पार कर सकते थे? कदापि न कर सकते, इनकी बड़ी बुरी दशा

होती । पाण्डवों की क्या दशा होती इस दशा के ऊपर हिन्दी के कवि की कविता सुनिये—

पांडुसुत सेना को चबेना सो भुनाय देतो,
भीषम अकेलो एक भीख मंगवावतो ।
सकल सुरासुर सहाय करते जो तऊ,
बानन लपेट शरजालन जरावतो ॥
बचतो न कोऊ मोद मचतो सुयोधन को,
तीनो लोक ताही को महान यश छावतो ।
तृण से न तूल से न जाने जाते पांडुसुत,
पीत पटवारो प्रभु आड़े जो न आवतो ॥ १

भीषम के भुजबल वारिधि में डूब जाते,
कर्ण कृशानु तरु तूल जैसे जरते ।
भगदत्त भूधर सों दौर दब जाते पुनि,
भूरिश्रवा बैहर के वेग में जकरते ॥
द्रोण गुरु गाज की गर्जे सुन तोषनिधि,
कौन भांति प्राणन को धीरज सों धरते ।
पांडव बिचारे भये अनभये होते कबै
मोरपंखवारे रखवारी जो न करते ॥ २॥

मूर्ख गोपाल का कथन सोलह आने सत्य है, जिस नाव के पंखे जगदीश्वर के हाथ में आ जांय वह कभी डूब नहीं सकती किन्तु जगदीश्वर का भरोसा भी वही रखता है कि जिसका

ईश्वर में प्रेम है, जिसका ईश्वर में प्रेम नहीं हुआ है उसकी अक्ल के और हुज्जत के सामने ईश्वर कोई चीज ही नहीं। आज ईश्वरसत्ता के ऊपर हम कुछ भी नहीं बोलेंगे, हमने सनातनधर्म महत्व में ईश्वरसत्ता को दिखला दिया है उसकी युक्तियों को सुन कर बड़े बड़े नास्तिकों को भी ईश्वर मानना पड़ता है।

यहां पर तो केवल इतना दिखलाना है कि इस जीव का कल्याण ईश्वर कृपा से होता है, जब जीव पर आने वाली सांसारिक आपत्तियां भी भगवत् कृपा के विना दूर नहीं होतीं तो फिर उसकी कृपा के विना मोक्ष प्राप्ति कैसे होगी। भगवान् कपिल अपनी माता से कहते हैं—

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम्।
आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः॥ १॥
विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतो मुखम्।
भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरति पारये॥ २॥
नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात्।
आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते॥ ३॥

संसार और जड़ चेतन आत्मा तथा शरीर, धन, पशु, घर इन सबको और इनसे अन्य जितनी सामग्री है उसको छोड़ कर जो विश्वमुख हम हैं हमारा जो भक्ति पूर्वक स्मरण करता है उसको हम मृत्यु से पार करते हैं॥ १॥ २॥ प्रधान पुरुषेश्वर जो मैं भगवान् हूं मुझसे भिन्न स्थान में जानेवालों का किसी प्रकार से भी जन्ममरणरूपी भय निवृत्त नहीं होता॥ ३॥

जीव ईश्वर भेद।

कई एक सज्जनों का कथन है कि ईश्वर के स्मरण से जीव ईश्वरत्व को कैसे पा जाता है, अन्य मार्गों से जीव ईश्वर क्यों नहीं बनता।

इस विषय में जो लोग ब्रह्म, ईश्वर, जीव के भेद को जानते हैं उनको कोई शंका नहीं, शंका केवल उनको है जो संसार की चमक दमक पर लट्टू होकर अपने स्वरूप को भी नहीं जानते। सनातन ज्ञान वेद लिखता है कि—

ना सदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गंभीरम् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न राज्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातंस्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्नपरः किं च नास ॥

ऋ० मं० १० अ० ११ सू० १२९। १३०

प्रलयकाल में अपरा माया और जीव तथा रजोगुण तमोगुण सत्वगुण एवं ब्रह्माण्ड के चारों तरफ जो तत्वसमूह का आवरण है वह और वाष्पजल नहीं था ॥१॥ उस समय न मौत, न जीव, न रात्रि दिन का ज्ञान था किन्तु केवल अपनी शक्ति

सहित एक ब्रह्म था, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं था।

इन श्रुतियों से श्रोता समझ गये होंगे कि प्रलय काल में केवल ब्रह्म था उस ब्रह्म से ही यह समस्त संसार बना। ब्रह्म से संसार कैसे बना इसको हम समझाने का उद्योग करते हैं श्रोता समझने का उद्योग करें। यद्यपि ब्रह्म रूपरहित है तो भी समझने के लिये रूप की कल्पना करनी होगी। अच्छा समझिये—ब्रह्म सर्वव्यापक है, अनन्त है, इसी प्रकार आकाश भी बहुत बड़ा है। तुम अपने मन में समझ लो कि यह जो आकाश है न इसमें सूर्य है, न ग्रह हैं, और न तारे हैं, दक्षिण से उत्तर तक पूर्व से पश्चिम तक जहां तक हमारी दृष्टि दौड़ती है आकाश दृष्टिगोचर होता है उसी को ब्रह्म समझो। अब कल्पना करो कि इस इतने बड़े आकाश में एक चन्द्रमा है वह आधा चन्द्रमा लाल है और आधा चन्द्रमा लाल और काला है, चन्द्रमा से भिन्न स्थान में ब्रह्म इच्छारहित अनिर्वचनीय है किन्तु जितने में चन्द्रमा है उतना ब्रह्म का अंश इच्छा वाला है,- सृष्टि के आरंभ में चन्द्रस्थानीय ब्रह्म में यह इच्छा हुई कि "एकोऽहं बहुस्याम्" एक हम बहुत हो जावें, इस इच्छा के साथ ब्रह्म में एक चमक उठी उसका प्रतिबिम्ब चन्द्रमा में गिरा आधा चन्द्रमा जो लाल है उसमें सुषुप्तिरूप से माया है इस भाग में जो प्रतिबिम्ब पड़ा वह ईश्वर हुआ और आधा चन्द्रमा लाल और काला है इसमें लालरंगवाली सुषुप्ति अवस्था में माया है और कालीरंग वाली सुषुप्ति रूप

से अविद्यायें हैं इसमें जो प्रतिबिम्ब पड़ा वह प्रतिबिम्ब ही अनेक जीव बन गया, अर्ध चन्द्रमा जो लाल है उसमें माया एक है इस लिये ईश्वर एक बना, आधे काले चन्द्रमा में अविद्यायें अनन्त हैं उसके प्रतिबिम्ब से जीव अनन्त बने। ईश्वर को अविद्या नहीं है इस कारण यह दुःख सुख के फन्दे में नहीं पड़ता और जीव का प्रादुर्भाव अविद्या भाग में हुआ है इस कारण यह सुख दुःख के झंझट में पड़ गया। जब अविद्या ने स्थूल रूप धारण किया तब उससे पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत, दश इन्द्रिय, ग्यारहवां मन और यह शरीर तथा समस्त संसार बना। अब श्रोता समझ गये होंगे कि ब्रह्म के सर्वांश में सृष्टि नहीं है केवल एक अंश में सृष्टि है जिसको हमने चन्द्रमा का रूप कल्पना करके बतलाया है। इसी को वेद कहता है कि—

"एकांशेन स्थितो जगत्"

ब्रह्मके एक अंश में सृष्टि है शेषांश शुद्ध, चैतन्य, अविक्रिय, अनिर्वचनीय है।

इस वैदिक विज्ञान को तो संसार जानता नहीं अपने अज्ञान से ईश्वर को कोई निराकार और कोई साकार समझता है फिर अपने २ पक्ष को आगे रख कर लड़ने लगते हैं। इसके ऊपर हमको एक दृष्टान्त याद आ गया।

हमारे यहां एक अहीर दो पैसा महीना पर दूसरे अहीर की एक बकरी चराने लगा। चराते चराते पांच महीना हो गये, बकरीवाले ने चराई न दी। एक दिन यह उसके घर पैसे मांगने

गया। इसने कहा कि हमको पांच महीने बकरी चराते हो गये तुमने चराई क्यों नहीं दी, ले आओ हमारे पांच टके चराई के दे दो। दूसरा अहीर पैसे ले आया और इससे बोला कि लो दश पैसे। इसको सुन कर पैसे मांगनेवाला अहीर बोला दश पैसे कैसे? हम तो पांच टके लेंगे। पैसे देने वाले ने जवाब दिया कि तू तो दुनियां की रकम मार लेगा, हम दश पैसे से कौड़ी ज्यादह न देंगे। इसी बहस पर दोनों की लड़ाई हुई, लड़ते लड़ते पण्डित हरदयाल मिश्र के यहां पहुंचे। मिश्रजी ने लड़ाई का कारण सुना, समझ लिया कि दोनों गवांर हैं, पैसे देने वाले अहीर से कहा लड़ो मत, तुम दश पैसे हमें दो, उससे दश पैसे लेकर अपनी जेब में डाल लिये और चराई वाले से कहा तुम क्या लोगे? उसने कहा पांच टका। मिश्रजी ने कहा अच्छा लो तुम पांच ही टका लो, तुम्हारी लड़ाई में हमको चार आने का नुकसान हुआ, इसने चार आने कम दिये तुम चार आने ज्यादह मांगते हो, खैर तुम पांच ही टके ले जाओ, पैसे दे दिये। दोनों ही झगड़ते चले गये। एक कहता जाता था कि तब जानते जब हमसे ज्यादह ले लेता हमने तो दश ही पैसे दिये, दूसरा कहता था कि हमने तो पांच टका लेकर छोड़े।

जैसी यह गवांरों की लड़ाई है ऐसी ही आजकल भारतवर्ष में निराकार साकार की लड़ाई चल रही है। वेद विज्ञान से यह सिद्ध है कि निराकार ब्रह्म ही साकार बन कर जगत बनता है किन्तु ये लोग न वेद को जानते हैं और न मानते हैं

ईश्वर निराकार है इसी पर लड़ मरते हैं, ये पांच टके वाले गवांर से किंचित् भी कम नहीं हैं।

जीव के विषय में गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं कि—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

जीव ईश्वर का अंश है और वह अविनाशी है। श्रोताओ! जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है अर्थात् ब्रह्म का एक अंश है, ब्रह्म अविनाशी है जीव भी अविनाशी है, ब्रह्म चैतन्य है जीव भी चैतन्य है, ब्रह्म सुख दुःख रहित है जीव भी अपने स्वभाव से सुख दुःख रहित है, किन्तु अब जीव इन्द्रिय सहित शरीर को अपना स्वरूप मान बैठा और जो इसका स्वरूप था उसको भूल गया अब यह माया जंजाल को अपना स्वरूप मान कर उसी की पुष्टि में लग गया, अब यह चाहता है कि मेरा शरीर सुन्दर हो, मेरी आंख उत्तमोत्तम रूप देखे, मेरे कान उत्तम गान सुनें, मेरी त्वचा उत्तम स्पृश्य वस्तु का स्पर्श करे, मेरी नासिका उत्तम गंध सूंघे और मेरी जीभ उत्तमोत्तम रस खावे जिससे मैं प्रबल और पुष्ट हो जाऊं, बस इसी बंधन में सब जीव बंध गये, श्रीधर स्वामी लिखते हैं कि—

पतङ्गमातङ्गकुरङ्गभृङ्ग
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते
यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥

पतंग, हस्ति, हिरण, भ्रमर, मछली ये पांच नेत्र, स्पर्श, कर्ण, नासिका, जिह्वा इन पांच इंन्द्रियों से मारे जाते हैं जिस मनुष्य की पांचो इन्द्रिय प्रबल हों भला फिर आप ही बतलाइये वह कैसे बचेगा।

अब हम क्रम से इन पांचो की दशा का उद्घाटन करते हैं। सब से प्रथम आप पतंग को देखिये—

दीपं दृष्ट्वा पतंगोयमाल्हादेनैव नृत्यति।
नेत्राभ्यां प्रेरितो दीपं पतितः संविनश्यति॥

पतंग दीप को देख कर आनन्द के समुद्र में डूब खूब नाच करता है इसकी आंखें इसको खींच कर दीप के ऊपर ले जाती हैं यह जहां दीप पर गिरा कि फौरन बिना वेद मंत्र बोले ही स्वाहा हो गया।

अब गज की कथा सुनिये—

गजीं दृष्ट्वा गजेन्द्रोपि हर्षोत्कर्षेण विह्वलः।
प्रधावन्कामवेगेन गर्ते पतति संकटे॥

हाथी हथिनी को देख कर अपने मनमें फूल उठता है, काम के वेग का पकड़ा हुआ हथिनी की तरफ को जा रहा है, रास्ते में मनुष्यों के बनाये हुये गुप्त गढ़े में गिर जाता है और फिर इसको जन्म भर संकट भोगना पड़ता है।

मृग की दशा देखिये—

मधुरं सुस्वरं श्रुत्वा धावमानोपि तिष्ठति।
विद्धः शरेण हरिणः प्राणांस्त्यजति सत्वरम्॥

हिरण भागता हुआ भी वंशी के शब्द को सुन कर खड़ा हो जाता है, इतने में व्याध तीर छोड़ देता है, तीर के लगते ही यह हज़रत अपने मौरूसी स्थान यमालय को चला जाता है, इसको कान मार डालते हैं।

अब ज़रा भ्रमर का वृत्तान्त सुनिये। एक भ्रमर नासिका के पंजे में पड़ कर एक फूल से दूसरे पर और दूसरे से तीसरे पर घूम रहा था। यह एक फूल पर बैठाही था कि भगवान् भास्कर अस्ताचल को चले गये, फूल बन्द हो गया, ये जनाब-आली भीतर हो रह गये। अब वहीं पर विराजमान हैं। जो भ्रमर बड़े बड़े लकड़ों को काट डालता है वह कमल की पखुरियों को नहीं काट सकता। इसके ऊपर एक कवि कहता है कि—

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि
प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोपि षडंघ्रि-
र्निष्क्रियो भवति पङ्कजबद्धः॥

संसार में अनेक बंधन हैं किन्तु प्रेमरस्सी का बंधन कुछ विलक्षण ही बंधन है, भ्रमर लकड़ी के भेदन करने में बड़ा पंडित है किन्तु वह भी प्रेम से कमलकोश में आकर अपनी क्रिया को छोड़ देता है। लकड़ी का काटने वाला भ्रमर क्या कमल की पखुरियों को नहीं काट सकता ? काट सकता है, किन्तु प्रेम नहीं काटने देता।

ये हज़रत कमल में बैठे हुये अपने मन के विचार में मग्न हैं, इनके मन में विचार उठा कि—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥

रात समाप्त हो जायगी, प्रातःकाल होगा, भगवान् सूर्यदेव का उदय होगा, कमल की श्री फिर खिलेगी । कमल के अंदर बैठा हुआ भ्रमर अपने मन की कल्पना कर ही रहा था कि इतने में एक हस्ती आ गया उसने इस कमल को उखाड़ कर फेंक दिया, बेचारे भ्रमर को नासिका ने मार डाला ।

कांटे में आटा लगा कर मछली पकड़ने वाले कांटे को तड़ाग या नदी में छोड़ते हैं मछली देखती है कि हमारे लिये इस दयालु ने स्वादुभोजन दिया है यह समझ कर आटे को पकड़ लेती है पकड़ते ही कांटा जीभ में धँस जाता है और बेचारी गरीब मछली का राम नाम सत्य हो जाता है ।

इस प्रकार से ये पांच प्राणी पांच इन्द्रियों से मारे जाते हैं इनकी एक एक इन्द्रिय बड़ी प्रबल है वह प्रबल इन्द्रिय इनको मार डालती है । इनकी तो एक एक इन्द्रिय प्रबल है किन्तु मनुष्य की पांचो इन्द्रियां प्रबल हैं इसी से तो श्रीधर स्वामी कहते हैं कि बतलाइये यह क्योंकर बचेगा ।

पतंग प्रभृति पांचो प्राणी यह नहीं जानते कि इससे हमारा मृत्यु हो जावेगा किन्तु मनुष्य जानता है इसके ऊपर भर्तृहरि लिखते हैं कि—

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥

अग्नि के महत्व को न जान कर पतंग दीप पर गिर जाता है और मछली अज्ञान से ही आटा लगे हुये कांटे को खाती है किन्तु हम तुम मनुष्य यह जानते हुए भी कि इन्द्रियों का समूह बड़ा जटिल है, यमराज का दूत है, इतने पर भी हम इच्छाओं को नहीं छोड़ सकते, यह मोह की महिमा है।

हमने यह दिखला दिया कि चैतन्य आत्मा अविद्या के चक्कर में पड़ कर अपने वास्तविक स्वरूप चैतन्य आत्मा को तो भूल गया और अविद्या के रचे हुये जो सूक्ष्म, कारण, स्थूल ये तीन शरीर हैं इन्हीं को अपना स्वरूप मानने लग गया। इसी कारण से यह जितने भी काम करता है शरीर को प्रसन्नता के करता है क्योंकि यह शरीर को ही अपना स्वरूप समझे है, जब तक इसको यह ज्ञान नहीं होगा कि शरीरत्रय अविद्या के कार्य हैं और मैं चैतन्य आनन्द स्वरूप इनसे भिन्न हूं तब तक इससे विषयों का सेवन कभी छूट ही नहीं सकता। हां जब यह विज्ञानयुक्त ईश्वरभक्ति से जान जावेगा कि शरीर से

और इन्द्रियों से तथा मन से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं इन सब से पृथक् हूं तब संसार छोड़ देगा। इस विषय में श्रीमद्भागवत में वेद्व्यासजी लिखते हैं कि--

आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम्।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते
रज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा॥

आत्मा चैतन्यस्वरूप को आत्मभाव स्वकीयरूप से नहीं जानता इसी से अहंता ममता वाला प्रपंच हो गया है ईश्वरीय ज्ञान से यह फिर समाप्त हो जाता है जैसे कि रज्जु में सर्प का भाव और सर्पभाव का नाश होता है।

कोई मनुष्य अँधेरी रात में जा रहा है और रास्ते में एक रस्सी पड़ी है उस रस्सी को देख कर इसने समझा कि सर्प है अब क्या था छाती धड़कने लगी, पांव कांपने लगे, घबरा गया और मन में संकल्प करने लगा कि यह हमको काट न खावे यह तुरंत ही किसी पड़ोसी की लालटेन उठा लाया, देखा तो वहां सर्प नहीं है, रस्सी है। रस्सी में अज्ञान से सर्पभावना हो गई, वह हट न सकी, जब लालटेन से देखा तब अज्ञानकृत सर्पभावना दूर हो गई और वास्तविक रूप रस्सी दिखलाई देने लगी। इसी प्रकार अविद्या से यह जीव समझने लगा है कि मन इन्द्रियों वाला शरीर ही हमारा रूप है किन्तु जिस समय इसके अन्तःकरण में ब्रह्मविज्ञानरूपी दीपक जल जाता है तब

इसको ज्ञान होता है कि आनन्द चैतन्यरूप हम हैं फिर सर्प की भांति शरीरादिक इससे दूर हो जाते हैं।

इसके दूर करने के लिये ईश्वरभक्तियुक्त विज्ञान की आवश्यकता है यदि विज्ञान न हो तो केवल भक्ति ही हो, भक्त भक्ति का आरंभ करके जब आगे को बढ़ता है तब अपने आप विज्ञानी बन जाता है । इस विषय में हम श्रीमद्भागवत का निर्णय आज श्रोताओं के आगे रखते हैं। श्रीमद्भागवत लिखता है कि भक्त आरंभिक दशा में प्रेम के साथ ईश्वरप्रतिमा का पूजन करे।

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

जो मनुष्य मूर्ति में श्रद्धा के साथ हरि का पूजन करता है और हरि से भिन्न वह हरि के भक्तों का तथा अन्यों का पूजन नहीं करता वह तीसरी श्रेणी का भक्त है।

यह भक्त धीरे धीरे ईश्वर के स्मरण से अपने अन्तःकरण के मैल दूर करता हुआ कुछ उच्च दशा में जाता है, उस दशा में यह जैसा बनता है उसका विवरण यह है—

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः॥

इन्द्रियों से इन्द्रियों के विषयों को तो ग्रहण करता है किन्तु वह यह विष्णु की माया है यह समझ कर न किसी से द्वेष

करता है और न कभी प्रसन्न होता है यह उससे उत्तम भगवद्भक्त है।

आगे आगे उन्नति करते हुये इसकी और भी अच्छी दशा हो जाती है इसका फोटू श्रीमद्भागवत इस प्रकार उतारता है कि—

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो
जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः
स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः॥

जो पुरुष भगवान् का निरन्तर स्मरण करके देह के धर्म जन्ममरण, प्राण के धर्म क्षुधा और तृषा, मन का धर्म भय, बुद्धि का धर्म आशा और इन्द्रियों का धर्म श्रम, इन संसार के धर्मों से मोहित नहीं होता वह भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ है।

फिर इस भक्त की इच्छायें निवृत्त हो जाती हैं।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥

जिसके चित्त में काम कर्म और इनकी वासना की उत्पत्ति नहीं होती और जिसका एक वासुदेव ही अवलम्ब है वह उत्तम भगवद्भक्त है।

इस मूर्तिपूजा से भक्त का ईश्वर में उत्कट प्रेम हो जाता है तब वह—

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्या-
न्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥

जो मनुष्यों के करने योग्य नहीं है और बड़े पराक्रम वाले ईश्वर के शरीरों से किये गये जो अलौकिक कर्म हैं उनको सुन कर अति हर्ष के साथ रोमांच शरीर होकर प्रेम के मारे इसका गला रुक जाता है और फिर कभी उच्चस्वर से गाता, कभी रोता तथा कभी नाचने लगता है।

इसी दशा में यह अपनी अनेक प्रार्थनायें भगवान् के आगे रखता है, कभी कहता है कि—

विश्वम्भर ! भरास्माकं विश्वस्माद्वा बहिष्कुरु ।
यदि चेदुभयाभावस्त्यज विश्वम्भराभिधम् ॥

हे विश्वम्भर ! आप विश्व का भरण करते हो इस कारण हमारा भी करो, यदि हमारा भरण करना आपको स्वीकार नहीं तो हमको विश्व से बाहर कर दो; यदि ये दोनों काम आप नहीं चाहते तो फिर अपने विश्वम्भर नाम को त्याग दो।

कवि कहता है कि—

आनीता नटवन्मया तव पुरा श्रीकृष्ण या भूमिका
व्योमाकाशखखाम्बरवेदवसुयुन्त्वत्प्रीतयेद्यावधि ।
प्रीतश्चेद्यदिना निरीक्ष्य भगवन्संप्रार्थितं देहि मे
नोचेद्ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकाः ॥

भगवन् कृष्ण ! मैं आपके आगे बहुरूपिया की भांति ८४ लाख वेष धारण करके आया केवल इस लिये कि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जांय, अब बतलाइये कि इन वेशों से आप प्रसन्न हुये या नहीं। यदि आप प्रसन्न हो गये हों तो फिर जो हम मांगें वह हमको इनाम दे दो यदि प्रसन्न नहीं हुये तो कम से कम यही कह दो कि खबरदार आगे को हमारे आगे वेश बना कर न लाना।

ईश्वर की उपासना से इसके मन की चंचलता नष्ट हो जाती है, स्थिर चित्त होकर ईश्वर के असली स्वरूप को समझ कर कह उठाता है कि—

शिवोहं रुद्राणामहममरराजो दिविपदां
मुनीनां व्यासोहं सुरवर समुद्रोस्मि सरसाम्।
कुवेरो यक्षाणामिति तव वचो मन्दमतये
न जाने तज्जातं जगति ननु यन्नासि भगवन्॥

भगवन्! तुमने जो गीता में कहा है कि रुद्रों में शिव और देवताओं में इन्द्र तथा मुनियों में व्यास एवं नदियों में समुद्र, यक्षों में कुवेर हमारा रूप हैं यह मंदमति लोगों के लिये कहा है, मैं तो जगत में एक भी पदार्थ ऐसा उत्पन्न हुआ नहीं देखता कि जो तुम न हो।

इस सर्वज्ञता का ज्ञान होने पर भक्त आनन्दमय हो जाता है और ईश्वर उसको दर्शन देता है इसके ऊपर कपिलदेवजी अपनी माता देवहूती से कहते हैं कि—

पश्यन्ति मे रुचिराण्यम्ब सन्तः
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
शाकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥

हे अम्ब ! अम्मा ! सन्त जो भक्त हैं केवल वे ही हमारे रूप
को देखते हैं उनसे भिन्न माया का गुलाम बना हुआ कोई
भी मनुष्य हमारे रूपों को देख नहीं सकता, मेरे रूप साधारण
नहीं हैं बड़े विलक्षण हैं, मेरे रूपों के मुख सर्वदा खिले रहते हैं
मेरे मुखों के नेत्र थोड़े थोड़े लाल रहते हैं, मेरे रूप पांच भौतिक
नहीं हैं किन्तु दिव्य हैं, मेरे रूपो का दर्शन खाली दर्शन नहीं है
किन्तु वे रूप अनेक वरों के देनेवाले हैं । अम्मा हो ! ऐसे रूपों
को तो केवल भक्त ही देखते हैं । हमारे भक्त हमारे रूपों को ही
देख लेते हों इतना ही नहीं किन्तु हमारे रूपों के पास बैठ कर
भक्तों की हम से दो दो बातें भी हो जाती हैं ।

उस समय की भक्त की दशा का वर्णन करता हुआ संस्कृत
साहित्य लिखता है कि—

सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा
गाङ्गंवारि समस्तवारिनिवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि ॥

जब परब्रह्म के दर्शन होते हैं तब यह जितना जगत है
सब विष्णु का बगीचा बन जाता है और समस्त वृक्ष कल्प

वृक्ष हो जाते हैं तथा जितना भी जल है वह गंगाजल एवं जितनी किया हैं समस्त पवित्र करने वाली, प्राकृत और संस्कृत जो भाषा है वह वेद से भी बढ़ कर और समस्त पृथिवी काशी क्षेत्र तथा इसको समस्त वस्तुओं का विषय स्थिर हो जाता है।

इसी अवस्था में जिस भक्त को ईश्वर का दर्शन होता है उसको मोक्ष हो जाता है। इसके ऊपर ऋग्वेद लिखता है कि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

जब ईश्वर के दर्शन होते हैं तब हृदय की तर्क वितर्क रूपी ग्रन्थि टूट जाती है, समस्त संशय कट जाते हैं, शुभाशुभ कर्म क्षय हो जाते हैं, अतएव समस्त सुखसाधन मोक्ष के अधिकारी बनते हैं।

यह भक्त केवल भक्त नहीं है भक्त और ज्ञानी दोनों ही है, अब ज्ञानी में और भक्त में कोई अंतर नहीं रहता। कई एक लोग भक्ति से मोक्ष बतलाते हैं और कई एक केवल ज्ञान से। यह उनकी भूल है, भक्त ज्ञानी होता है और ज्ञानी को भक्ति का आश्रय लेना पड़ता है इस कारण भक्ति और ज्ञान दोनों ही मिल कर मोक्ष देते हैं। ईश्वर के दर्शन होने पर जिस भक्त का मोक्ष नहीं होता उसमें कोई खास हेतु रहता है, अब न हुआ आगे को होगा, होगा मोक्ष, ईश्वरभक्त को फिर संसारबंधन नहीं होता। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि—

न मे भक्तः प्रणश्यति ।

मेरे भक्त का पतन नहीं होता। भक्ति और विज्ञान का कुछ मार्ग मैंने श्रोताओं के आगे रक्खा है मुझे आशा है कि इसको सुन कर आज के श्रोता आत्मा को मुक्तबंधन करने के लिये उद्योग करेंगे। इस पवित्र भारतवर्ष में लक्षों भक्त ऐसे हुये हैं जो ईश्वर को उपासना द्वारा अपना संसारबंधन तोड़ कर मुक्त होगये। इस विषय में मैं आपके आगे एक पवित्र भक्त की आख्यायिका रखता हूं आप इसको ध्यान से सुनें।

प्राचीन समय में एक पंडित वामदेव थे उनके पूर्वपुरुषाओं का निर्माण किया हुआ एक भगवान् कृष्णजी का मंदिर था, वामदेव इसी मदिर के समीप के घर में रहते थे, इनका समस्त दिन भगवद्भक्ति में ही बीतता था। इनके कोई पुत्र नहीं था एक कन्या थी वह इन्हीं के यहां रहती थी। उस कन्या के एक पुत्र हुआ उसका नाम पंडितों ने नामदेव रक्खा, यह नामदेव अपने नाना के पास ठाकुरजी के पास ठाकुरजी की सेवा में ही लगा रहता था, इसकी आयु सात वर्ष की थी।

एक दिन ऐसा अवसर आ गया कि पं० वामदेवजी को बाहर जाना आवश्यकीय हो गया, उन्होंने बहुत देखा कोई ऐसा पंडित मिल जावे कि तीन दिन के लिये ठाकुरजी की पूजा कर दे, हम बाहर हो आवें। बहुत तलाश किन्तु कोई मिला नहीं, विवश होकर वामदेव ने यही स्थिर किया कि अब कोई नहीं मिलता तो नामदेव ही पूजा कर लेगा। नामदेव को अपने

पास बुला कर कहा कि बेटा ! मैं तीन दिन के लिये बाहर जाता हूं तुम ठाकुरजी की पूजा करना । प्रातःकाल उठना, शौच से निवृत्त होकर दन्तधावन करके गौ को दुहना फिर स्नान करना, ठाकुरजी को स्नान करवा कर चन्दन लगा आरती कर ठाकुरजी को दूध पिलाना, बारह बजे ठाकुरजी को फिर भोग लगाना, भोग के बाद ठाकुरजी को शयन करवा देना और तुम भोजन करना, बाद में चार बजे स्नान करके ठाकुरजी के पट खोलना, संध्या आरती करना, फिर रात्रि को दूध पिला कर शयनआरती करके ठाकुरजी को सुला देना और तुम भी भोजन करके सो जाना । रात्रि को नामदेव को इतना समझा दिया प्रातःकाल अंधेरे ही पं० जी अपने आवश्यकीय कार्य के लिये किसी दूसरे ग्राम को चले गये ।

नामदेव प्रातःकाल ही उठा, अपनी नित्यक्रिया से निवृत्त होकर उसने गौ को दुहा, अति शीघ्रता से स्नान करके ठाकुर जी का पूजन किया और दूध को ठाकुरजी के आगे रक्खा ।

पिबति स्म यदा नैव तदा स पुनरेव हि ।
उत्थायोत्थाय दुग्धं तु गृहीत्वा प्रणिपत्य च ॥ १
चिन्तयामास मनसा सिता नास्मिन्समाहृता ।
अतोयं नैव पिबति तां दत्वा दद्मिले पयः ॥ २
इत्युक्त्वा सितया युक्तं कृत्वा दुग्धं करे स च ।
गृहीत्वा पुनरुत्थाय प्रार्थयामास भूरिशः ॥ ३

न पपौ प्रतिदुग्धं तु मनस्येवमचिन्तयत् ।
मां न जानास्यतो नैव पिबस्येतत्पयो मम ॥ ४
अहं तु वामदेवस्य सुतापुत्रो न संशयः ।
तिष्ठाम्यत्रैव भवने जाने त्वां त्वं न वेत्सि माम् ॥ ५
इत्युक्त्वा दुग्धमादाय पुनरुत्थाय यत्नतः ।
प्रसीद मे पिब पयो मुहुरेव मुहुरेवमुवाच तम् ॥ ६
एवं प्रार्थयमानस्य सम्पूर्णं दिनमत्यगात् ।
न पपौ प्रतिमा दुग्धं ततश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ ७
किं चाहमशुचिः किं वा पात्रमेतत्पयोऽशुचिः ।
अतः प्रातः समुत्थाय स्नात्वा प्रक्षाल्यभाजनम् ॥ ८
दास्यामि ससितं देवं ततः पास्यति निश्चितम् ।
कथमन्नमहं भोक्ष्ये गोविन्देऽस्मिन्बुभुक्षिते ॥९
इति निश्चित्य शिष्योऽसौ रात्रौ त्यक्ताशनोदकः ।
मात्रा निशं प्रार्थ्यमानो बुभुजे नैव किंचन ॥ १०

जब प्रतिमा ने दूध नहीं पिया तब बच्चा बार बार दूध को उठाता है और बारबार प्रणाम करता है तथा भगवान् से प्रार्थना करता है कि भगवन् ! दूध पियो, इतने पर भी जब भगवान् ने दूध न पिया तब इसको चिन्ता हुई यह कारण क्या है भगवान् दूध नहीं पीते, अपने मन से ही समझा कि ओहो ! दूध में शक्कर तो डाली ही नहीं इसी वजह से ये दूध नहीं पीते, बड़े घुटे हुये हैं, बिना शक्कर का दूध ही नहीं पीते, अब इसने दूध में शक्कर मिलाई और बोला अब तो पियो ॥ १।२ ॥ दूध को हाथ पर उठा कर

अथ प्रभाते चोत्थाय स्नात्वा संमार्ज्य मंदिरम् ।
पयो दुग्ध्वा प्रतिष्ठाप्य पुनः स्नात्वा समाहितः ॥ १
ससितं दुग्धमादाय पिवेति मुहुरब्रवीत् ।
न पपौ प्रतिमा तत्र मनस्येवमचिंतयत् ॥ २
न स्नानं कृतमेतेन न कृतं दन्तधावनम् ।
स्नापयित्वांभसा वस्त्रं परिधाप्याग्रतः स्थितः ॥ ३
पयो गृहीत्वा पाणिभ्यामुवाच प्रणयान्वितः ।
मयापि नैव भुक्तं भो दिनमेकं समभ्यगात् ॥ ४
अतः पिब महाराज पय इत्यब्रवीन्मुहुः ।
न पपौ प्रतिमा दुग्धं ज्ञात्वैतत्स रुरोद ह ॥ ५
अथ तत्र तु गोविन्द प्रतिमा नेत्रयुग्मतः ।
अपश्यच्चाश्रुधारां वै दृष्ट्वा बालोप्यभाषत ॥ ६
किं रोदिषि पिबस्यैतन्नोचेदत्रैव जीवितम् ।
त्यक्ष्यामि पश्यतस्तेद्य सत्यमेतन्न संशयः ॥ ७
इत्युक्त्वा तन्मुखे दुग्धं योजयामास हृष्टवत् ।
प्रतिमाप्यपिबद्दुग्धमित्याश्चर्यतरं महत् ॥ ८
पिबन्तीं तां पुनः प्राह नामदेवोऽतिहर्षितः ।
सर्वं पिबसि गोविन्द मदर्थं नैव रक्षसि ॥ ९
तव पीतावशिष्टं तु मातामहसमर्पितम् ।
बहुचार्पितमस्माभिरतो विज्ञापयाम्यहम् ॥ १०
इतिश्रुत्वाथ सा मूर्तिः सस्मिता दुग्धमत्यजत् ।

गृहीत्वा तत्करे दृष्ट्वा नामदेवो बुभुक्षितः ।
बुभुजे मातृदत्तं यद्गृहे भोज्यादिकं स्थितम् ॥ ११

नामदेव प्रातःकाल उठा, ठाकुरजी के मंदिर को खूब धोया फिर गौ को दुहा दूध गर्म होने को रख दिया आप स्नान किया ॥ १ ॥ स्नान करके दूध में शक्कर छोड़ी शक्कर को खूब घोल दूध ठाकुरजी के आगे रख दिया फिर बोला भगवन् ! अब पीजिये, भगवान् ने अब भी दूध नहीं पिया, बच्चा फिर विचार करने लगा कि अब दूध क्यों नहीं पीते ॥ २ ॥ ध्यान में आया कि दूध कैसे पी लें, न इन्होंने दन्तधावन किया और न स्नान किया फिर दूध पियें तो कैसे पियें । अब इसने ठाकुर जी को स्नान करवाया, वस्त्र पहिनाये, आगे खड़ा हो हाथ में दूध लेकर बोला कि भगवन् ! कल समस्त दिन बीत गया आपने कुछ नहीं खाया, मैंने भी कुछ नहीं खाया ॥ ३ । ४ ॥ इस कारण भगवन् ! आप दूध पी लो, इस प्रकार भगवान् से बार बार प्रार्थना की, इतने पर भी जब भगवान् ने दूध न पिया तब यह बच्चा लगा रोने, इस दशा को देख कर भक्तवत्सल भगवान् के नेत्रों से अश्रुधारा गिरने लगी, भगवान् के दोनों नेत्रों से गिरते हुये अश्रुधाराओं को देख कर यह बालक कहने लगा कि ॥ ५ । ६ ॥ क्यों रोते हो, दूध क्यों नहीं पीते, यदि तुम दूध नहीं पियोगे तो मैं तुम्हारे आगे प्राण त्याग दूंगा, इसमें जरा भी संदेह न करना ॥ ७ ॥ पश्चात् बच्चे ने फिर दूध उठाया

और भगवान् के मुँह में लगा दिया, बड़े आश्चर्य की बात है कि उस समय भगवान् दूध पीने लग गये ॥ ८ ॥ इस बात को देख कर नामदेव बड़ा प्रसन्न हुआ और भगवान् से बोला कि क्या सब का सब पी जाओगे, हमारे लिये नहीं छोड़ोगे ॥ ९ ॥ तुम जो जूठा छोड़ते थे उसको हमारा नाना पीता था और मुझे दे देता था, हमने तो दूध आपको बहुत रक्खा है, क्या तुम सब का सब पी जाओगे और हमको जरा भी न छोड़ोगे ॥ १० ॥ इसको सुन कर भगवान् हँस पड़े तथा कटोरे का शेष दूध बच्चे के लिये छोड़ना ही चाहते थे कि नामदेव ने कटोरा पकड़ लिया और बोला कि सब मत पिओ, नामदेव दूध को घर ले गया, उस दूध के साथ माता का दिया हुआ भोजन खाया ॥ ११ ॥

यह है भक्ति का देदीप्यमान उदाहरण। सज्जनो! जब तक तुम ईश्वर में प्रेम नहीं करोगे ईश्वर भी कभी प्रसन्न नहीं होगा। अपने उद्धार के लिये यह आवश्यकीय है कि हम तुम सब ईश्वर के चरणों में प्रेम करें और उस प्रेम के जरिये से जन्म मरण रूप बंधन को तोड़ कर मोक्षपद को प्राप्त करें। हम यह जानते हैं कि कई एक सज्जन नामदेव की कथा को गप्प बतलावेंगे किन्तु कौन बतलावेंगे—वही बतलावेंगे कि जिन्होंने जीव ईश्वर के स्वरूप और सृष्टि क्रम तथा मोक्षसाधन का मार्ग एवं वेदों का गूढ़ अभिप्राय नहीं जाना, और जो लोगों

के बहकाये हुए ईश्वर निराकार है यह कहते हुए अपने जीवन को आसुरी जीवन बना रहे हैं।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

एक वार बोलिये भगवान् कृष्णचन्द्र की जय।

पूर्वार्द्ध समाप्तम्।

हितेच्छुः—

कालूराम शास्त्री।
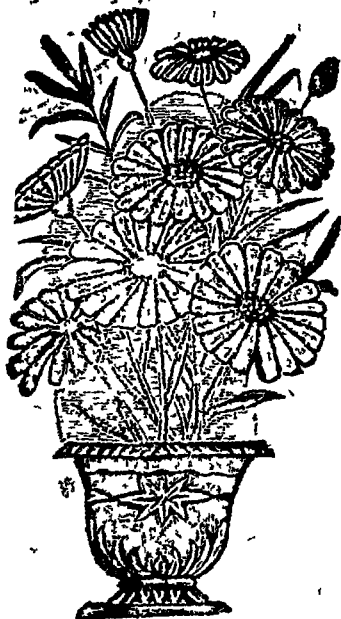
शुद्धि-पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	३	भूतो	भूतं
२१	१७	क	कृथं
२९	१४	हरी	हेरीं
४८	१६	ज्ञितों	क्षितो
८६	१५	लभेत्तहि	लंभेत्तहिं
९०	१	भेज	भेज भेज
११४	१०	मरतोपि	भरतोपि
१२२	२०	ततोऽमि	ततोऽस्मि
१२८	१५	त्तुभितेन	क्षुभितेन
१४४	५	हृदय	हृदयं
२४५	५	सर्वस्य	सर्वस्य
२५०	१	चन्नुः	चक्षुः
२५५	२०	तदानु	तदनु
२६९	१३	शशिवर्ण	शशिवर्णं
३०३	१९	मवायं	भेवायं
३२२	१८	भवाञ्जातो	भवाज्ञातो
३३६	११	प्रोपणम्	पौषणम्
३३८	१३	विश्वा	विश्वाः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४२	११	ता	तो
३४५	८	इकले	किले
३४९	१८	पतलून	पतलूनं
३४९	१९	लड्ड	लड्डू
३५६	७	अग्रेजी	अंग्रेजी
३६६	१४	उपदंश	उपदेश
३७२	३	यक्षा	यक्षाः
३७७	५	मिलना	मिलता
३७८	१६	लड्ड	लड्डू
३८०	३	स्वरूपं	सुरूपं
३८१	१५	वद्धा	वृद्धा
३८३	६	दुःशासन	दुर्योधन
३८६	१६	अखड	अखंड
३८६	२०	अखंड	खंड
३८७		देते	पाते
३९४		रहे	रह
३९८	८	आओगे	जाओगे
४००	५	चित्र	चित्त
४००	२०	येऽहसः	यँऽहसः
४०८	१२	अंजत्यः	अंजन्त्यः
४०९	१२	तसे	तैसे

13761

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२६	४	यवना	यवनाः
४३०	१२	संभूत्यारताः	संभूत्याऽरताः
४३१	२०	वक्काय	वाक्काय
४३४	१६	मूतिपूजा	मूर्तिपूजा
४३६	१५	यों	यो
४४०	२०	मूर्तिपूजा	मूर्तिपूजा
४४८	१२	दिकग्नि	दिगग्नि
४६२	३	मूति	मूर्ति
४६४	१६	मूतं	मूर्त
४७२	६	जीविकार्थं	जीविकार्थं
४७३	७	देवका	देवलका
४७४	३	दितीय	द्वितीय
४७४	१६	द्वीतीयं	द्वितीयं
४७६	१३	पजन	पूजन
४८५	६	न करने	करने
४८५	७	न करने	करने
४८७	१७	ता	तो
५००	४	अर्घ	अर्घं
५१९	२२	शब्द को जिस	जिस
५४४	१४	स्तुति	श्रुति
५६७	६	विसार	विसारे
५६८	६	पओगी	पाओगी